हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agrisearch with a human touch

स्वच्छ भारत, समृद्ध भारत
स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

उद्यान रश्मि

राजभाषा पत्रिका

(अक्टूबर, 2017–मार्च, 2018)
वर्ष 16, अंक 2

भाकृअनुप–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, पोस्ट काकोरी, लखनऊ - 226 101
दूरभाष : (0522) 2841022-24, 2841026, फैक्स : (0522) 2841025
ई-मेल : cish.lucknow@gmail.com
वेबसाइट : www.cish.res.in
मीडिया संसाधन कक्ष : 0522-2841082

भाकृअनुप
ICAR

ISO : 9001-2015

हिन्दी से संबंधित गतिविधियाँ

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agrisearch with a human touch

स्वच्छ भारत, समृद्ध भारत
स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

उद्यान रश्मि

राजभाषा पत्रिका

(अक्टूबर, 2017–मार्च 2018)
वर्ष 16 अंक 2

भाकृअनुप
ICAR

भाकृअनुप-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, पोस्ट काकोरी, लखनऊ - 226 101
दूरभाष : (0522) 2841022-24, 2841026, फैक्स : (0522) 2841025
ई-मेल : cish.lucknow@gmail.com
वेबसाइट : www.cish.res.in
मीडिया संसाधन कक्ष : 0522-2841082

केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
CENTRAL INSTITUTE FOR SUBTROPICAL HORTICULTURE
ISO : 9001-2015

राजभाषा पत्रिका

(अक्टूबर 2017 - मार्च, 2018)
वर्ष 16, अंक 2

© भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, लखनऊ

संरक्षक एवं प्रकाशक
शैलेन्द्र राजन
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, लखनऊ-226101, उ.प्र.

संपादन मंडल
मनीष मिश्र
धीरज शर्मा

सहयोग
ए.के. भट्टाचार्जी
कंचन कुमार श्रीवास्तव
पी.के. शुक्ला
पवन सिंह गुर्जर

डिजाइनिंग
सुभाष पाण्डेय

अस्वीकरण

इस पत्रिका में प्रकाशित तथ्यात्मक लेखों के लिए लेखक ही उत्तरदायी हैं न कि भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ, इसके प्रकाशक, संरक्षक या संपादन मंडल। फिर भी उपयोगकर्ताओं को यह सलाह दी जाती है कि पत्रिका में दी गयी जानकारियों को उपयोग में लाने से पूर्व लेखक या किसी अन्य विशेषज्ञ से अनिवार्य रूप से विचार-विमर्श कर/सलाह लेकर ही प्रौद्योगिकियों, तकनीकियों आदि का प्रयोग करें। अनेक प्रयास के बावजूद टंकण संबंधी त्रुटियाँ रह सकती हैं।

प्रकाशक एवं सम्पर्क सूत्र
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ-226101
फोन : 0522-2841022-24, फैक्स : 0522-2841025
मीडिया संसाधन कक्ष नं : 0522-2841082
ई-मेल : cish.lucknow@gmail.com
वेबसाइट : www.cish.res.in

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का गीत

जय जय कृषि परिषद भारत की,
सुखद प्रतीक हरित भारत की,
कृषिधन, पशुधन मानव जीवन,
दुग्ध, मत्स्य, फल, यंत्र सुवर्धन,
वैज्ञानिक विधि नव तकनीकी,
पारिस्थितिकी का संरक्षण,
सस्य-श्यामला छवि भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।

हिम प्रदेश से सागर तट तक,
मरु धरती से पूर्वोत्तर तक,
हर पथ पर है, मित्र कृषक की,
शिक्षा, शोध, प्रसार सकल तक,
आशा स्वावलंबित भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।
जय जय कृषि परिषद भारत की।।

प्राक्कथन

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ देश के प्रतिष्ठित बागवानी अनुसंधान संस्थानों में से एक है। यह संस्थान उपोष्ण बागवानी के क्षेत्र में अनुसंधान द्वारा अधिदेशित विषयों पर प्रौद्योगिकियाँ विकसित करता रहा है। इसके अतिरिक्त, औद्यानिक फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिये आने वाली समस्याओं पर अनुसंधान कर उनके निराकरण का प्रयास भी करता है। वर्तमान समय में, संस्थान फार्मर्स फर्स्ट, मेरा गाँव मेरा गौरव, ग्राम स्वराज, कृषि कौशल योजना, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, स्वच्छ भारत अभियान, जनजातीय उप–योजना आदि महत्वाकांक्षी योजनाओं के द्वारा आसपास के गाँवों एवं दूर–दराज के क्षेत्रों में भी प्रसार माध्यमों की सहायता से यहाँ विकसित प्रौद्योगिकियों एवं तकनीकियों का प्रयोग कर किसानों एवं बागवानों को आर्थिक लाभ पहुँचाकर उनकी आय बढ़ाने के लिये सतत प्रयत्नशील है।

विगत वर्षों के दौरान, संस्थान की फल किस्मों के 18 लाख से अधिक पौधे संस्थान एवं इसके सहयोगियों द्वारा किसानों तक पहुँचाये गये हैं, जिससे फलों के क्षेत्रफल के विस्तार में आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। संस्थान के प्रयास से देश के 100 से अधिक कृषि विज्ञान केन्द्रों तथा 300 से अधिक पौधशालाओं में यहाँ विकसित प्रजातियों के मातृवृक्ष ब्लॉक स्थापित किये गये हैं। दक्षिण भारत में, संस्थान की कम उत्पादन लागत वाली अमरूद की विकसित प्रजातियाँ अधिक लाभ होने के कारण अंगूर का स्थानापन्न हो रही हैं। संस्थान के प्रयास से ग्रीन हाउस फसलोत्पादन और टपक सिंचाई के क्षेत्रफल में भी अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। फल फसलों के रोग एवं कीट प्रबंधन की संस्तुतियों से दो लाख से भी अधिक किसानों को लाभ हुआ है। आम में होने वाले उकठा रोग, शोल्डर ब्राउनिंग, थ्रिप्स, भुनगा, फल मक्खी आदि के प्रबंधन में भी विशेष सफलता प्राप्त की गयी है। संस्थान द्वारा आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों के द्वारा किसानों में उद्यमिता विकास के नये आयाम स्थापित हुए हैं और यहाँ से वेज ग्राफ्टिंग में प्रशिक्षण प्राप्त प्रशिक्षु अपनी पौधशालाएँ स्थापित कर 40–65 लाख रूपये प्रति वर्ष तक की आय भी प्राप्त कर रहे हैं।

बागवानों को फलों से अधिकतम मूल्य दिलाने के लिये संस्थान तुड़ाई उपरांत प्रबंधन क्षेत्र में भी निरंतर प्रयासरत है। संस्थान किसानों के लिये तुड़ाई की वैज्ञानिक विधियों, तुड़ाई उपरांत फलों के मूल्यवर्धन, डिब्बाबंदी और विपणन जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर कार्य कर रहा है। संस्थान के वैज्ञानिकों ने किसानों से अनुरोध किया कि वे आम की सही परिपक्वता होने पर ही तुड़ाई करें। इसके लिये फल को काटकर देखें और यदि गूदा हल्का पीला हो गया हो, तभी फल को तुड़ाई के योग्य समझें। साथ ही, फलों को पकाने के लिये कैल्सियम कार्बाइड का प्रयोग बिलकुल नहीं करें। यदि आम को शीघ्र पकाना हो तो इथरल का ही प्रयोग करें।

बागवानों और जनमानस तक यहाँ विकसित तकनीकों को पहुँचाने के लिये, संस्थान के वैज्ञानिक एवं तकनीकी अधिकारी पूर्व से ही लोकप्रिय लेख संस्थान की राजभाषा पत्रिका 'उद्यान रश्मि' के लिये लिखते रहे हैं। इन लेखों को संकलित एवं संपादित कर 'उद्यान रश्मि' में समाहित किया जाता है। सदा की भाँति 'उद्यान रश्मि' के इस नूतन संस्करण में भी नये एवं प्रासंगिक विषयों को समाहित किया गया है जिसके लिये मैं लेखकों एवं संपादन मंडल के सदस्यों को बधाई देता हूँ। हिंदी माध्यम में लिखे गये किसानोपयोगी लेख सर्वदा ही जनमानस को आंदोलित करते रहे हैं। इस प्रकाशन अवसर पर, मैं लेखकों एवं प्रकाशन समिति के सदस्यों को बधाई देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि भविष्य में भी वैज्ञानिकगण अपने उत्तम एवं अद्यतन लेखों के माध्यम से अपना सहयोग जारी रखेंगे जिससे यह पत्रिका ज्ञानवर्धक एवं किसानोपयोगी रहेगी।

शैलेन्द्र राजन
निदेशक

संपादकीय

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ की राजभाषा पत्रिका 'उद्यान रश्मि' के वर्ष 16 के अंक 2 का संस्करण आधुनिक जानकारियों के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। वित्तीय वर्ष 2017-18 में प्रकाशित होने वाली यह दूसरी पत्रिका है। 'उद्यान रश्मि' के इस अंक में कृषि एवं बागवानी से संबंधित प्रासंगिक लेखों को यथोचित स्थान देने कर प्रयास किया गया है। इसमें किसानों की आय को कैसे बढ़ायें, मृदा स्वास्थ्य कार्ड, दूसरी हरित क्रान्ति, जी.आई., आम, आँवला, बेल, लीची, बड़हल, करौंदा आदि के नानाविध पहलुओं पर किसानोपयोगी जानकारियाँ उपलब्ध करायी गयी हैं। वैज्ञानिक लेखों का संपादन किसी भी भाषा में किया जाना एक अत्यन्त ही चुनौतिपूर्ण कार्य है और यदि यह कार्य राजभाषा हिन्दी में की जा रही तो यह और भी चुनौतिपूर्ण होती है।

विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक भाषाओं में से एक, हिन्दी दुनिया की तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। भारत की अन्य भाषाओं की तुलना में हिन्दी का और अधिक महत्व है क्योंकि भारत में लगभग 50 प्रतिशत लोगों की मातृभाषा होने के साथ-साथ यह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अधिकतर लोगों के लिये सूचनाओं के आदान-प्रदान की संवाहिका भी रही है। भारत संघ की सांविधानिक राजभाषा होने के कारण विगत 70 वर्षों से अधिक समय से अधिकांश सरकारी कार्यों को हिन्दी में ही कार्यान्वित किया जा रहा है। हिन्दी ने संपर्क भाषा, द्वितीय भाषा, समाचार, इंटरनेट एवं चलचित्र की भाषा के रूप में सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए अपनी एक विश्वव्यापी पहचान बनायी है।

'उद्यान रश्मि' के उद्देश्य के ध्यानार्थ, लेखों के संकलन के दौरान ध्यान रखा गया है कि यह पत्रिका न केवल किसानों /बागवानों/सहभागियों के लिये लाभकारी हो अपितु जनमानस के लिये भी उपयोगी हो। इसमें निहित जैवप्रौद्योगिकी, फसल उत्पादन, फसल सुरक्षा, तुड़ाई उपरांत प्रबंधन के अनेक घटकों पर लिखे गये वैज्ञानिक लेख तकनीकों एवं सूचनाओं का अत्यन्त ही सुन्दर ताना-बाना हैं जिन्हें एक इंद्रधनुषी रंग में प्रस्तुत किया गया है। हर्ष का विषय है कि विशेषज्ञों द्वारा लिखे गये वैज्ञानिक लेखों में कृषकों एवं जनसाधारण में भी इस पत्रिका के प्रति रूचि बढ़ी है। इसके लिये अब भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अनुसंधान संस्थानों, कृषि विश्वविद्यालयों एवं कृषि विज्ञान केन्द्रों के शोधकर्ताओं के लेख सम्मिलित किये जाने के लिये प्राप्त हो रहे हैं। फिर भी, इस पत्रिका में उत्तरोत्तर सुधार के लिये आपके सुझाव आमंत्रित किये जाते हैं।

इस पत्रिका प्रकाशन के लिये मैं इस पत्रिका के रचनाकारों का भी दिल से शुक्रिया अदा करता हूँ कि जिस प्रकार वे निरंतर पत्रिका के लिये लेख प्रेषित करते रहे हैं, वह प्रशंसनीय है। मैं राजभाषा कार्यान्वयन समिति के अध्यक्ष एवं सभी सदस्यों का भी आभारी हूँ जिनके मार्गदर्शन एवं सुझाव के बिना पत्रिका का संपादन सफल नहीं हो सकता था। संपादन मंडल के सहयोगी भी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। आशा है कि यह पत्रिका सभी पाठकों के लिये ज्ञानवर्धक सिद्ध होगी।

(धीरज शर्मा)
सहायक निदेशक
(राजभाषा)

विषय-वस्तु

1. **कच्चे आम से अमचूर उत्पादन करने से आय में वृद्धि** 1
पवन सिंह गुर्जर, ए.के. वर्मा, सुभाष यादव, डी.के. शुक्ला, मनीष मिश्र एवं शैलेन्द्र राजन

2. **नदी तट पर सब्जियों का लागत प्रभावी उत्पादन** 5
राम अवध राम

3. **फलों एवं सब्जियों के जैविक उत्पादन द्वारा कृषकों की आजीविका, भूमि एवं पर्यावरण स्वास्थ्य में वृद्धि** 6
राम अवध राम

4. **फसलों के जैविक उत्पादन से लघु एवं सीमांत कृषकों की आजीविका में सुधार** 7
राम अवध राम

5. **अनुपयोगी/बंजर भूमि को पोषण वाटिका एवं व्यावसायिक बाग में परिवर्तन कर कृषकों के पोषण एवं आजीविका में सुधार** 9
राम अवध राम

6. **स्वास्थ्य एवं समृद्धि के लिये दैवीय फल - आँवला** 10
देवेन्द्र पाण्डेय, घनश्याम पाण्डेय, देवानंद गिरी एवं निकिता नेहाल

7. **लीची एक, फायदे अनेक** 16
स्वाति शर्मा, विशाल नाथ, कल्याण बर्मन, संजय कुमार सिंह एवं अलेमवती पोंगेनर

8. **बेल के फलों का फटना और अपरिपक्व अवस्था में गिरना : समस्या तथा समाधान** 19
देवेन्द्र पाण्डेय, ए.के. त्रिवेदी, एस. के. शुक्ल, निकिता नेहाल एवं देवानन्द गिरी

9. **करौंदा की खेती का व्यावसायिक महत्व** 22
ए.के. सिंह एवं के.के. मिश्र

10. **बड़हल : एक उपयोगी फल वृक्ष और इसकी व्यावसायिक खेती की सम्भावनाएँ** 25
सुशील कुमार शुक्ल, घनश्याम पाण्डेय, देवेन्द्र पाण्डेय एवं मनीष मिश्र

11. **उपोष्ण आड़ू की खेती : एक लाभकारी व्यवसाय** 28
के.के. श्रीवास्तव, घनश्याम पाण्डेय, दिनेश कुमार, श्यामराज सिंह एवं शिवानंद पाण्डेय

12. **पॉलीहाउस में टमाटर अच्छी आय का साधन** 31
वी.के. सिंह, मनोज कुमार सोनी, अम्बरीश कुमार शुक्ला एवं अनिल कुमार यादव

13. **स्पिरुलिना-भविष्य का एक पौष्टिक भोजन** 33
अनुप कुमार भट्टाचार्जी एवं प्रदीप कुमार शुक्ल

14. **बोन्साई-प्रकृति से जुड़ने का आकर्षक तरीका** 37
सुभाष चंद्र यादव, स्वाति कुमारी, मानसी राय शर्मा एवं मनीष मिश्रा

15. **शोभाकार वृक्षों, झाड़ियों एवं आरोही लताओं द्वारा सौन्दर्यीकरण** 39
सुशील कुमार शुक्ल एवं घनश्याम पाण्डेय

16. **मृदा स्वास्थ्य कार्ड की उपयोगिता** 42
विनोद कुमार सिंह, घनश्याम पाण्डेय एवं तरुण अदक

17. **बागवानी के लिये मृदा गठन एवं संरचना का महत्व** 45
घनश्याम पाण्डेय, तरुण अदक एवं विनोद कुमार सिंह

18. **बागवानी फसलों पर अजैव कारकों का प्रभाव और जीन अभिव्यक्ति** 48
यशी बाजपेई, मुत्थुकुमार एम. एवं अंजू बाजपेई

19. **जैविक तथा अजैविक तनाव में एथिलीन की भागीदारी** 51
इसरार अहमद, मुथ्थुकुमार एम., उमेश एच., देवेन्द्र पाण्डेय एवं एस. राजन

20. **उद्यानों में पोषक तत्वों की कमी या अधिकता के दुष्प्रभाव** 53
अजय कुमार त्रिवेदी

21. **औद्यानिक फसलों पर पाले का प्रभाव तथा बचाव के उपाय** 57
अजय कुमार त्रिवेदी, घनश्याम पाण्डेय एवं प्राणनाथ बर्मन

22. **आम के बागों में समेकित प्रबंधन : आवश्यकता एवं महत्व** 61
पी.के. शुक्ल, गुंडप्पा एवं तहसीन फातिमा

23. **थ्रिप्स कीट : आम पर महामारी** 64
गुंडप्पा, पी.के. शुक्ल एवं हरीश पाल

24. **आम में गलन (जेली सीड) की समस्या एवं उसका प्रबंधन** 66
वी.के. सिंह

25. **फल गिरना, फटना और सड़न : समस्या एवं समाधान** 70
दीपक कुमार जैन, आनन्द सिंह जोधा एवं हेमन्त स्वामी

26. **अमरूद का सूत्रकृमि से बचाने हेतु जागरूकता** 75
आर. एम. खान

27. **खाद्य प्रसंस्करण और स्वच्छता** 76
नीलिमा गर्ग एवं संजय कुमार

28. **आम अदरक की अद्‌भुत पादप रासायनिक एवं जैविक गतिविधियाँ** 80
ज्योतिर्मयी लेंका, भारती किल्लाड़ी, रेखा चौरसिया एवं डी.के. शुक्ला

29. **ग्रामीण परिवेश में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा** 82
आभा सिंह, भारती किल्लाड़ी, पवन सिंह गुर्जर, रेखा चौरसिया एवं डी. के. शुक्ला

30. **बागवानी क्षेत्र में भौगोलिक उपदर्शन (जीआई) की उपयोगिता** 84
जितेन्द्र कुमार, सुशील कुमार यादव, प्रीति शर्मा एवं शैलेन्द्र राजन

31. **जनपद लखनऊ के आम के बागों में पूरे वर्ष के दौरान होने वाली कर्षण क्रियाओं का कैलेण्डर** 87
शैलेन्द्र राजन, ए.के. सिंह, पी.के. शुक्ला, गुंडप्पा एवं धीरज शर्मा

32. **वैदिक वाङ्मय में आम तथा इसके भेषज्य उपयोग** 90
अशोक कुमार श्रीवास्तव

33. **प्राथमिकता निर्धारण, अनुवीक्षण एवं मूल्यांकन इकाई (पी.एम.ई) - एक परिचय** 94
प्रीति शर्मा, जितेन्द्र कुमार, सुशील कुमार यादव एवं आर. एम. खान

34. **पूर्वी भारत में द्वितीय हरित क्रांति की आवश्यकता** 96
संजय कुमार सिंह एवं राजीव रंजन राय

35. **साइबर सुरक्षा : महत्त्व एवं आवश्यकता** 100
हरिश्चंद्र वर्मा

कच्चे आम से अमचूर उत्पादन करने से आय में वृद्धि

पवन सिंह गुर्जर[1], ए. के. वर्मा[2], सुभाष यादव[3], डी.के. शुक्ला[4], मनीष मिश्र[5] एवं शैलेंद्र राजन[6]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

आम उत्पादक क्षेत्रों में फलत के दौरान लगभग 3-4 बार आँधी आती है जिसके कारण लगभग 15-20 प्रतिशत कच्चे फल गिर जाते हैं। यदि आँधी तीव्र हो तो इससे अधिक फल भी गिर सकते हैं। इसके अलावा तुड़ाई के दौरान भी लगभग 10-12 प्रतिशत फल फट जाते हैं। इन फलों का बाजार में उचित मूल्य नहीं मिलता है। इन फलों से अमचूर उत्पादन कर अतिरिक्त आय की प्राप्ति की जा सकती है।

आम एक मौसमी फल है जो ग्रीष्म ऋतु के दौरान 3-4 महीने के लिये ही बाजार में उपलब्ध रहता है। आम के कच्चे तथा पके फल स्वास्थ्य के लिये लाभकारी होते है। इसलिए आम का मौसम खत्म होने के बाद भी आम का आनंद लेने के लिये आम के प्रसंस्कृत उत्पाद बनाकर रखे जाते है। कच्चे आम से सामान्यत: अचार तथा चटनी बनायी जाती है। इसके अलावा कच्चे आम को पाउडर या अमचूर के रूप में भी प्रसंस्कृत कर भंडारित कर सकते हैं। एक किलो कच्चे आम से लगभग 200 ग्राम सूखी फाँकें अथवा 5 किलो आम से 1 किलो सूखी फाँकें प्राप्त होती हैं। एक किलो सूखी फाँकों का मूल्य 60 रुपये से 150 रुपये तक मिलता है। सूखी फाँकों का मूल्य उनके रंग तथा नमी की मात्रा पर निर्भर करता है। यदि सूखी फाँकों को पाउडर या अमचूर में परिवर्तित कर बेचा जाये तो एक किलो पाउडर का मूल्य 350 रुपये से 400 रुपये तक होता है ।

अमचूर के औषधीय गुण

अमचूर स्वास्थ्य के लिये बहुत लाभदायक होता है। यह लौह का अच्छा स्रोत है जो गर्भवती महिलाओं तथा रक्ताल्पता से पीड़ित रोगियों के लिये लाभदायक होता है। विटामिन ए, सी और ई का स्रोत होने के कारण यह त्वचा एवं आँखों के लिए लाभदायक होता है तथा स्कर्वी रोग के उपचार में भी सहायक होता है। इसके अलावा अमचूर में अति महत्वपूर्ण औषधीय गुण रखने वाला मेंजीफेरिन नामक यौगिक पाया जाता है जो मधुमेह, विषाणु तथा कैंसर रोधी होता है।

अमचूर स्वाद में तो अम्लीय होता है और यह वायु विकार को कम करता है, साथ ही साथ कब्ज की समस्या से निजात भी दिलाता है। अमचूर के नियमित सेवन से पाचन सुचारु रूप से होता है। अमचूर पाउडर का सेवन वजन घटाने के लिए बहुत अच्छा है क्योंकि इसमें पर्याप्त मात्रा में ऐंटीऑक्सिडेंट तथा कार्बोहाइड्रेट कम मात्रा में होते हैं। यह इसे वजन घटाने के लिये प्रयुक्त पेय पदार्थों के लिये एक उत्कृष्ट घटक बनाता है। अच्छे स्वास्थ्य के लिये अमचूर को विभिन्न व्यंजनों में नियमित रूप से प्रयोग में लाया जा सकता है।

अमचूर के उपयोग

अमचूर का उपयोग विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाने में किया जाता है । इसका उपयोग दाल, सांभर तथा गोलगप्पे के पानी में किया जाता है। इसके अलावा अमचूर चाट मसाला, करी, बिरयानी, चिकेन करी इत्यादि का मुख्य घटक होता है। अमचुर, नींबू एवं इमली के विकल्प के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है। एक चम्मच अमचूर की अम्लता, तीन चम्मच नीबू रस के बराबर होता है ।

अच्छे अमचूर की पहचान

अमचूर हल्के भूरे रंग का होना चाहिये। अमचूर में फफूँद का संक्रमण नहीं होना चाहिये। नमी की मात्रा 8-10 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होनी चाहिये। अम्लता 12-15 प्रतिशत तक होनी चाहिये।

अमचूर उत्पादन की विधि

अमचूर दक्षिणी, पश्चिमी तथा समुद्र तटीय क्षेत्रों में अप्रैल-मई महीने में तथा उत्तरी भारत में मई-जून महीने में बनाया जा सकता है ।

[1,2,3]वैज्ञानिक, [4]सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी, [5]प्रधान वैज्ञानिक एवं [6]निदेशक

फाँकें बनाना

आँधी से गिरे हुए कच्चे फलों या तुड़ाई के दौरान खराब हुए फलों को एकत्रित कर पानी से साफ करना चाहिये। फिर स्टील के चाकू या छीलक से फल का छिलका निकालकर फाँकें बनाते हैं। फाँकें पतली बनानी चाहिये जिससे वे आसानी से जल्दी सूख सकें।

महिला कृषक कच्चे आम को छीलते हुए

परिरक्षक से उपचार

फाँकों में फफूँद लगने से उनका रंग भूरा काला हो जाता है जिसके कारण सूखी हुई फाँकों का उचित मूल्य नहीं मिलता। फफूँद लगने से बचाने के लिये फाँकों को सुखाने से पहले पौटेशियम मेटाबाईसल्फाइट के घोल में 5 मिनट तक डुबाना चाहिए।

फाँकों को सुखाना

फाँकों को धूप में या कम लागत के सोलर ड्रायर में सुखाया जा सकता है। सामान्यत: फाँकों को धूप में खुले में छत पर सुखाया जाता है जिसके कारण धूल या मिट्टी के कण लगने से फाँकों का रंग भूरा हो जाता है। धूप में सुखाने में समय भी अधिक (2-3 दिन) लगता है। सोलर ड्रायर में

फाँकें खुले में छत पर सुखाते हुए

फाँकें सोलर ड्रायर में सुखाते हुए

फाँकें एक दिन में सूख जाती हैं क्योंकि सोलर ड्रायर का तापमान बाहरी तापमान से 8-12 डिग्री सेंटीग्रेड ज्यादा होता है। उच्च गुणवत्ता का अमचूर बनाने के लिए फाँकों को सोलर ड्रायर में ही सुखाना चाहिये।

अमचूर बनाना

ग्राइंडर या पलवेराइजर से सूखी हुई फाँकों से अमचूर बनाया जा सकता है। यह स्टैनलैस स्टील का बना होता है और इसमें 2 हॉर्स पावर की मोटर लगी हुई है। इसके अलावा एक ब्लोअर भी लगा हुआ है जो फाँकों एवं चूर्ण में बची हुई नमी को भी सुखा देता है ।

सूखी हुई फाँकें

अमचूर

विपणन के लिए तैयार अमचूर पैकेट

ग्रामीण इलाकों में अमचूर बनाते समय क्या सावधानी रखें ?

- अमचूर फल लगने के लगभग 60 दिन बाद से फल पकने से पहले तक बनाना चाहिये क्योंकि बहुत छोटे फलों को छीलना एवं काटना एवं फाँकों से पाउडर बनाना कठिन होता है और उनमें फीनोल की मात्रा ज्यादा होने से सूखने के बाद फाँकों तथा अमचूर का रंग काला हो जाता है।
- फल को छीलने के लिये स्टील के चाकू या पीलर का उपयोग करना चाहिये। लोहे के चाकू से छीलने से फाँकों का रंग गहरा भूरा या काला हो जाता है।

अभिनव विधि से अमचूर बनाने का प्रवाह चित्र

आम को धोकर पीलर से छील लें
↓
स्टील के चाकू से पतली फाँकें काट लें
↓
फाँकों को 5 मिनट तक परिरक्षक के घोल में डुबायें
↓
फाँकों को सीआईएसएच सोलर ड्रायर में सुखायें (5-6 प्रतिशत नमी तक)
↓
ग्राइंडर से पीसें
↓
वायुरोधी पैकिंग में पैक करें
↓
भंडारण / विपणन

- जितना हो सके फाँकें पतली काटनी चाहिये। पतली फाँकों को सूखने में कम समय लगता है एवं उनका पाउडर बनाने में भी आसानी होती है।
- अमचूर बनाने की प्रक्रिया एवं भंडारण के दौरान फफूँदी लगने से बचाने के लिये फाँकों को सुखाने से पहले परिरक्षक से उपचारित करना चाहिये।
- फाँकों को धूप में सुखाना हो तो साफ कपड़ा या काली पॉलिथीन शीट के ऊपर फैलाकर सुखाना चाहिये। यदि सोलर ड्रायर उपलब्ध हो तो फाँकों को उसमें ही सुखाना चाहिए।
- ग्रामीण इलाकों में सूखी फाँकों (जिसे खटाई कहा जाता है) को ही बेच दिया जाता है जिससे अधिक लाभ नहीं मिलता। अधिक लाभ कमाने के लिये सूखी फाँकों को पाउडर (अमचूर) में परिवर्तित कर एवं आकर्षक पैकेजिंग कर विपणन करना चाहिये।

सफलता गाथा

उत्तर प्रदेश का मलिहाबाद क्षेत्र दशहरी आम के उत्पादन के लिए विख्यात है। जलवायु परिवर्तन तथा वैश्वीकरण के दौर में, नये कीट तथा रोग लगने तथा जोत का आकार कम होने से आम की खेती में लाभ कम होता जा रहा है। आम की खेती से आय बढ़ाने हेतु प्रसंस्करण एवं उत्पाद विकसित करना आवश्यक है। इसलिए, भा.कृ.अनु.प. -केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ ने फार्मर फर्स्ट परियोजना के अंतर्गत आँधी से गिरे तथा तुड़ाई के दौरान चोट खाये कच्चे फलों से अमचूर बनाने हेतु मोहम्मद नगर तालुकेदारी तथा मीठेनगर गाँव की महिला कृषकों को प्रेरित किया गया। हालाँकि, महिला कृषक कच्चे फलों से सूखी फाँकें बनाती थीं, लेकिन फाँकों की निम्न गुणवत्ता होने तथा विपणन में अधिक बिचौलिये होने के कारण फाँकों का 60-80 रुपये प्रति किलो की दर से मूल्य मिलता था जबकि बाजार में अमचूर का मूल्य 400-500 रुपये प्रति किलो था। इसके लिए महिला कृषकों को उच्च गुणवत्ता की सूखी फाँकें बनाने एवं उनको अमचूर (पाउडर) में परिवर्तित कर पैकेजिंग करने के लिए प्रशिक्षण दिया गया साथ ही विपणन श्रृंखला से बिचौलिये को हटाने के लिये विपणन के नये तरीके अपनाये गये। अमचूर उत्पादन की प्रक्रिया में काम आने वाले उपकरण जैसे स्टील के पीलर, संस्थान द्वारा विकसित कम लागत का सोलर ड्रायर, पैकिंग के लिये हाथ से चालित सीलिंग मशीन तथा अमचूर को फफूँद कम लगने से बचाने के लिये परिरक्षक दिया गया। अमचूर का उचित मूल्य प्राप्त करने के लिये पैकेजिंग एवं विपणन पर भी जोर दिया गया। इस कार्यक्रम में बड़ी संख्या में महिला कृषकों को जोड़ने के लिए एक गैर-सरकारी संस्था 'आम विविधता अनुरक्षण समिति' कसमंडी कला, लखनऊ को जोड़ा गया, जिसने पैकेजिंग एवं विपणन के नये द्वार खोले। इस अमचूर को मोबाइल वैन, कृषि महोत्सव तथा आम प्रदर्शनी के माध्यम से बेचा गया। उच्च गुणवत्ता की सूखी फाँकें बनाने, उनको अमचूर में परिवर्तित कर, उचित पैकेजिंग कर सीधे उपभोक्ता को बेचने से कृषकों को 250-300 रुपये प्रति किलो की दर से मूल्य मिला। इस प्रकार अमचूर उत्पादन से महिला कृषकों की आय पहले की तुलना में लगभग तीन गुना बढ़ गयी।

कृषक की सफलता गाथा

नाम	श्वेता मौर्या
उम्र	21
पता	गाँव-मोहम्मद नगर तालुकेदारी, तहसील-मलीहाबाद, जिला लखनऊ, उत्तर प्रदेश
मोबाइल	09198583393

कृषक की सफलता गाथा

मैं श्वेता मौर्या, आँधी से गिरे हुए तथा तुड़ाई के दौरान चोट खाये कच्चे आम से खटाई (कच्चे आम की सूखी फाँकों से) बनाने का कार्य करती थी। खटाई की कम गुणवत्ता होने तथा उचित बाजार नहीं मिलने के कारण केवल 60-80 रुपये प्रति किलो मूल्य प्राप्त होता था। फरवरी, 2017 में भा.कृ.अनु.प.-केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ के वैज्ञानिकों ने गुणवत्तायुक्त खटाई बनाने तथा खटाई को अमचूर में परिवर्तित करने का प्रशिक्षण देने के साथ-साथ आम छीलक यंत्र भी दिये। संस्थान द्वारा हमें आम छीलक यंत्र, सौर्य ड्रायर, सीलिंग मशीन, ग्राइंडर तथा परिरक्षक दिया गया। आज मैं गाँव की अन्य महिलाओं के साथ कच्चे आम से अमचूर उत्पादन कर रही हूँ। एक गैर-सरकारी संस्था 'आम विविधता अनुरक्षण समिति' के माध्यम से अमचूर की बिक्री करने से मुझे 300 रुपये प्रति किलो की आमदनी हो जाती है जो पूर्व की तुलना में लगभग तीन गुना है। आज मेरे साथ गाँव के अन्य कृषक महिलाएं भी अमचूर उत्पादन करने तथा बेचने से आत्मनिर्भर हो रही हैं।

स्वच्छ भारत अभियान

स्वच्छ भारत अभियान भारत सरकार की एक महत्वाकाँक्षी योजना है जिसके द्वारा महात्मा गाँधी के 150वीं वर्षगाँठ, 2 अक्टूबर, 2019 तक भारत को स्वच्छ बनाने का लक्ष्य रखा गया है। स्वच्छ भारत अभियान को स्वच्छ भारत मिशन आदि नामों से भी उद्धृत करते हैं। इस परियोजना का प्रधान उद्देश्य है भारत के छोटे-बड़े शहरों, उप-नगरों, कस्बों और ग्रामीण इलाकों, सड़कों और बुनियादी ढाँचे को पूर्णरूपेण स्वच्छ बनाना। भारत जैसे विशाल, अधिक आबादी वाले, शिक्षा तथा चिकित्सा के अभाव वाला देश होने को ध्यान में रखते हुए यह एक अत्यन्त ही चुनौतिपूर्ण योजना है। यहाँ सभी लोगों के लिये पर्याप्त भूमि नहीं है और न ही स्वच्छ पेय जल उपलब्ध है।

भारत एक लोकतांत्रिक देश होने के साथ-साथ दुनिया का सर्वाधिक विविधता वाला देश भी है। यहाँ दुनिया के 7 धर्मों के लोग रहते हैं। जातियों के आधार पर यदि विभक्त किया जाये तो यहाँ लगभग 4000 जाति के लोग रहते हैं और यहाँ 1652 भाषाएँ बोली जाती हैं। दुनिया की लगभग सभी जलवायु यहाँ विद्यमान है। ऐसी वैविध्य स्थिति में इस नये देश को स्वच्छ बनाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है और इस चुनौतीपूर्ण कार्य को संपादित करने का बीड़ा उठाया है भारत के देदीप्यमान प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी ने। पहली बार उन्होंने स्वयं 02 अक्टूबर, 2014 को दिल्ली के एक पुलिस चौकी में स्वयं झाड़ू लगाकर स्वच्छता मिशन का आगाज किया था।

स्वच्छ भारत के उद्देश्यों में घरेलू स्वामित्व और सामुदायिक स्वामित्व वाले शौचालयों के निर्माण के माध्यम से खुली जगहों पर शौच करने को खत्म करना और शौचालय के उपयोग की निगरानी के लिये जवाबदेही तंत्र स्थापित करना शामिल है। भारत के सभी हिस्सों के लाखों सरकारी अधिकारियों, कर्मचारियों, विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों के साथ 4041 वैधानिक शहरों, कस्बों और संबंधित ग्रामीण क्षेत्रों में भाग लेने वाला विश्व का सबसे बड़ा स्वच्छता अभियान है।

मिशन में दो उप मिशन शामिल हैं: स्वच्छ भारत अभियान (ग्रामीण), जो पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय के तहत संचालित होता है; और स्वच्छ भारत अभियान (शहरी) जो आवास और शहरी मामलों के मंत्रालय के तहत चलती हैं। इसे सफल बनाने के लिये वर्ष में अनेक बार साप्ताहिक, पाक्षिक एवं मासिक अभियान चलाये जा रहे है। ये अभियान मनोनीत राजदूतों एवं अधिकारियों के मार्गदर्शन में क्रियान्वित किया जाता है।

नदी तट पर सब्जियों का लागत प्रभावी उत्पादन

राम अवध राम[1]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

समस्या

उत्तर प्रदेश में बाराबंकी एवं रायबरेली जिलों के गोमती एवं सरयू नदियों के तट पर व्यापक भूमि उपलब्ध थी। किन्तु इसका उपयोग कृषकों द्वारा पूर्ण रूप से नहीं किया जा रहा था। उपयुक्त तकनीक के अभाव तथा उन्नतशील बीज एवं पौध सामग्री की अनुपलब्धता के कारण नदी तट का समुचित उपयोग नहीं किया जा रहा था।

सहभागी संस्थाएँ

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ, भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय पशु-चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, बरेली, भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ, विश्व बैंक एवं कृषक समूह।

समस्या का निराकरण

राष्ट्रीय नवोन्मेषी परियोजना के अंतर्गत भूमिहीन, लघु एवं सीमान्त कृषकों का चयन किया गया। बाराबंकी के 42 एवं रायबरेली के 35 कृषक समूहों को नदी तट पर सब्जी उत्पादन हेतु प्रशिक्षित किया गया तथा उन्हें विभिन्न सब्जियों के उन्नतशील बीज एवं पौध सामग्री उपलब्ध करायी गयी।

साथ-ही-साथ कृषकों को विभिन्न प्रकार के कम्पोस्ट, जैव नियामक एवं जैविक कीटनाशक बनाने एवं उनका प्रयोग करने के लिये प्रदर्शन के द्वारा प्रशिक्षित किया गया। इन कृषकों ने नदी तट पर जायद एवं रबी ऋतु की ककड़ी, कद्दू, करेला, लौकी, खीरा इत्यादि फसलों का सफल उत्पादन किया जिससे नदी तट पर उपलब्ध 12.1 हेक्टेयर भूमि का दोनों जिलों में उपयोग किया गया।

तकनीक प्रसारण

चयनित कृषकों की आजीविका के सुधार को देखते हुए अन्य कृषकों ने भी उपरोक्त तकनीकियों को अपनाया एवं सब्जियों का उत्पादन करने लगे। इन कृषकों का भी कौशल विकास चयनित कृषकों की ही तरह किया गया तथा इन्हें भी उन्नतशील सब्जियों के बीज एवं पौधे उपलब्ध कराये गये। इस हस्तक्षेप से दोनों जिलों में सब्जी उत्पादन के प्रक्षेत्र में वृद्धि हुई तथा प्रक्षेत्र पर उत्पादित कम्पोस्ट, जैव नियामकों, कीटनाशकों एवं उन्नतशील सब्जियों के बीज के प्रयोग से उत्पादन लागत प्रभावी पाया गया। प्रति कृषक की वार्षिक आय में 30000 से 35000 रुपये की वृद्धि हुई एवं लागत उत्पादन अनुपात 1: 4.5 अंकित किया गया। इसके अतिरिक्त प्रति परिवार के सदस्यों के लिए 100 दिन का रोजगार भी सृजित हुआ।

[1]प्रधान वैज्ञानिक

फलों एवं सब्जियों के जैविक उत्पादन द्वारा कृषकों की आजीविका, भूमि एवं पर्यावरण स्वास्थ्य में वृद्धि

राम अवध राम[1]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

समस्या

कृषि रसायनों के अधिकाधिक प्रयोग से उत्पन्न प्रदूषण संबंधी विकारों से अवगत कृषक विभिन्न बागवानी फसलों के उत्पादन में कृषि रसायनों के प्रयोग में कमी लाने पर विचार कर रहे थे। कृषि रसायनों के प्रयोग से पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य में उत्पन्न संकट से उपभोक्ताओं की पसंद में धनात्मक परिवर्तन हुआ। विकासशील देशों में उपभोक्ता सुरक्षित एवं गुणवत्तायुक्त भोजन की ओर आकर्षित हो रहे हैं। पूरे विश्व में जैविक उत्पादों को सुरक्षित एवं गुणवत्तायुक्त आहार के रूप में स्वीकार किया गया है। बागवानी फसलों के जैविक उत्पादन की उचित तकनीकी के अभाव में फसलों का सफल उत्पादन नहीं हो पा रहा था।

सहभागी संस्थाएँ

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ, विश्व बैंक एवं कृषक समूह।

समस्या निराकरण

बायोडायनमिक, नादेप, वर्मी कम्पोस्ट, बायोडायनमिक तरल कीटनाशक, काउ पैट पिट, अमृत पानी, जीवामृत, पंचगव्य, वर्मीवॉश इत्यादि जैविक निवेश फार्म पर उपलब्ध वस्तुओं से सफलतापूर्वक बनाया जा सकता है। अमरूद एवं आम में बागों से प्रति हेक्टेयर उपलब्ध पत्तियों एवं घासों से 5-6 टन कम्पोस्ट का उत्पादन किया जा सकता है। जैव नियामक जैसे काऊ पैट पिट, वर्मीवॉश, जीवामृत, अमृत पानी, बी.डी. 500, बी.डी. 501, गाय के उत्पादों एवं औषधीय पौधों से बनाकर भूमि की उर्वराशक्ति में सुधार एवं कीट एवं व्याधियों का प्रबंधन किया जा सकता है।

तकनीक का प्रसारण

राष्ट्रीय कृषि नवोन्मेषी परियोजना के अंतर्गत बाराबंकी एवं रायबरेली जिलों में कुल 514 लघु एवं सीमांत कृषकों का चयन किया गया। कृषकों के लिये जैविक निवेश उत्पादन पर अनेक प्रशिक्षण आयोजित किये गये तथा उन्नतशील सब्जियों के बीज एवं संस्थान द्वारा विकसित अमरूद की प्रजातियों के पौधे एवं आँवला की प्रजातियों के पौधों का रोपण किसानों के खेत पर किया गया। कुछ अनुपयोगी एवं ऊँची-नीची भूमि को भी अमरूद एवं आँवला के रोपण के लिये उपयोग किया गया। तीन वर्ष के पश्चात अमरूद के बाग से प्रति परिवार की वार्षिक आय में 35000-40000 रुपये की वृद्धि अंकित की गयी। इस आय में उत्तरोत्तर वृद्धि रबी, जायद एवं खरीफ ऋतु की सब्जियों की अंत:फसल कर की गयी जिससे लागत एवं खर्च का अनुपात 1 : 4 अंकित किया गया।

[1]प्रधान वैज्ञानिक

फसलों के जैविक उत्पादन से लघु एवं सीमांत कृषकों की आजीविका में सुधार

राम अवध राम[1]

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

समस्या

कृषि रसायनों की अधिक कीमत, पर्यावरण प्रदूषण एवं कम वर्षा के कारण सिक्किम, उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड एवं आजमगढ़ जिलों में कृषक विभिन्न फसलों के जैविक उत्पादन में रूचि रखते थे। परंतु उपयुक्त तकनीकी की अनुपलब्धता में फसल उत्पादन कम एवं लागत अधिक थी क्योंकि कृषक जैविक अवशेष एवं पशुओं के मलमूत्र को गाँव के बाहर गड्ढा खोदकर कम्पोस्ट तैयार करने के लिये प्रतिदिन डालते थे जिससे यह कम्पोस्ट एक वर्ष में तैयार होती थी तथा वर्षा ऋतु में गड्ढे में दीर्घकाल तक पानी भरे रहने से पोषक तत्वों का पानी के साथ भूमि में निक्षालन हो जाता था तथा अवायुवीय विघटन से नाइट्रोजन का ह्रास मीथेन के रूप में होता रहता था। इसके अतिरिक्त कृषकों को प्रक्षेत्र पर जैव नियामक एवं जैविक कीटनाशक बनाने का भी ज्ञान नहीं था।

सहयोगी संस्थाएँ

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, बागवानी एवं नकद फसल निदेशालय, सिक्किम।

समस्या निराकरण

जैविक अवशेषों एवं पशुओं के मलमूत्र को कम अवधि में गुणवत्तायुक्त कम्पोस्ट में परिवर्तित करने के लिये बायोडायनमिक, नादेप, सूक्ष्म जीव किण्वित एवं वर्मी कम्पोस्ट का प्रायोगिक प्रदर्शन किया गया। कम्पोस्ट की उपरोक्त विधियों से जैविक अवशेषों का वायुवीय विघटन होता है तथा बायोडायनमिक एवं नादेप कम्पोस्ट में कार्बन एवं नाइट्रोजन का अनुपात दलहनी फसलों के अवशेषों का प्रयोग कर बनाये रखा गया जिससे कम अवधि में गुणवत्तायुक्त कम्पोस्ट तैयार हुई। कम्पोस्ट की गुणवत्ता में वृद्धि हेतु जैविक अवशेषों के विभिन्न परतों में बुझा चूना एवं लकड़ी की राख का प्रयोग किया गया। उपरोक्त कम्पोस्ट जलवायु के अनुसार 3-3½ महीने में तैयार हो गयी जिसमें पोषक तत्वों की मात्रा गोबर की खाद से 2-3 गुना पायी गयी।

खेत पर उपलब्ध वस्तुओं से विभिन्न प्रकार के जैव नियामक जैसे जीवमृत, अमृत पानी, बीजामृत, वर्मीवॉश बीडी-500, बी.डी. 501 एवं काउ पैट पिट बनाकर उपयोग करने का प्रदर्शन किया गया। कीट एवं रोगों से फसल सुरक्षा हेतु विभिन्न प्रकार पौध आधारित जैविक कीटनाशकों के बनाने का भी प्रदर्शन किया गया। इसके अतिरिक्त कृषकों को फसल चक्र, बिछावन, अंतः फसलें, आच्छादन फसलों के उपयोग एवं बीज शोधन इत्यादि की जानकारी मौखिक एवं प्रायोगिक रूप से प्रदान की गयी।

[1]प्रधान वैज्ञानिक

तकनीक का प्रसारण

जैविक उत्पादन के तकनीक के प्रसारण हेतु कृषकों के लिये अनेक प्रशिक्षण के साथ-साथ एवं प्रक्षेत्र प्रदर्शन आयोजित किये गये। ये प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन लगातार 11 वर्षों तक किये गये जिसके अंतर्गत 123 प्रक्षेत्र प्रदर्शन 212 कृषकों की 100 हेक्टेयर भूमि पर सिक्किम में किया गया जिससे सिक्किम भारत का प्रथम जैविक राज्य घोषित किया गया। उत्तर प्रदेश में बुन्देलखंड एवं आजमगढ़ जिलों में 125 कृषकों के प्रक्षेत्र पर प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन का आयोजन किया गया। यह प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड द्वारा वित्त-पोषित परियोजना के अंतर्गत किया गया। वर्तमान में इन कृषकों की संख्या 3000 से अधिक हो गयी है तथा अनेक संस्थाएँ उपरोक्त कृषकों के प्रक्षेत्रों का जैविक प्रमाणन कर उपयुक्त दर पर कृषकों के उत्पादन का क्रय करती हैं। फलस्वरूप कृषकों की आजीविका तथा भूमि एवं पर्यावरण स्वास्थ्य में धनात्मक सुधार हुआ है।

'कृष्ण कहते हैं नदियों में मैं गंगा हूँ।'

गंगा के प्रतीक को भी समझने जैसा है। गंगा के साथ हिंदू मन बड़े गहरे में जुड़ा है। गंगा को हम भारत से हटा लें, तो भारत को भारत कहना मुश्किल हो जाये। सब बचा रहे, गंगा हट जाये, भारत को भारत कहना मुश्किल हो जाये। गंगा को हटा ले तो भारत का साहित्य अधूरा पड़ जाये। गंगा को हम हटा लें तो भारत के न जाने कितने ऋषियों के नाम खो जायें, गंगा को हम हटा लें तो हमारे तीर्थ ही खो जायें, हमारे सारे तीर्थ की भावना खो जाये।

गंगा के साथ भारत के प्राण बड़े पुराने दिनों से कमिटेड है। बड़े गहरे से जुड़े है। गंगा जैसे हमारी आत्मा का प्रतीक हो गयी है। मुल्क की भी अगर कोई आत्मा होती हो और उसके प्रतीक होते हों तो गंगा ही हमारा प्रतीक है। पर क्या कारण होगा गंगा के इस गहरे प्रतीक बन जाने का कि हजारों-हजारों वर्ष पहले कृष्ण भी कहते हैं, नदियों में मैं गंगा हूँ।

गंगा कोई नदियों में विशेष उस अर्थ में नहीं है। गंगा कोई बहुत बड़ी नदी नहीं है। सैकड़ों नदियाँ उस से बड़ी हैं पर कुछ गंगा के पास है जो और किसी नदी के पास नहीं है, और उस कुछ और के साथ भारतीय मन ने गंगा नदी के साथ एक तालमेल बना लिया। एक तो बहुत मजे की बात है पूरी पृथ्वी पर गंगा सबसे जीवंत नदी है, अलाइव है। सारी नदियों का पानी आप बोतल में भर के रख दें सभी नदियों का पानी सड़ जाएगा, गंगा का नहीं सड़ेगा। केमिकली गंगा बहुत विशिष्ट है। उसका पानी सड़ता नहीं वर्षो रखा रहे, बंद बोतल में भी वो अपनी पवित्रता और स्वच्छता कायम रखता है, ऐसा किसी नदी का पानी पूरी पृथ्वी पर नहीं हैं, सभी नदियों के पानी इस अर्थ में कमजोर हैं।

गंगा का पानी इस अर्थ में विशेष मालूम पड़ता है, उसका विशेष केमिकल गुण मालूम पड़ता है। गंगा में हम इतनी लाशें फेंकते हैं, अकेले गंगा के पानी में सब कुछ लीन हो जाता है, हड्डी भी। दुनिया की किसी नदी में वैसी क्षमता नहीं। हड्डी भी पिघल के लीन हो जाती है और बह जाती है और गंगा को अपवित्र नहीं कर पाती। गंगा सभी को आत्मसात कर लेती है, हड्डी को भी, कोई भी दूसरे पानी में लाश को हम डालेंगे पानी सड़ेगा, पानी कमजोर और लाश मजबूत पड़ती है, गंगा में हम लाश को डालते है; लाश ही बिखर जाती है, मिल जाती है। अपने तत्वों में गंगा अछूती बहती रहती है उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

गंगा साधारण नदी नहीं है, एक आध्यात्मिक यात्रा है और एक आध्यात्मिक प्रयोग लाखों वर्षों तक लाखों लोगों का उसके निकट मुक्ति को पाना परमात्मा के दर्शन को उपलब्ध होना, आत्म साक्षात्कार को पाना, लाखों लोगों का उसके किनारे आकर अंतिम घटना को उपलब्ध होना, लाखों-लाखों वर्षो से गंगा के किनारे बैठकर भारत के मनीषी प्रभु को पाने की चेष्ठा करते रहे हैं और जब भी किसी व्यक्ति ने गंगा किनारे प्रभु को पाया है तो गंगा भी उस उपलब्धि से वंचित नहीं रही, गंगा भी आच्छादित हो गयी है। गंगा का किनारा उसके रेत के कण इन लाखों वर्षों में स्पिरिचुअल चार्ज हो गये हैं, आध्यात्मिक रूप से तरंगायित हो गये इसीलिए हमने गंगा किनारे तीर्थ बनाये, इसलिए लोग गंगा की यात्रा करते रहे, जो लोग वहाँ साधना कर रूपांतरित हुए वे सारे लोग अपनी जीवन उर्जा को उसके पानी पर उसके किनारों पर छोड़ गये है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, 'मैं नदियों में गंगा हूँ।'

-ओशो, गीता दर्शन

अनुपयोगी/बंजर भूमि को पोषण वाटिका एवं व्यावसायिक बाग में परिवर्तन कर कृषकों के पोषण एवं आजीविका में सुधार

राम अवध राम[1]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

समस्या

बंजर/अनुपयोगी एवं घरों के आसपास की भूमि का बाराबंकी के त्रिवेदीगंज एवं हैदरगढ़ ब्लॉकों में किसी भी प्रकार का उपयोग नहीं किया जा रहा था। यह भूमि वर्षों से अप्रयुक्त थी।

सहभागी संस्थाएँ

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ, भा.कृ.अनु.प.-भारतीय पशु-चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, विश्व बैंक एवं कृषक समूह।

समस्या का निराकरण

उपरोक्त भूमि के उपयोग के लिये अमरूद एवं आँवला के पौधों का वैज्ञानिक तरीके से रोपण किया गया। यह कार्यक्रम 22 हेक्टेयर भूमि में 708 कृषकों के प्रक्षेत्र पर किया गया। अमरूद की ललित एवं श्वेता, आँवला की एन. ए.-6 एवं एन.ए.-7 प्रजाति का रोपण किया गया। रोपण के पश्चात बाग में रबी, जायद एवं खरीफ फसलों की अन्तः फसलों का उत्पादन किया गया तथा घरों के आसपास की भूमि में अमरूद एवं आँवला के पौधे लगाये गये तथा उनको देशी कुक्कुट पालन से जोड़ा गया।

तकनीकी का पुनः प्रसारण एवं प्रदर्शन

प्रारंभ में 70 कृषकों का इस प्रणाली द्वारा कौशल विकास प्रदान कर किया गया। उन्हें अमरूद एवं आँवला के पौधो एवं देशी मुर्गी के बच्चे वितरित किये गये। इस कृषि प्रणाली से कृषकों की वार्षिक आय में 40000-45000 रुपये की वृद्धि तृतीय वर्ष में अंकित की गयी। इस प्रणाली में लागत एवं व्यय का अनुपात 1: 3.5 एवं रोजगार सृजन (50 प्रति परिवार) का आकलन किया गया।

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती। स्वयंप्रभा समुज्जवला, स्वतंत्रता पुकारती।
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो। प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो बढ़े चलो।।
असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह-सी। सपूत मातृभूमि के रूको न शूर साहसी।।
अराति सैन्य सिन्धु में, सुबाड़वाग्नि से जलो। प्रवीर हो जयी बनो-बढ़े चलो बढ़े चलो।।

-जयशंकर प्रसाद

[1]प्रधान वैज्ञानिक

स्वास्थ्य एवं समृद्धि के लिये दैवीय फल - आँवला

देवेन्द्र पाण्डेय , घनश्याम पाण्डेय , देवानन्द गिरि एवं निकिता नेहाल

नहीं हो तो इसके सूखे चूर्ण को शहद के साथ मिश्रित कर सेवन किया जा सकता है। आँवला के इन्हीं गुणों के कारण इसे 'रसायन' एवं 'मेधा रसायन' (बुद्धि का विकास करने वाला) की श्रेणी में रखा गया है।

पौराणिक महत्व

आँवला के बारे में कहा जाता है कि राजा मान्धाता ने महात्मा वशिष्ठ जी से एक प्रश्न पूछा था, जिसके जवाब में वशिष्ठ जी ने कहा था–महाभाग! भगवान विष्णु के थूकने पर उनके मुख से चन्द्रमा के समान कांतिमान एक बिंदु प्रकट होकर पृथ्वी पर गिरा। उसी से आमलक (आँवला) का महान वृक्ष उत्पन्न हुआ, जो सभी वृक्षों का अदिभूत कहलाता है। उसी समय प्रजा कि सृष्टि करने के लिये भगवान ने ब्रह्माजी को उत्पन्न किया और ब्रह्माजी ने देवता, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, नाग तथा निर्मल अंतःकरण वाले महर्षियों को जन्म दिया। उनमें से देवता और ऋषि उस स्थान पर आये, जहाँ विष्णु प्रिय आमलक का वृक्ष था। महाभाग! उसे देखकर देवताओं को बड़ा विस्मय हुआ क्योंकि उस वृक्ष के बारे में वे नहीं जानते थे। उन्हें इस प्रकार विस्मित देखकर आकाशवाणी हुई–महर्षियों! यह सर्वश्रेष्ठ आमलक का वृक्ष है, जो विष्णु को प्रिय है। इसके स्मरण मात्र से गोदान का फल मिलता है। स्पर्श करने से इससे दुगुना और फल–भक्षण करने से तिगुना पुण्य प्राप्त होता है। यह सब पापों को हरण करने वाला वैष्णव वृक्ष है। इसके मूल में विष्णु, उसके ऊपर ब्रह्मा, स्कंध में परमेश्वर भगवान रुद्र, शाखाओं में मुनि, टहनियों में देवता, पत्तों में वसु, फूलों में मरुद्गण तथा फलों में समस्त प्रजापति वास करते हैं। आमलक सर्वदेवमय है। अतः विष्णुभक्त पुरुषों के लिये यह परमपूज्य है।

धर्म परायण हिन्दू इसके फलों एवं वृक्ष को अत्यन्त पवित्र मानते हैं। ऐसा कहा जाता है कि यदि कार्तिक मास में इसके वृक्ष के नीचे बैठकर विष्णु की पूजा की जाये तो स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यदि तुलसी का पौधा न मिले तो भगवान विष्णु की पूजा आँवला के वृक्ष के नीचे बैठ कर की जा सकती है। हिन्दू धर्म में ऐसी मान्यता है कि आँवला के वृक्ष के नीचे पिण्ड दान करने से पितरों को मुक्ति प्राप्त होती है। हिन्दू धर्म के अनुसार कार्तिक मास में कम-से-कम एक दिन आँवला के वृक्ष के नीचे भोजन करना अत्यन्त शुभ माना जाता है, जब इसके फल परिपक्व होते हैं। आँवला के फलों का लगातार 40 दिनों तक सेवन करते रहने वाला व्यक्ति में नयी शारीरिक स्फूर्ति आती है तथा कायाकल्प हो जाता है।

बंजर भूमि हेतु उपयुक्तता

भारत के 379 मिलियन हेक्टेयर भौगोलिक क्षेत्र में 176 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र बंजर है। इन क्षेत्रों में आँवला की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। आँवला की खेती ऊसर, बीहड़, खादर, नदियों की तलहटी, समुद्र के किनारे, शुष्क, अर्धशुष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक हो रही है। यही कारण है कि हाल के वर्षो में आँवला आच्छादित प्रक्षेत्र तेजी से बढ़ रहा है।

औषधीय महत्ता : आँवला के फलों, पत्तियों तथा फूलों का उपयोग लगभग 38 प्रकार के मानव विकार हेतु किया जाता है। इनमें विशेषकर पेचिस, आतेसार, अस्थमा, मधुमेह, पीलीया, कफ, एन्थैक्स, हैजा, बांझपन आदि को दूर करने के लिये किया जाता है।

आँवला के नियमित सेवन से पाचन तंत्र में सुधार होता है। आँवला के फल का सेवन कर पानी पीने से इसका अच्छा स्वाद (मीठा) लगता है। लौह की प्रचुरता के कारण मानव शरीर में रक्त परिवहन में सुधार होता है। आँवला के सेवन से मानव शरीर में अम्ल को नियमित करने में सहायता मिलती है।

आँवला के फल में पाँच रसायन विद्यमान होने के कारण 'रशा धातु' तथा 'रक्त धातु' नियंत्रित होता है तथा लीवर सक्रिय बना रहता है।

आँवला के नियमित सेवन से मानव शरीर में कोलेस्ट्राल की कमी दूर होती है। परिणामतः हृदयाघात की संभावना कम हो जाती है। आँवला का सेवन करने से मस्तिष्क स्वस्थ होता है तथा मेधा में नियमित सुधार होता है। आँवला सेवन से बाँझपन कम करने तथा उत्पादन क्षमता में बढ़ोतरी होती है।

नियमित सेवन से मुख संबंधी विकार में सुधार होता तथा मानव शरीर में बाल, नाखून, दाँत, हड्डी, त्वचा आदि में सुधार होता है तथा आँख की रोशनी बढ़ती है। आँवला में विटामिन 'सी' टेनिन, फ्लेवोनॉयड आदि अधिक मात्रा में पाये जाते हैं जिसके कारण इसमें ऐंटीऑक्सीडेंट होता है। यह बीमारियों से लड़ने की क्षमता प्रदान कराता है। इसमें नियमित

सेवन से शरीर में प्रतिरोधक क्षमता तथा ओज का विकास होता है।

आँवला से च्यवनप्राश, त्रिफला, अमृत कलश, ट्राईलैक्स, आँवला प्लैक्स, न्यूट्राले, टाइलोफोरा प्लास इत्यादि बनाया जाता है।

चर्म उद्योग में आँवला

आँवला के फलों, पत्तियों एवं छाल में अत्यधिक मात्रा में टैनिन होने के कारण चर्म उद्योग में इसका अत्यधिक महत्व है। यह उद्योग काफी निर्योनोन्मुखी है तथा इसमें जंगली एवं देशी आँवला का उपयोग अधिक होता है।

सौंदर्य प्रसाधन उद्योग में आँवला

कई प्रकार की सौंदर्य प्रसाधन सामग्रियों मे आँवला एक प्रमुख घटक के रूप में प्रयोग किया जाता है। आँवला आधारित शैम्पू, तेल, फेस क्रीम की बाजार में काफी माँग है। इस प्रकार के अन्य कई उत्पादों को बनाने की आवश्यकता है जो विदेशी बाजारों की आवश्यकताओं को पूरा कर सके।

प्रंसस्करण उद्योग में आँवला

कसैला होने के कारण आँवला के फल का उपयोग ताजे फल के रूप में बहुत ही कम होता है। फलों से कई प्रकार के संसाधित पदार्थ जैसे गूदा, जूस, स्कवैश, आर.टी. एस., मुरब्बा, शर्करा के घोल से आँवला की फाँके, कैंडी एवं चूर्ण बनाये जा सकते हैं। आँवला का गुटका के रूप में प्रयोग करने वाले व्यक्तियों के लिये आँवला को सुपारी, पान के गुटका को आसानी से स्थानापन्न कर सकती है जो स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उत्तम है। आँवला कैण्डी एवं शर्करा में आँवला की फाँकें में मुरब्बा की तुलना में अधिक पोषक तत्व सुरक्षित रहते हैं। अत: इन उत्पादों को निर्यात के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। आँवला प्रसंस्करण उद्योग की सफलता के लिये विपणन व्यवस्था के साथ-साथ यह आवश्यक है कि प्रसंस्करण हेतु उपयुक्त प्रजातियाँ पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध रहें। प्रमुख प्रजातियाँ की उपलब्धता का विवरण निम्नानुसार है।

आँवला के विभिन्न उत्पाद

आँवला प्रजातियाँ की उपलब्धता

प्रजातियाँ	उपलब्धता
बनारसी, कृष्णा, नरेन्द्र आँवला-10	15 अक्टूबर से 15 नवंबर
फ्रांसिस, कंचन, नरेन्द्र आँवला-6, नरेन्द्र आँवला-7, लक्ष्मी-52	15 नवंबर से 30 दिसंबर
चकैया	1 जनवरी से 15 फरवरी

इस अवधि में प्रसंस्करण करने वाली इकाईयों द्वारा ताजे फल से सीधे उत्पाद बनाये जा सकते हैं। फलों को उपचारित कर उनका भंडारण भी एक निश्चित अवधि तक किया जा सकता है।

कच्चे फलों का भंडारण

उपचार	भंडारण अवधि
कमरे के सामान्य तापमान (27-29°सें.) पर	4-5 दिन
4% बोरेक्स के घोल में 2 मिनट के लिये	9 दिन
जीरो एनर्जी भंडारण	12 दिन
2-5° सेंटीग्रेड तापमान पर	15 दिन
15% नमक घोल में सामान्य तापक्रम पर	90 दिन
10% नमक + 200 पी.पी.एम सल्फर डाई-ऑक्साइड + 0.5% एसीटिक अम्ल के घोल में सामान्य तापमान पर	90 दिन

आँवला से अतिरिक्त आय का सृजन

आँवला हल्की जड़ों वाला पर्णपाती एवं छितरी पत्तियों वाला वृक्ष है। साल के तीन-चार माह में पेड़ पर पत्तियाँ नहीं

रहती है तथा शेष माह में छितरी पत्तियाँ होने के कारण भूमि में पर्याप्त भाग में सूर्य का प्रकाश उपलब्ध रहता है। परिणामतः इसके साथ सहफसली खेती की अनेक संभावनायें हैं। फलों में अमरूद, करौंदा, सहजन एवं बेर जबकि सब्जियों में लौकी, भिण्डी, फूलगोभी, धनियाँ, फूलों में ग्लेडियोलस एवं गेंदा, आँवला के साथ सहफसली खेती के रूप में काफी उपयुक्त पाये गये हैं। इसके अलावा तुलसी, कालमेघ, सतावर, सर्वगंधा एवं अश्वगंधा की सहफसली खेती के भी अच्छे नतीजे प्राप्त हुए हैं।

सफल प्रवर्धन विधियाँ

उत्तर भारत में आँवला का व्यावसायिक प्रवर्धन पैबन्दी चश्मा या विरूपित चश्मा विधि के द्वारा मई से सितंबर माह तक 60-90 प्रतिशत सफलता के साथ किया जाता है जबकि नियंत्रित दशाओं (पाली/शेड नेट) में कोमल शाख बंधन द्वारा साल के 8-10 महीनों में सफलतापूर्वक (70% सफलता के साथ) प्रवर्धन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त आँवला की शांकुर शाखों को भीगी हुई माँस को घास या अखबार के टुकड़ों में लपेट कर 5-7 दिनों तक परिवहन भंडारण किया जा सकता है।

आँवला में कलिकायन

अत्यधिक आय वाली फसल

आँवला बहुत की कम लागत में अत्यधिक आय देने वाली फसल है। एक पूर्ण विकसित आँवला के वृक्ष से एक से तीन क्विंटल फल लिया जा सकता है इस प्रकार 15-20 टन प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त की जा सकती है। इसकी बागवानी से प्रति हेक्टेयर क्षेत्र से चालीस हजार रुपये से लेकर दो लाख रुपये प्राप्त किये जा सकते हैं।

सुधरी हुई अधिक उत्पादकता वाली किस्में

नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, फैजाबाद (नरेन्द्र आँवला-4, नरेन्द्र आँवला-5, नरेन्द्र आँवला-6, नरेन्द्र आँवला-7), गुजरात कृषि विश्वविद्यालय, आनन्द (आनन्द-1 एवं आनन्द-2) एवं कृषक किस्म लक्ष्मी-52 के रूप में सुधरी हुई चयनित किस्म विकसित की गयी है।

कंचन (नरेन्द्र आँवला-4) : यह चकैइया किस्म से चयनित किस्म है। फल मध्यम आकार के गोल एवं हल्के पीले रंग के अधिक गूदायुक्त होते हैं। गूदा रेशायुक्त होने के कारण यह किस्म गूदा निकालने एवं अन्य परिरक्षित पदार्थ बनाने हेतु पसंद की जाती है।

कृष्णा (नरेन्द्र आँवला-5) : यह बनारसी किस्म से चयनित एक अगेती किस्म है। इस किस्म के फल बड़े ऊपर से तिकोने, फल की सतह चिकनी, सफेद हरी से हल्की पीली तथा लाल धब्बेदार होती है। यह किस्म मुरब्बा, कैण्डी एवं जूस बनाने हेतु अत्यन्त उपयुक्त पायी गयी है।

नरेन्द्र आँवला-6 : यह चकैइया से चयनित किस्म है। पेड़ फैलाव लिये अधिक उत्पादन देने वाले होते हैं। फलों

एन.ए.-7

एन.ए.-7

एन.ए.-10

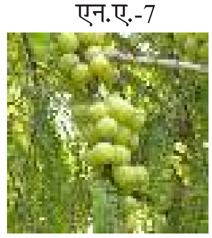

एन.ए.-10

एन.ए.-6

का आकार मध्यम से बड़ा, गोल, सतह चिकनी, हरा पीला, चमकदार, आर्कषक, गूदा लगभग रेशाहीन मुलायम होता है। यह किस्म मुरब्बा, जैम एवं कैंडी बनाने हेतु उपयुक्त पायी गयी है।

नरेन्द्र आँवला-7 : यह फ्रांसिस (हाथी झूल) किस्म के बीजू पौधे से चयनित किस्म हैं। यह किस्म ऊतक क्षय रोग से मुक्त है। फल मध्यम से बड़े आकार के, ऊपर तिकोने, चिकनी सतह, हल्के पीले रंग वाले होते हैं। इस किस्म में अधिक फलत के कारण इसकी शाखाओं के टूटने का खतरा रहता है। अतः फल वृद्धि के साथ शाखाओं को सहारा देना उचित होता है। यह किस्म च्यवनप्राश, चटनी, आचार, जैम एवं स्कवैश बनाने हेतु अच्छी पायी गयी है।

लक्ष्मी-52 : यह फ्रांसिस (हाथी झूल) किस्म के बीजू पौधे से प्रतापगढ़ के किसान द्वारा चयनित किस्म है। फल मध्यम से बड़े आकार के, चिकनी सतह वाले तथा हल्के पीले रंग के होते हैं। इस किस्म की प्रमुख समस्या अधिक फलत के कारण इसकी शाखाओं का टूटना है। अतः फल वृद्धि के समय शाखाओं को सहारा देना उचित होता है। बड़े आकार के फलों के कारण यह किस्म मुरब्बा, कैंडी बनाने हेतु उपयुक्त पायी गयी है।

चकैया

चकैया

कृष्णा

कृष्णा

लक्ष्मी-52

लक्ष्मी-52

कंचन

कंचन

निर्यात की असीम संभावनाएँ

विश्व में आँवला का उपयोग औषधि निर्माण, सौन्दर्य प्रसाधन एवं संसाधित पदार्थ निर्माण इकाईयों में लगातार बढ़ने के कारण इसमें निर्यात की असीम सम्भावनाएँ है। अब आवश्यकता इस बात की है कि आँवला के गुणों का विश्वस्तर पर प्रचार-प्रसार किया जाये तथा उच्च गुणवत्तायुक्त संसाधित पदार्थ बनाये जायें जिनको निर्यात किया जा सके।

क्या करने की आवश्यकता है?

अधिक उत्पादन हेतु कई किस्मों के एक साथ लगायें : आँवला में स्वयं बंधता एक सामान्य समस्या है। अतः दो किस्मों के एकान्तर क्रम में लगाना चाहिये। सबसे उत्तम संयोग नरेन्द्र आँवला-6, नरेन्द्र आँवला-7 एवं कंचन एवं कृष्णा का पाया गया है।

फसल को कीटों एवं रोगों से बचायें

आँवला में छालभक्षी कीट (इन्डर बेला टेट्राओनिस), प्ररोह पिटिका या शूट गाल बनाने वाला कीट (बेटुसा, स्टाइलोफोरा) एवं आँवला एफिड (सोटेडोनिया एम्बालिका) कीट का प्रकोप होता है। छालभक्षी कीट के नियंत्रण हेतु सुरंगों एवं आवासीय छिद्रों को साफ कर रूई के फाये को

छालभक्षी कीट द्वारा प्ररोहों को नुकसान

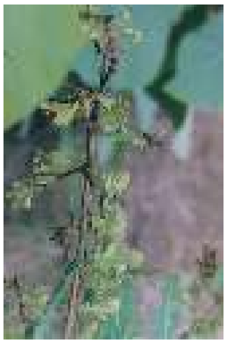

पत्तियों एवं तने पर आँवला एफिड का प्रकोप

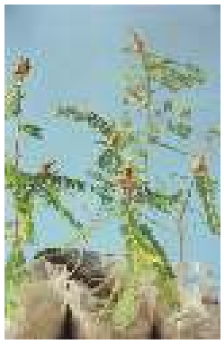

प्ररोही पीटिका का नर्सरी के पौधों में प्रकोप

आँवला के फल पर एन्थ्रेकनोज

0.025 प्रतिशत डाइक्लोरोवास के घोल में भिगाकर छिद्रों में रखकर गीली मिट्टी से बंद कर देना चाहिये। प्ररोह पिटिका कीट के नियंत्रण के लिये गॉल वाले प्ररोहों को काटकर कीड़ों सहित नष्ट कर देना चाहिये तथा जिन बागों में इसका प्रकोप लगातार होता हो, उसमें 0.05 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास कीटनाशी का छिड़काव जून माह में करना चाहिये तथा दूसरा छिड़काव 15 दिनों के बाद कर देना चाहिये। आँवला एफिड के नियंत्रण हेतु 0.06 प्रतिशत डायमेथोएट या 0.05 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास का छिड़काव करना चाहिये।

आँवला में मुख्यत: दो बीमारियाँ जैसे रस्ट एवं नीली फफूँद का प्रकोप ज्यादा देखा जाता है। रस्ट का प्रकोप फलों एवं पत्तियों दोनों पर होता है जिसके नियंत्रण हेतु घुलनशील गंधक (0.4%) के तीन छिड़काव से नियंत्रण पाया जा सकता है। फलों को ठीक प्रकार से नहीं तोड़ने से फलों पर चोट तथा खुरच लगने से नीली फफूँद का प्रकोप होने की संभावना रहती है। फलों को कार्बेन्डाजिम या थायोफनेट मिथाइल (0.1%) प्रतिशत से उपचारित कर भी रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

फसल नुकसान का ध्यान रखें : आँवला का फल शीघ्र नष्ट होने वाला होता है। अत: इसकी ठीक प्रकार से तुड़ाई एवं संभलाव आवश्यक है अन्यथा फलों पर नीली फफूँद का प्रकोप होने की संभावना होती है।

आँवला का जैविक उत्पादन : आँवला से अनेक परिरक्षित पदार्थ बनाये जाते हैं। कुछ गुणवत्तायुक्त परिरक्षित पदार्थ जैसे मुरब्बा, जूस, स्कवैश, आर.टी.एस., शर्करा के घोल मे फाँके, कैण्डी, चूर्ण, सुपारी, अचार इत्यादि। इसी प्रकार से कई प्रकार की दवायें एवं प्रसाधान सामग्रियाँ भी आँवला से बनायी जाती हैं। अत: पोषण एवं औषधीय उपयोग हेतु आँवला के जैविक उत्पादन की आवश्यकता है जो स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद होता है।

दोहे

माटी कहे कुम्हार से, तू क्या रौंदे मोय। एक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंदूगी तोय।।
माला फेरत जुग गया, फिरा न मन का फेर। कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर।।

-कबीरदास

लीची एक, फायदे अनेक

स्वाति शर्मा[1], विशाल नाथ[2], कल्याण बर्मन[3], संजय कुमार सिंह[4] एवं अलेमवती पोंगेनर[5]
भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर, बिहार

लीची एक लोकप्रिय मौसमी फल है। यह मध्यम आकार का उपोष्ण कटिबंधीय सदाबहार फल वृक्ष है। इसकी तुड़ाई भारत के बिहार राज्य में मई-जून के माह में की जाती है। आकर्षक लाल रंग, सफेद स्वादिष्ट मीठा गूदा, उच्च पोषण और विभिन्न रोगों से लड़ने की इसकी अनूठी क्षमता की वजह से यह फल लोगों में अत्यधिक लोकप्रिय है। इसके तत्व जैसे फ्लोवोनॉयड, टैनिन, फाइबर और ऐंथोसायनिन, स्टेरोल्स के कारण स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हैं। इसके विभिन्न भागों का प्रयोग भारतीय और चीन की प्राचीन चिकित्सा प्रणाली में किया जाता रहा है।

लीची *सापिनडेसी* परिवार का एक फल है जो मूलत: दक्षिण चीन के क्वांगटुंग और फुकिएन क्षेत्र से है। लीची का गूदा अपने उत्कृष्ट स्वाद तथा उच्च पोषण के कारण बहुत लोकप्रिय है और उच्च दाम पर बिक्री होता है। इस फल का बाहरी रंग आकर्षक लाल, स्वाद मनोरम और व्याप्त पोषक तत्वों के कारण इसे फलों की रानी भी कहा जाता है। चीन, भारत, थाइलैंड, वियतनाम, बंगलादेश, नेपाल, फिलीपिन्स, इंडोनेशिया, ऑस्ट्रेलिया, मॉरीशस, अमेरिका, इजराइल और मेडागास्कर देशों में लीची की बागवानी की जाती है। लीची के उत्पादन में चीन और भारत का लगभग 91 प्रतिशत योगदान है। यह मनोरम फल प्रमुख रूप से अपने उत्पादन क्षेत्र के आसपास के लोगों के खाने के उपयोग में आता है। इसका मुख्य कारण है कि तुड़ाई उपरांत इसके छिलके का रंग भूरा होने लगता है।

लीची की बागवानी भारत में मुख्यत: बिहार, झारखंड, छतीसगढ़, पंजाब, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल, असम, उत्तराखंड, ओडिशा और हिमाचल प्रदेश में की जाती है। इसके अलावा लीची के बाग जम्मू-कश्मीर, झारखंड, मध्य प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, सिक्किम और तमिलनाडु में भी हैं। बिहार में 31.48 हजार हेक्टेयर भूमि में लीची के बाग हैं जिनमें से 2013-14 वर्ष में 234.2 हजार मीट्रिक टन फल का उत्पादन प्राप्त हुआ था। बिहार में लीची की बागवानी प्रमुख रूप से मुजफ्फरपुर, वैशाली, पूर्वी चंपारण, पश्चिम चंपारण, सीतामढ़ी, शिवहर, समस्तीपुर और भागलपुर जिलों में की जाती है। लीची भारत से मुख्यत: बांग्लादेश और यूनाइटेड किंगडम को निर्यात किया जाता है। 2014-15 वर्ष में बंगलादेश और यूनाइटेड किंगडम में 915 मीट्रिक टन और 44.6 मीट्रिक टन क्रमश: निर्यात हुआ जिससे 163.8 लाख रुपये और 17.73 लाख रुपये की प्राप्ति हुई। इसमें पिछले वर्ष की अपेक्षा 662.41 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यह अप्रत्याशित वृद्धि विदेशों में लीची की बढ़ती लोकप्रियता का परिचायक है। भारत से ताजे फलों के निर्यात में लीची का 0. 17 प्रतिशत ही योगदान है जिसे और बढ़ाने के लिये निरंतर प्रयत्नशील रहना होगा।

लीची के फल को 2000 ईसा पूर्व से ही चीन में खाया जाता रहा है। यह फल भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में 17वीं शताब्दी के अंत में बर्मा से आया था। लीची बहुत सारे चीनी सम्राटों का पसंदीदा फल था। लीची एक गैर-क्लाईम्क्टेरिक फल है अर्थात यह फल पूरी तरह से पकने के बाद ही पेड़ से तोड़ा जाता है। इस फल का अधिकतम स्वाद और पोषण पूरी तरह पकने के बाद ही मिलता है। इसके बीज अैर छिलके अखाद्य होते हैं। लीची के गूदे में विटामिन सी, विटामिन ई, पॉलिफिनॉल, फलोवोनोल जैसे अनेक ऐंटीऑक्सीडेंट यौगिक विद्यमान होते हैं। इस फल का उपयोग पारंपरिक चीनी तथा भारतीय चिकित्सा प्रणाली में कई महत्वपूर्ण गुणों तथा अनेक रोगों से लड़ने के लिये किया जाता रहा है। आधुनिक अनुसंधान ने भी लीची की कई रोगों के प्रति रक्षात्मक क्षमता की पुष्टि की है। लीची में ऐंथोसायनिन, फिनोलिक्स जैसे कई जैव-सक्रिय यौगिक पाये जाते हैं जो हृदय रोग, मधुमेह, गुर्दा रोग तथा कर्क रोग से भी लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता देते हैं। लीची की पत्तियों में सूजन, दर्द और ज्वर को कम करने के गुण होते हैं। लीची के फूल भी ऑक्सीकारक रोधी होते हैं।

लीची में सुक्रोज, फ्रक्टोज और ग्लूकोज तीनों ही पाये जाते हैं। लीची के 100 ग्राम गूदे में 70 मिलीग्राम के समीप विटामिन सी होती है जो हमारी दैनिक आवश्यकता का लगभग 76 प्रतिशत होता है। इसके अलावा यह खनिज पोषक तत्वों का भी प्रचुर स्रोत है। इसमें बहुत कम वसा और

[1,5]वैज्ञानिक, [2]निदेशक, [3]सहायक प्राध्यापक, [4]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं [5]वैज्ञानिक

सोडियम होता है। इसके अलावा लीची एनीमिया के रोगियों में भी सुधार लाता है। शोध कार्यों से ज्ञात हुआ है कि लीची पाचन और रक्त परिसंचरण में भी सुधार लाता है।

लीची का छिलका भी ऐंथोसायनिन, विटामिन सी और फ्लावोनॉयड जैसे स्वास्थ्यवर्धक यौगिकों का एक खजाना है। निहित उच्च फाइवर तथा ऐंटीऑक्सीडेंट घटकों से लीची को कैंसर रोधी गुण मिलता है। लीची के कैंसर रोधी गुण का शोध में काफी वर्णन किया गया है। लीची कैंसर पीड़ित कोशिकाओं के विकास को बाधित करता है। लीची के फल में ऐंटी-वायरस, हृदय रक्षक, गुर्दा रक्षक और मधुमेह विरोधी गुण होते हैं, हालांकि इनकी क्रियाविधि अभी तक पूरी तरह नहीं समझी गयी है। फलों की रानी की श्रेष्ठ पोषण और विभिन्न रोगों से लड़ने के प्रतिरोधक गुणों की वजह से लीची निस्संदेह फलों की टोकरी में एक बहुमूल्य रत्न है। लीची के पोषक औषधीय गुण, उत्कृष्ट स्वाद और अनूठे रूप-रंग इसे यकीनन एक 'सुपर फल' बनाते हैं। पारंपरिक चीनी और भारतीय चिकित्सा प्रणाली में पाचन, रक्त संचार, उत्सर्जन और प्रजनन प्रणाली में लीची फल को ग्रहण करने के अनेक फायदे बताये गये हैं। समकालीन अनुसंधान ने भी लीची के अनेक महत्वपूर्ण गुणों को प्रमाणित किया है।

लीची के पत्तों में सूजन, बुखार तथा दर्द को कम करने के गुण विद्यमान होते हैं। लीची के फूल भी सूजन, जिगर क्षति और लिपिड के स्तर में कमी लाते हैं। अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि लीची के फल मधुमेह, मोटापा और अन्य उपापचयी लक्षणों के लिये एक चिकित्सकीय फल के रूप में कार्य करते हैं। लीची अच्छे स्वास्थ्य के लिये बहुत ही लाभकारी है। यह कथन चीन के पुराने दस्तावेजों तथा आधुनिक शोध कार्यों से प्रमाणित होता है। लीची फास्फोरस, मैग्नीशियम, कॉपर और मैंगनीज का अच्छा स्रोत है इसलिए यह हड्डियों को मजबूत बनाये रखने में मदद करता है। लीची सुगंधित मीठी गूदे वाला स्वादिष्ठ फल है। इसमें लगभग 60 प्रतिशत फल-रस, 8 प्रतिशत रैग, 19 प्रतिशत बीज और 13 प्रतिशत छिलका होता है। इसमें 77-83 प्रतिशत पानी होता है। लीची के गूदे का टी.एस.एस. लगभग 14-25° ब्रिक्स होता है।

लीची खांसी और गैस में भी राहत देता है। लीची रक्तचाप और दिल की धड़कन को सामान्य करने में सहायक है जिससे हृदयाघात और हृदय रोग से सुरक्षा प्राप्त होती है। लीची के समागत पॉलिफिनॉल हृदय स्वास्थ्य में वृद्धि करते हैं। लीची के ऑक्सीकारक-रोधी तत्व प्रतिरक्षा में सुधार लाते हैं। यह मोतियाबिंद जैसे रोगों को धीमा करने में भी सहायक होता है तथा सभी प्रकार के हृदय रोगों से रक्षा करता है। लीची पाचन क्रिया को मजबूत बनाता है। यह शरीर में ऊर्जा के स्तर को बढ़ाता है। लीची के रेशे आँत की समस्याओं को नियंत्रित करते हैं। लीची बी कॉम्प्लेक्स विटामिन का अच्छा स्रोत है जो हमारे शरीर के कार्य करने के लिये जरूरी है। यह प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाता है। लीची एक कम कलौरी वाला फल है जिसके निहित फाइबर वजन कम करने में काफी सहायक होते हैं। इस फल में कोई वसा या कॉलेस्ट्रोल नहीं होता है। लीची त्वचा को पोषण देता है और कील-मुहासों को कम करता है। लीची के ऑक्सीकारक-रोधी जैसे विटामिन सी और फ्लावोनॉयड इत्यादि त्वचा को स्वस्थ और साफ रखने में सहायक होते हैं।

लीची विटामिन सी, नियासिन और थायमीन का एक अच्छा स्रोत है जो बालों के स्वास्थ्य के लिये भी लाभकारक है। लीची के छिलके से बनी चाय चेचक और दस्त के इलाज में लाभकारी होती है। गले कि खराश को मिटाने के लिये लीची के छाल, जड़ और फूलों के विभिन्न भागों से गरारा करने पर राहत मिलती है। लीची के खनिज हमारे शरीर में इलेक्ट्रोलाइट संतुलन बनाये रखने में बहुत सहायक होते हैं। लीची के ऑक्सीकारक-रोधी जैसे विटामिन सी, विटामिन बी कॉम्प्लेक्स और फ्लोवोनॉयड की अच्छी मात्रा फ्री रेडिकल्स से संरक्षित करती है जो स्वास्थ्य के लिये बेहद लाभकारी है। लीची में रक्त के लिये सभी महत्त्वपूर्ण खनिज जैसे मैंगनीज, मैग्नीशियम, ताँबा, लोहा, विटामिन सी और फोलेट होते हैं जो रक्त निर्माण में सहायता करते हैं। लीची के रेशे और विटामिन बी कॉम्प्लेक्स चयापचय को भी बढ़ाते हैं। पोटैशियम मांसपेशियों के कार्य को नियमित कर हृदय के कार्य में सहायक होता है।

लीची के छिलके में ऐंथोसायनिन प्रचुर मात्रा में होते है। लीची के बीज में विटामिन सी और फेनालिक्स जैसे गैलिक एसिड, प्रोस्यानिडीन, गैलोकैटेकिन, एपीकैटेकिन और उपीकैटेकिन-3 गैलेट होते हैं जिन्हें प्राकृतिक ऑक्सीकारक-रोधी के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। लीची के फल में अधिक पॉलिफिनॉल के कारण यह हृदय को स्वस्थ रखता है। संतप्त वसा, सोडियम और कॉलेस्ट्रोल की लीची में बहुत कम मात्रा हृदय रोगों की निवारण में

लाभकारी होता है। लीची के रस से आँत की जलन कम होती है। इसलिए इसे गैस्ट्रो इंटेस्टाइनल स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये भी प्रयोग किया जाता है। लीची के गूदे के सेवन से आँत संबंधी अनियमितताओं, मूत्र संबंधी रोग, बलगम और ग्रंथियों के सूजन के उपचार में भी सहायता होती है।

लीची के बीज, छिलके और जड़ भी बहुत उपयोगी होते हैं और इनके कई औषधीय प्रयोग भी होते हैं। लीची के बीज का पाउडर आँत और त्वचा संबंधी समस्याओं का निवारण करता है। चीन में इसके छिलके का प्रयोग दस्त एवं पेचिस संबंधी औषधि बनाने के लिये भी किया जाता है। इसका जड़ कैंसर के ट्यूमर को कम करता है। लीची की पत्तियों को चोट पर लगाने वाली मरहम बनाने के लिये उपयोग किया जाता है। लीची का फल खाने के अनेक स्वास्थ्यवर्धक फायदे होते हैं। इसलिए मई-जून के माह में हमें लीची का रोजाना सेवन करना चाहिये।

सारणी 1: लीची में पाये जाने वाले पोषक तत्व और दैनिक अनुशंसित खुराक का प्रतिशत जो लीची से प्राप्त होता है।

लीची के गूदे के पोषक तत्त्व	निहित प्रति 100 ग्राम लीची गूदा	दैनिक अनुशंसित खुराक का प्रतिशत 100 ग्राम लीची के गूदे से प्राप्त होता है	
		स्वस्थ पुरुष के लिये (वजन 60 किलो) जो मध्यम श्रेणी का काम करता है।	स्वस्थ महिला के लिए (वजन 55 किलो) जो मध्यम श्रेणी का काम करती है।
ऊर्जा	66 कैलोरी	2.4	2.95
प्रोटीन	0.83 ग्राम	1.4	1.5
वसा	0.44 ग्राम	1.5	1.8
कार्बोहाइड्रेट	16.53 ग्राम	12.7	12.7
फ़ाइबर (रेशा)	1.30 ग्राम	3.4	5.2
थियामिन	0.011 माइक्रोग्राम	0.8	1.0
राइबोफ्लेविन	0.065 माइक्रोग्राम	4.1	5.0
नियसिन	0.603 माइक्रोग्राम	3.4	4.3
विटामिन बी$_6$	0-10 माइक्रोग्राम	5.0	5.0
विटामिन सी	71.5 माइक्रोग्राम	178.8	178.8
विटामिन ई	0.07 माइक्रोग्राम	0.5	0.5
विटामिन के	0.40 माइक्रोग्राम	0.5	0.5
फोलेट	14.00 माइक्रोग्राम	7.0	7.0
कैल्सियम	5.00 माइक्रोग्राम	0.8	0.8
आयरन	0.31 माइक्रोग्राम	1.8	1.5
मैग्नीशियम	10.00 माइक्रोग्राम	2.9	3.2
फास्फोरस	31.00 माइक्रोग्राम	4.4	4.4
पोटेशियम	171.00 माइक्रोग्राम	3.6	3.6
जिंक	0.07 माइक्रोग्राम	0.6	0.7
सोडियम	1.00 माइक्रोग्राम	0.04	0.04

कैंसर रोधी, ऑक्सीकारक रोधी, वाइरस रोधी, ज्वर रोधी, गुर्दा रक्षक, सूजन में कमी, ट्यूमर में कमी, कफ, मोटापा में कमी, उदर अलसर में कमी, डाइबिटिस रोधी, उदरवायु रोधी, जिगर रक्षक, स्वस्थ्य त्वचा, स्वस्थ्य केश।

चित्र 1: लीची एक, फायदे अनेक

बेल के फलों का फटना और अपरिपक्व अवस्था में गिरनाः समस्या तथा समाधान

देवेन्द्र पाण्डेय[1], ए.के. त्रिवेदी[2], एस. के. शुक्ल[3], निकिता नेहाल[4] एवं देवानन्द गिरी[5]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

बेल उपोष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में पाया जाने वाला फल है। यह सामान्य रूप से उष्णकटिबंधीय, शुष्क और अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। बेल वातावरणीय उतार-चढ़ाव/परिवर्तनों के प्रति बहुत ही सहनशील पौधा है। इसकी खेती विविध लवणता एवं पी.एच. मान वाली भूमि में भी की जा सकता है। लेकिन बेल का पौधा जल भराव के प्रति बहुत ही संवेदनशील होता है। उपयुक्त जल निकास वाली दोमट मिट्टी इसकी बागवानी के लिये उपयुक्त होती है। ऊसर, बंजर, कंकड़ीली, खादर, बीहड़ भूमि जैसी समस्याग्रस्त भूमि भी इसकी बागवानी के लिये उपयुक्त होती है। कम सिंचित या असिंचित भूमि में भी इसे आसानी से उगाया जा सकता है। बेल की बागवानी के लिये थोड़ी अम्लीय भूमि (पी.एच. मान 6-7) उपयुक्त होती है, किन्तु इसकी बृहद सहनशीलता के कारण 7-9 पी.एच. मान वाले क्षारीय भूमि में भी बेल की व्यावसायिक बागवानी की जा सकती है। बेल भारतीय मूल का पौधा है। उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तरांचल, छत्तीसगढ़ और ओडीशा बेल उत्पादन करने वाले भारत के प्रमुख राज्य हैं।

बेल रूटेसी परिवार का पौधा है। इसकी अधिकतर प्रजातियों की पेड़ की टहनियों पर काँटे होते हैं, परंतु कुछ प्रजातियों में काँटों की संख्या न के बराबर होती है। इसकी पत्तियाँ त्रिकोणीय होती हैं, जिनका उपयोग हिन्दू धर्म में भगवान शिव की पूजा-अर्चना में किया जाता है। मई-जून की गर्मी के समय इसकी पत्तियाँ झड़ जाती हैं जिससे पौधों में शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क जलवायु को सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है। अतः ऐसा देखा गया है कि अनुपयोगी जमीन एवं प्रतिकूल वातावरणीय परिस्थितियों में जहाँ आर्थिक दृष्टि से उपयोगी कोई अन्य पौधा नहीं उगता हो, वहाँ भी बेल की लाभप्रद बागवानी कर आय का सृजन भी किया जा सकता है।

[1,2,3]प्रधान वैज्ञानिक एवं [4,5]शोध सहयोगी

बेल का फल पोषक तत्वों (विटामिन-ए, बी, सी, खनिज तत्व, कार्बोहाइड्रेट) एवं औषधीय गुणों से भरपूर होता है। बेल के फल के पंचांग (जड़, छाल, पत्ते, शाख एवं फल) औषधीय रूप में मानव जीवन के लिये अत्यंत उपयोगी होते हैं। यदि बागवानी प्रसार के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान दिया जाये तो किसानों-बागवानों की औषधीय पौधों एवं फलों के प्रति बढ़ती जागरूकता तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बेल की अच्छी फलत होने की विशेषता, बेल की बागवानी के प्रसार के लिये अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करनी हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि बागवानों को बेल के गुणों के प्रति तथा इसकी बागवानी से होने वाले लाभों के प्रति जागरूक कर विभिन्न स्तरों पर बेल की बागवानी को बढ़ावा दिया जाये जिससे भविष्य में बेल की बागवानी के उत्पादन क्षेत्र को उत्तरोतर रूप से बढ़ाया जा सके।

बेल के पौधे मुख्य रूप से बीज द्वारा तैयार किये जाते हैं। बेल के बीजों की बोआई फलों से निकालने के तुरंत बाद 15-20 सेंटीमीटर ऊँची एवं 1×10 मीटर लंबी बेड में 1-2 सेंटीमीटर की गहराई पर की जाती है। बोआई का उत्तम समय मई-जून का महीना होता है। व्यावसायिक स्तर पर बेल की खेती के लिये पौधों को चश्मा विधि से तैयार करते हैं। चश्मा की विभिन्न विधियों में पैबन्दी चश्मा विधि जून-जुलाई माह में चढ़ाने से 80-90 प्रतिशत तक सफलता प्राप्त की जा सकती है और सांकुर शाखाओं की वृद्धि भी अच्छी होती है। मृदा उर्वरता के अनुसार बेल के पौधों की रोपाई 6-8 मीटर की दूरी पर करनी चाहिये। रोपण हेतु जुलाई-अगस्त माह उपयुक्त समय होता है। पौधे लगाने के एक माह पूर्व 6-8 मीटर के अंतर पर 1 मीटर व्यास के 80-100 सेंटीमीटर गहरे गड्ढे तैयार कर लेना चाहिये। इन गड्ढों को 1 महीने तक खुला छोड़ने के बाद 3-4 टोकरी सड़ी गोबर की खाद, ऊसर भूमि में 20-25 किलोग्राम बालू तथा पी.एच. मान के अनुसार 5-8 किलोग्राम जिप्सम/

पाइराइट मिलाकर जमीन से 10 सेंटीमीटर ऊँचाई तक भर देना चाहिये। जिप्सम/पाइराइट से भरे गड्ढों में भराई के उपरांत सिंचाई कर देनी चाहिये जिससे गड्ढों में रासायनिक क्रिया प्रारंभ हो जाये। इन्हीं तैयार गड्ढों में जुलाई-अगस्त माह में पौध रोपण करना चाहिये। पौधे लगाने के बाद हल्की सिंचाई करना उपयुक्त होता है। कलम द्वारा लगाये गये बेल के पौधों में रोपण के 3-4 साल बाद फूल आने लगते हैं जबकि बीजू पौधों में 7-8 साल बाद फूल लगते हैं। बेल के पौधों में मई-जून के महीने में फूल लगने लगते हैं तथा मई के अंत से जुलाई तक फल बनने शुरू हो जाते हैं जो 10-11 महीने बाद अगले वर्ष अप्रैल-मई में विकसित होकर तुड़ाई के लिये तैयार होते हैं। बेल की नरेन्द्र बेल-5, नरेन्द्र बेल-7, नरेन्द्र बेल-9, पंत सिवानी, पंत सुजाता, पंत उर्वसी, पंत अपर्णा, सी.आई.एस.एच. बेल-1, सी.आई.एस.एच. बेल-2, गोमा यशी, थार दिव्या, थार नीलकंठ इत्यादि प्रमुख किस्में व्यावसायिक बागवानी के लिये उपयुक्त पायी गयी हैं।

बेल में फलों का फटना एवं पेड़ पर लगे हुए फलों का अपने आप गिरना दो ऐसी समस्याएँ हैं जो बेल की बागवानी के प्रसार में बहुत बड़ी बाधाएँ हैं। इनका बेल की बागवानी एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बेल की लगभग सभी किस्मों में प्रारंभ में फल बहुत ज्यादा मात्रा में लगते है परंतु परिपक्व होने तक ये 0.09 से 1.76 प्रतिशत ही शेष रह जाते हैं। फलों का फटना बेल में एक प्रमुख पादप कार्यिकी समस्या के रूप में देखा गया है। फलों का फटना साल में दो बार होता है। पहला सर्दियों के मौसम में (दिसंबर-जनवरी) जब फल अपरिपक्व होते हैं और दूसरा गर्मी के मौसम में (मार्च-अप्रैल) जब फलों के पकने की अवस्था होती है। गर्मी में फलों का फटना, सर्दी में फलों के फटने की तुलना में ज्यादा गंभीर समस्या है।

बेल के फलों को गिरने एवं फटने से बचाने के लिये पौधों की जड़ों के पास की मिट्टी की नमी को बनाये रखना चाहिये। गर्मी के दौरान सूखे की स्थिति में धान के पुआल, मक्का के पुआल, सूबबूल लॉपिंग, सूखे केले की पत्तियाँ इत्यादि जैसे कार्बनिक आच्छादन को पेड़ की जड़ों में डालने से मिट्टी की नमी बनी रहती है। बगीचे के चारों तरफ हवा को रोककर फलों के फटने एवं गिरने की समस्या को कम किया जा सकता है। बगीचों में जहाँ फलों के फटने की समस्या होती है वहाँ 100 ग्राम बोरेक्स प्रति पेड़ उर्वरक के साथ डालने से इस समस्या को कम किया जा सकता है। फलों के फटने, फटे हुए फलों के सड़ने और सड़े हुए फलों पर फल छिद्रक के आक्रमण के कारण यह समस्या अधिक गंभीर हो जाती है।

फलों का गिरना सामान्यतः एक प्राकृतिक घटना है। परंतु बेल में फलों का गिरना काफी ज्यादा मात्रा में होता है जो इसके उत्पादन के लिये एक समस्या है। फलों के गिरने के अनेक कारण हो सकते हैं-फल की बनावट में कमी, परागण और निषेचन का नहीं होना, भ्रूण ह्रास, प्रस्फुटन के समय किस्मों में भिन्नता, पोषक तत्वों की कमी या अधिकता और जलवायु परिवर्तन आदि। फलों के गिरने की मात्रा (प्रतिशत) बेल की प्रजाति, मिट्टी की गुणवत्ता और कृषि-पारिस्थितिकी पर निर्भर करती है। फलों का गिरना जुलाई से प्रारंभ होता है जब फल लगभग मटर के आकार के होते हैं

फलों का फटना

फलों का गिरना

और अगले वर्ष मार्च-अप्रैल तक (तुड़ाई तक) जारी रहता है। यह समस्या बेल में फल विकास की लगभग प्रत्येक अवस्था में, लगभग पूरे साल बनी रहती है, परंतु जुलाई के महीने में सबसे ज्यादा फल गिरते हैं जिसका कारण उच्च तापमान, भ्रूण ह्रास, तेज हवाएँ और मिट्टी में नमी और आर्द्रता की अत्यधिक मात्रा का होना है। फलों के गिरने को नियंत्रित करने के लिये अब तक कोई समुचित उपाय नहीं उपलब्ध है। बेल में अपरिपक्व फलों के गिरने का मुख्य कारण जिंक और बोरॉन की कमी को माना जाता है। बोरेक्स (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव फलों के गिरने को कुछ हद तक कम करने में प्रभावी है। इसके अलावा शुरुआत में ही पादप वृद्धि नियामकों जैसे प्लैनोफिक्स (2 मिली प्रति 5 लीटर पानी) के उपयोग से फलों के गिरने को कम किया जा सकता है। पौधों की पत्तियों पर नेप्थलीन एसिटिक एसिड (एन.ए.ए.) के 20 पी.पी.एम. घोल के छिड़काव से भी इस समस्या को कम किया जा सकता है। फटे हुए फलों में फफूँद जैसे फुजैरियम स्टॉक के संक्रमण की संभावना अधिक रहती है। इस संक्रमण के कारण भी बेल के फल गिर जाते हैं। अतः यदि फलों का गिरना फ्यूजेरियम स्टॉक के संक्रमण के कारण हो रहा है तो 15 दिनों के अंतराल पर 0.1 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम अथवा थाइफानेटमेथाइल का छिड़काव करने से इस समस्या को कॉफी हद तक कम किया जा सकता है।

मधुशाला

मैं कायस्थ कुलोदभव मेरे पुरखों ने इतना ढ़ाला,
मेरे तन के लोहू में है पचहत्तर प्रतिशत हाला,
पुश्तैनी अधिकारी मुझे है मदिरालय के आँगन पर,
मेरे दादों परदादों के हाथ बिकी थी मधुशाला।

धर्मग्रन्थ सब जला चुकी है, जिसके अंतर की ज्वाला,
मंदिर, मस्जिद, गिरिजे, सब को तोड़ चुका जो मतवाला,
पंडित, मोमिन, पादिरयों के फंदों को जो काट चुका,
कर सकती है आज उसी का स्वागत मेरी मधुशाला।

मदिरालय जाने को घर से चलता है पीनेवला,
किस पथ से जाऊँ? असमंजस में है वह भोला भाला,
अलग-अलग पथ बतलाते सब पर मैं यह बतलाता हूँ,
राह पकड़ तू एक चला चल, पा जाएगा मधुशाला।

-हरिवंशराय 'बच्चन'

करौंदा की खेती का व्यावसायिक महत्व

ए.के. सिंह[1] एवं के.के. मिश्र[2]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

करौंदा एक झाड़ीनुमा पौधा है जिसका वैज्ञानिक नाम *कैरिसा कैरेंडस* है। करौंदा का पौधा दो साल में फल देने लगता है। इसमें मार्च के महीने में फूल आना प्रारंभ होते हैं जबकि फल जुलाई से सितंबर के बीच परिपक्व होते हैं। करौंदा का पेड़ पहाड़ी देशों में ज्यादा पाया जाता है। इसकी ऊँचाई 6 से 7 फुट तक की होती है। करौंदा की फसल किसानों के लिये बहुत ही फायदेमंद साबित हो रही है। इसकी फसल किसानों को मुनाफा देने के साथ-साथ इसके पौधे अन्य फसलों की सुरक्षा भी करते हैं। करौंदा का पौधा झाड़ीनुमा कांटेदार होने के कारण जंगली पशुओं को फसल का नुकसान करने से रोकता है। करौंदा को किसी भी खेत या बाग के चारों तरफ लगाया जा सकता है। इसके फूलों की सुगंध जूही के समान होती है। इसके फल गोल, छोटे और हरे रंग के होते हैं। पकने पर यह काले रंग के हो जाते हैं। करौंदा के कच्चे फल सफेद एवं बैंगनी लाल रंग के अंडाकार होते हैं। ये देखने में सुंदर होते हैं तथा इसके कच्चे फलों को काटने पर दूध निकलता है। पक जाने पर इसके फल का रंग काला हो जाता है। करौंदा के वृक्ष दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के करौंदा में छोटे फल लगते हैं जबकि दूसरे प्रकार के करौंदा में बड़े फल लगते हैं। इसके अन्दर 4 बीज पाये जाते है। करौंदा में विटामिन-सी प्रचुर मात्रा में होने के साथ-साथ अत्याधिक ऐंटीऑक्सीडेंट भी होता है। करौंदा विटामिन-ई तथा के का भी अच्छा स्रोत होता है।

जलवायु एवं मृदा

करौंदा को सभी प्रकार की मृदा में आसानी से उगाया जा सकता है। उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु वाले क्षेत्र में इसकी खेती उपयुक्त होती है। जिन क्षेत्रों में पाला का प्रकोप अधिक होता है, वहाँ प्रारंभिक बढ़वार की अवस्था में करौंदा के पौधों को नुकसान की आशंका बनी रहती है। अधिक लवणीय एवं क्षारीय मृदा करौंदा की खेती के लिये उपयुक्त नहीं होता है। करौंदा का पौधा एक बार लगने के बाद इसकी ज्यादा देखभाल की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि इसमें कीट एवं बीमारियों का प्रकोप नहीं के बराबर होते हैं।

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2]वरिष्ठ शोध अध्येयता

पादप प्रवर्धन एवं रोपाई

करौंदा का प्रवर्धन प्राय: बीज द्वारा ही किया जाता है जिससे पौधे बहुत देर से बढ़ते हैं। इसके पौधे बरसात के मौसम में गूटी द्वारा भी तैयार किये जा सकते हैं। बीज को पूर्ण पके हुए फलों से अगस्त-सितंबर महीने में निकालकर क्यारियों या पॉलिथीन की थैलियों में बोना चाहिये। इसके पौधों में सुषुप्तावस्था नहीं होता है। इसके पूर्ण पके हुए फलों से ताजा बीज निकाल कर बोआई करनी चाहिये। करौंदा की रोपाई के लिये जुलाई-अगस्त या फरवरी-मार्च का समय उपयुक्त पाया गया है। इसके लिये भूमि में 60 से 80 सेंटीमीटर लंबा, चौड़ा एवं गहरा गड्ढा खोदकर उसमें 10 से 12 किलोग्राम गोबर की खाद प्रत्येक पौधे के हिसाब से अच्छी तरह मिट्टी में मिला कर गड्ढे में भर दें। केवल फल के उद्देश्य से लगाये जाने वाले पौधों को 3 मीटर की दूरी पर 2×2×2 फुट के गड्ढे बनाकर 10 से 15 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद से भर दें तथा पौधों की रोपाई करें। पौधे लगाने के तुरंत बाद पर्याप्त मात्रा में सिंचाई करें।

किस्में

रंग के आधार पर किस्में हरी, गुलाबी, सफेद तथा लाल आदि होती हैं।

मनोहर पंत

इस किस्म के पौधे मध्यम ऊँचाई वाले एवं घनी झाड़ीनुमा होते हैं। इसके फल सफेद गुलाबी रंग के होते हैं।

पंत सुदर्शन

इस किस्म के पौधे मध्यम ऊँचाई तथा फल सफेद रंग के होते हैं।

पंत सुवर्णा

इस किस्म के पौधे अधिक ऊँचाई वाले और झाड़ीनुमा होते हैं। फल हरे रंग के होते हैं।

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ द्वारा चयनित किस्म सी.आई.एस.एच.

के-10 के फल बैगनी रंग के होते हैं जिनकी पैदावार अच्छी पायी गयी है।

खाद एवं उर्वरक

बाड़ के लिये पौधे लगाते समय 20 से 25 ग्राम यूरिया प्रति पौधा गड्ढे में लगाने से पहले मिलायें जिससे पौधे की अच्छी वृद्धि हो। फल प्राप्त करने के उद्देश्य से लगाये गये पौधों में प्रथम 3 वर्षों में लगभग 10 से 15 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद के अतिरिक्त 100 ग्राम यूरिया एवं 300 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट प्रति वर्ष पौधों में डालें। इसके बाद लगभग 15 से 20 किलोग्राम गोबर की खाद लगभग 250 ग्राम यूरिया एवं 500 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट प्रति वर्ष पौधों में फूल आते समय डालकर सिंचाई करें। फल देने वाले पौधों में यूरिया की मात्रा एक साथ न देकर टुकड़ों में देनी चाहिये।

सिंचाई

करौंदा में सिंचाई की आवश्यकता गर्मी के महीने में होती है। यह पौधों में फूल आने का समय होता है। अतः आवश्यकतानुसार 10 से 15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिये। सर्दी के दिनों में पानी की आवश्यकता नहीं होती, किंतु पाला पड़ने की संभावना के समय हल्की सिंचाई अवश्य करें जिससे पौधों को पाला के प्रभाव से बचाया जा सके।

काट-छाँट

यदि करौंदा का बाड़ लगाना है तो इस बात का ध्यान रखें कि शुरू से ही नियमित काट-छाँट करते रहें जिससे पौधा नीचे से ज्यादा फैलकर झाड़ीनुमा बन जाये। जब बाड़ बड़ा हो जाये एवं फल आने लगे तब फरवरी से सितंबर तक काट-छाँट बिल्कुल नहीं करना चाहिये।

तुड़ाई एवं उपज

बीज द्वारा तैयार किये गये पौधों में फल आना प्रायः पौधा लगाने के 4 से 5 वर्ष के बाद शुरू होता है। किंतु गूटी द्वारा तैयार पौधों में रोपाई के 2 से 3 वर्ष बाद ही फल आना शुरू हो जाता है। फलों की तुड़ाई करते समय इस बात का ध्यान रखें कि सब्जी एवं चटनी के लिये कम विकसित एवं कच्चे फलों की तुड़ाई ही करें। जैली बनाने के लिये अधपके फलों की तुड़ाई करें क्योंकि इस समय पेक्टिन की मात्रा अधिक होती है जो जेली के लिये उपयुक्त होती है। बीज के लिये पूर्ण पके फलों की तुड़ाई करें। बाड़ के लिये लगाये गये विकसित पौधों से लगभग 2 से 3 किलोग्राम तथा फल के उद्देश्य से लगाये गये पौधों से 6 से 8 किलोग्राम प्रति पौधा पैदावार आसानी से प्राप्त की जा सकती है।

उपयोग

कच्चे करौंदा का उपयोग अचार बनाने में होता है। एक विलायती करौंदा भी होता है जो भारतीय बगीचों में पाया जाता है। इसका फल थोड़ा बड़ा और देखने में सुंदर भी होता है। इसी का अचार और चटनी के काम में ज्यादा प्रयोग किया जाता है। करौंदा भूख बढ़ाता है और पित्त को शांत करता है। यह प्यास को रोकता है और दस्त को बंद भी करता है। विशेष रूप से पैत्तिक दस्तों के लिये तो अत्यन्त ही लाभदायक है। कच्चा करौंदा भूख को बढ़ाता है और पका हुआ वात विनाशक होता है। करौंदा का उपयोग बहुत तरह से कर सकते हैं। करौंदा की चटनी बनायी जाती है। इसका जैम एवं जेली भी बनाया जाता है।

औषधीय गुण

स्कर्वी रोग की रोगथाम के लिये करौंदा एक प्रमुख पारंपरिक हर्बल उपाय है। माना जाता है कि अक्सर करौंदा की सब्जी और चटनी खाने से और गर्मियों में पके करौंदा का जूस पीने से स्कर्वी रोग की बेहतर रोकथाम किया जा सकता है। आधुनिक शोधों से प्राप्त जानकारी के अनुसार विटामिन सी की कमी होने की वजह से स्कर्वी के लिये यह एक बेहतर फल है। जिन्हें रक्त अल्पता की शिकायत है उन्हें पके हुए करौंदा का जूस पीना चाहिये। प्रतिदिन एक बार एक गिलास करौंदा का जूस पीने से शरीर में रक्त शुद्धि के साथ-साथ खून की मात्रा में भी काफी इजाफा होता है।

करौंदा के औषधीय गुण निम्नलिखित हैं।

1. करौंदा का सेवन जुकाम तथा बुखार में लाभप्रद है।
2. कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम कर हृदय संबंधी रोगों से बचाता है।
3. स्वस्थ प्रतिरक्षा प्रणाली का निर्माण कर हमें रोगों से लड़ने की शक्ति प्रदान करता है।
4. करौंदा का रस फेफड़ों की सूजन दूर करने में लाभदायक है।
5. स्त्री संबंधी रोगों में विशेष रूप से लाभप्रद होता है।
6. सूखी खाँसी होने पर करौंदा की पत्तियों के रस का सेवन लाभकारी होता है।
7. करौंदा के रस का सेवन रक्तचाप को कम करता है।
8. झुर्रियों के बनने की प्रक्रिया को रोक कर उनका आना कम करता है।
9. करौंदा कैल्सियम प्रदान कर हमारी हड्डियों तथा दाँतों को मजबूत बनाता है।
10. करौंदा में कम कैलोरी होने के कारण यह वजन घटाने में भी सहायक होता है।
11. दाँतों को सड़न से बचने के साथ सांस की दुर्गंध को रोकता है।
12. करौंदे के रस का प्रतिदिन सेवन कर स्तन कैंसर से भी बचा जा सकता है।

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए, इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
आज यह दीवार, परदों की तरह हिलने लगी, शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए।
हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में, हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए।
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं, सारी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही, हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।

-दुष्यन्त कुमार

बड़हल : एक उपयोगी फल वृक्ष और इसकी व्यावसायिक खेती की सम्भावनाएँ

सुशील कुमार शुक्ल[1], घनश्याम पाण्डेय[2], देवेन्द्र पाण्डेय[3] एवं मनीष मिश्र[4]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

बड़हल एक *मोरेसी* कुल का बड़े आकार का लोकप्रिय भारतीय वृक्ष है। इसका वैज्ञानिक नाम *आर्टोकार्पस लकूचा* है। इसे हमारे देश में प्रायः फल, छाया, चारे के लिये उगाया जाता है। इसकी लकड़ी का प्रयोग इमारत या फर्नीचर बनाने के काम आता है। प्राकृतिक रूप से उगने वाले वृक्षों में पर्याप्त विविधता पायी जाती है। इसके फल मीठे और खट्टे दोनों प्रकार के होते हैं तथा अलग-अलग वृक्षों पर मिलते हैं। इसकी व्यावसायिक खेती की अपार संभावनाएँ हैं। पेड़ की ऊँचाई लगभग 6 से 9 मीटर और फल 5 से 15 सेंटीमीटर आकार के टेढ़े-मेढ़े या सुडौल आकृति के पाये जाते हैं।

उत्पत्ति एवं वितरण

बड़हल की उत्पत्ति हिमालय पर्वत के तटवर्ती निचले स्थानों में मानी जाती है किन्तु हमारे देश में यह कुमायूँ से लेकर असम और म्यांमार से लेकर अंडमान तक सभी जगह प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। साथ ही साथ इसके वृक्ष प्राकृतिक रूप से बिहार, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में भी पाये जाते हैं। उधर दक्षिण-पश्चिमी समुद्री किनारे की ओर कोंकण से लेकर मालाबार और त्रावणकोर तक इसके वृक्ष देखे जा सकते हैं।

महत्व एवं उपयोग

इसके पके फल ताजे ही खाये जाते हैं। कच्चे फल और नर पुष्प खटास लिये होते हैं और इनका प्रयोग चटनी, अचार बनाने के लिये किया जाता है। पूर्ण विकसित परिपक्व फलों से अचार और जेली बनायी जाती है, लेकिन पूर्ण रूप से पके फलों से पेय, शर्बत, स्क्वैश और जैम बनाया जा सकता है। नरेंद्रदेव कृषि विश्वविद्यालय में किये गये अध्ययन के दौरान फलों का औसत वजन 135 ग्राम से 208 ग्राम/फल तक पाया गया है, जबकि गूदे का प्रतिशत 50 से 72 प्रतिशत, बीज 12 से 21 प्रतिशत, मिठास (टी.एस.एस.) 17.2 से 21.2°ब्रिक्स, अम्लता 0.7 से 1.1 प्रतिशत, पेक्टिन 0.6 से 1.0 प्रतिशत और विभिन्न खनिज पदार्थ 0.8 से 1.1 प्रतिशत, विटामिन सी 6.2 से 18.2 मिलीग्राम/100 ग्राम गूदा एवं विटामिन ए 104 से 150 आई यू/100 ग्राम तक पायी गयी है। बड़हल के कच्चे फलों का विश्लेषण करने पर 100 ग्राम गूदे में 82 ग्राम पानी, 1 ग्राम प्रोटीन, 1 ग्राम वसा, ग्राम खनिज पदार्थ, 2 ग्राम रेशा, 13 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 50 मिलीग्राम कैल्सियम एवं 20 मिलीग्राम फास्फोरस पाया गया है। हर एक फल में 20-30 बीज पाये जाते हैं। पशुओं के चारे एवं इमारती लकड़ी के लिये भी बड़हल का महत्व है। नेपाल में इस वृक्ष के पत्तों का चारे के रूप में बहुतायत से प्रयोग होता है। इसकी लकड़ी काफी मजबूत, टिकाऊ और तुलनात्मक रूप से सागौन के बराबर होती है। इससे इमारत, फर्नीचर, नाव और अलमारी आदि खूब बनाये जाते हैं। पेड़ की छाल में 8.5 प्रतिशत टैनिन पाया जाता है और इसे सुपारी की तरह चबाया जाता है। फल का गूदा खाने में यकृत के लिये टॉनिक की तरह काम करता है।

मिट्टी एवं जलवायु

बड़हल को विविध प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है किन्तु इसको उगाने के लिए जीवाँशयुक्त उत्तम जलनिकास वाली गहरी बलुई दोमट या दोमट मिट्टी सर्वाधिक उपयुक्त होती है। बड़हल को ऊष्ण और उपोष्ण दोनों प्रकार की जलवायु में सफलतपूर्वक उगाया जा सकता है। हिमालय पर्वत के निचले स्थानों में इसे 1200 मीटर तक उगते देखा गया है। किन्तु अधिक ऊँचाई पर फलों की गुणवत्ता में गिरावट आ जाती है। यह शुष्क, अर्ध-शुष्क एवं दक्षिणी भागों के गर्म स्थानों में भी सफलतापूर्वक उगता है लेकिन बहुत ज्यादा ठंडक और पाला इसके लिये हानिकारक हैं।

विभिन्न क्षेत्रों में फैले बड़हल के वृक्षों में काफी विविधता पायी जाती है जिसका अभी पर्याप्त अध्ययन नहीं

[1,2,3,4]प्रधान वैज्ञानिक

हुआ है। सामान्य रूप से बड़हल के वृक्षों को फलों के रंग के अनुसार दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। एक में फल गहरे नारंगी रंग के गूदे वाले एवं दूसरे हल्के पीले रंग के गूदे वाले होते हैं। गहरे नारंगी रंग के गूदे वाले फलों में पेक्टिन, विटामिन और खनिज पदार्थ की मात्रा हल्के पीले रंग के गूदे वाले फलों की अपेक्षा अधिक होती है और उनसे पेय एवं स्क्वैश भी ज्यादा अच्छा बनता है।

जननद्रव्य सर्वेक्षण एवं उन्नत किस्में

भाकृअनुप-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान द्वारा उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों में किये गये सर्वेक्षण से इसमें उपलब्ध विविधता का ज्ञान हुआ। इसके फलों का औसत वजन 97 ग्राम से 460 ग्राम/फल, फल की लंबाई 5.48 से 9.45 सेंटीमीटर, चौड़ाई 6.49 से 10.04 सेंटीमीटर, बीज की संख्या 26 से 127 प्रति फल तक दर्ज की गयी। पके फलों के जैव रासायनिक विश्लेषण से फलों में मिठास 18.87° ब्रिक्स से 27.78° ब्रिक्स, अम्लता 0.74 से 2.37 प्रतिशत, विटामिन सी 13.67 से 24.54 मिलीग्राम/100 ग्राम एवं फलों में कुल शर्करा की मात्रा 12.6 से 17.82 प्रतिशत पाई गयी। कुल एकत्र किये गये जनन द्रव्यों से गुणवत्ता, आकार, मिठास आदि लक्षणों के आधार पर सी.आई.एस.एच.-7, सी.आई.एस.एच.-3 एवं सी.आई.एस.एच.-10 सर्वोत्तम पाये गये। इनको वानस्पतिक प्रवर्धन कर पूर्ण आँकलन कर व्यावसायिक खेती हेतु संस्तुत किये जाने की प्रबल संभावनाये हैं।

बड़हल के फलों में विविधता

वृक्ष प्रवर्धन

सामान्य रूप से इसे बीज द्वारा प्रवर्धित किया जाता है। लेकिन उन्नत वृक्षों या जननद्रव्यों के शत-प्रतिशत गुणों को प्रवर्धित पौधों में पाने के लिये एकमात्र विधि वानस्पतिक प्रवर्धन ही है क्योंकि बीज द्वारा प्रवर्धन में परागण के कारण पौधे के सारे वांछित गुण नये पौधे में नहीं आ पाते हैं। बीज द्वारा पौध उगाने में यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि इसके बीजों को फल से निकालने के बाद शीघ्रातिशीघ्र बो देना चाहिये अन्यथा इनकी अंकुरण क्षमता में तेजी से ह्रास होता है। इसके बीजों को वर्षा ऋतु में तैयार क्यारियों में 25-30 सेंटीमीटर दूरी पर बो दिया जाता है। वानस्पतिक प्रवर्धन हेतु मूलवृन्त लिये एक साल पुराने बीजू पौधों का प्रयोग किया जाता है। वानस्पतिक विधियों में गूटी, तने/प्ररोह की परिपक्व कलम (हार्ड वुड कटिंग) या वेज कलम बंधन से भी इसे प्रवर्धित किया जा सकता हैं, किन्तु इसमें सफलता बढ़ाने हेतु वैज्ञानिक प्रयास की आवश्यकता है। बड़हल का सूक्ष्म प्रवर्धन द्वारा भी आसानी से प्रसारण किया जा सकता है। इसके लिये संस्थान द्वारा प्रोटोकॉल विकसित की गयी है।

बड़हल को ऊतक संवर्धन विधि से प्रसारण के लिये मानक विकसित किये गये हैं। तीन सेंटीमीटर लंबी एक कक्षस्थ कलिका के साथ बड़हल के एक्सप्लांट को लेकर प्रयोगशाला में बी.ए.पी., 2.0 मिलीग्राम/लीटर, आई.ए.ए., 1.0 मिलीग्राम/लीटर एवं जिब्रेलिक अम्ल, 0.5 मिलीग्राम/लीटर के साथ एम.एस. मीडियम में रखने पर करीब दस दिन के भीतर कलिका में फुटाव दर्ज किया गया। इसके बाद सूक्ष्म प्ररोहों को बिना हार्मोन लेकिन केसीन हाइड्रोलिसेट (100 मिलीग्राम/लीटर) के साथ एम.एस. बेसल मीडियम में रखा गया। इन सूक्ष्म प्ररोहों में सफलतापूर्वक जड़ें विकसित करने के लिये आई.बी.ए., 5.0, आई.ए.ए. 1, मिलीग्राम/लीटर के साथ एम. एस. मीडियम का प्रयोग किया गया। इस प्रकार प्रयोगशाला में मूलयुक्त पौधों का अनुकूलन करने हेतु एम. एस. प्लांट साल्ट मिश्रण (आधी क्षमता) को आटोक्लेव कर इसमें लगाकर शेड नेट हाउस (50 प्रतिशत छाया एवं 70 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता) में रखा गया।

बाग की स्थापना एवं देखभाल

बड़हल का बाग लगाने के लिये 1 × 1 × 1 मीटर आकार के गड्ढे वर्गाकार पद्धति में 10 × 10 मीटर (पंक्ति से पंक्ति × वृक्ष से वृक्ष) की दूरी पर जून के महीने में खोद लिये जाते हैं। करीब एक महीने तक धूप में सूखने के बाद गड्ढे की

ऊपर की मिट्टी में 30-40 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद, 500 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट एवं 100 ग्राम क्लोरपायरीफॉस मिलाकर गड्ढों को भर दिया जाता है। उत्तर भारत में पौधों के रोपण का सर्वोत्तम समय जुलाई-अगस्त है। पौधे लगाने के बाद पानी देना आवश्यक है। अगर मौसम सूखा हो तो रोपण के बाद उचित पानी देना आवश्यक है। छोटे पौधों की गर्मी में सिंचाई एवं पलवार की व्यवस्था कर एवं सर्दियों में पाले से बचाव करना जरूरी है। लखनऊ एवं आसपास के क्षेत्रों में किसान आम के बाग के चारों तरफ वायुरोधक वृक्ष के रूप में या विशेष रूप से पश्चिम और उत्तर की दिशा में बाउंड्री पर इसका रोपण करते हैं। इससे उन्हें अतिरिक्त आमदनी की भी प्राप्ति होती है और आम के फलों का आँधी से बचाव भी होता है। थालों की समय-समय पर गुड़ाई करते रहना चाहिये। गर्मी में विशेष रूप से पॉलिथीन या जीवाँश पदार्थ से मल्चिंग करनी चाहिये। इससे खरपतवार नियंत्रण एवं नमी के संरक्षण दोनों में मदद मिलती है।

पौधों में पोषण प्रबंधन

बड़हल में अच्छी एवं नियमित फलत के लिये पोषण प्रबंधन आवश्यक है। एक वर्ष के पौधे के लिए 5 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद, 100 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फॉस्फोरस एवं 50 ग्राम पोटाश पर्याप्त होती है। इस मात्रा को समान रूप से पौधे की उम्र के अनुसार 10 वर्ष तक बढ़ाकर स्थिर कर दिया जाता है। इस प्रकार दस वर्ष के पौधे के लिये 50 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद, 1000 ग्राम नाइट्रोजन, 500 ग्राम फॉस्फोरस एवं 500 ग्राम पोटैश पर्याप्त होती है। खाद एवं उर्वरक की सारी मात्रा जनवरी-फरवरी में उचित नमी की अवस्था में पेड़ के तने से लगभग 1.5 से 2.0 मीटर दूर डालकर मिला देनी चाहिये।

फलों की तुड़ाई एवं उपज

बड़हल के बीजू वृक्ष 5 से 8 वर्ष में फल देने लगते हैं जबकि कलमी वृक्ष सामान्यत: 3 से 4 वर्ष में ही फलत देने लगते हैं। पीले या नारंगी पीले नर पुष्पक्रम एवं लाल मादा पुष्पक्रम एक ही वृक्ष पर अलग-अलग पाये जाते हैं। फल 5 से 12 सेंटीमीटर व्यास वाले लगभग गोल, अनियमित आकार के या सुडौल होते हैं। फल मटमैले पीले रंग के या कुछ गुलाबी या नारंगी आभा लिये हुए होते हैं। किस्म के अनुसार कुछ वृक्षों पर मीठे और कुछ वृक्षों पर खट्टे फल लगते हैं। वृक्ष की आयु एवं प्रवर्धन विधि के अनुसार एक पूर्ण विकसित वृक्ष से 60 से 100 किलोग्राम/वृक्ष तक फल आसानी से प्राप्त हो जाते हैं।

बड़हल की फलयुक्त शाख

सीआईएसएच बड़हल-3

उपोष्ण आड़ू की खेती : एक लाभकारी व्यवसाय

के. के. श्रीवास्तव[1], घनश्याम पाण्डेय[2], दिनेश कुमार[3], श्यामराज सिंह[4] एवं शिवानंद पाण्डेय[5]

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

आड़ू (प्रूनस पर्सिका) गुठलीदार फलों का मुख्य फल है। इसका उत्पत्ति स्थान चीन है। इसकी खेती अपेक्षाकृत गर्म शीतोष्ण क्षेत्रों में की जाती है। आड़ू की व्यावसायिक खेती यूरोप, उत्तरी-अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका और एशिया में की जाती है। आड़ू के 100 ग्राम गूदे में विटामिन ए 1330 आई. यू., एस्कॉर्बिक अम्ल 7 मिलीग्राम, थायमिन 0.05 मिलीग्राम, फॉस्फोरस 19 मिलीग्राम, पोटैशियम 202 मिलीग्राम पाया जाता है। आड़ू, शर्करा, विटामिन और खनिज पदार्थों का मुख्य स्रोत है। इसके फल के गूदे में प्रुनैसिन नामक ग्लाइकोसाइड तथा बीज में एमिगडेलिन नामक रसायन पाया जाता है।

जलवायु

शीतोष्ण फलों में आड़ू ही एक ऐसा फल है जो गर्म घाटियों एवं मैदानी क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जाता है। आड़ू की खेती कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में की जाती है, परन्तु 'हनी वर्ग' की खेती उपोष्ण जलवायु में भी की जाती है। बसंत में सर्दी, पाला, ओला एवं अधिक आर्द्रता इसकी काश्तकारी के लिये समस्या पैदा करते हैं। फूलवाली कली को सहायक वानस्पतिक कली की अपेक्षा अधिक अभिशीतन की जरूरत होती है जबकि शीर्ष कलिका को सबसे कम अभिशीतन की आवश्यकता होती है। आड़ू को 400-1000 घंटे अभिशीतन की आवश्कता होती है। पीन्टों आड़ू की किस्म दक्षिण चीन में पायी जाती है तथा सदाबहार प्रकृति की होती है।

भूमि

आड़ू की सफल खेती के लिये जीवांशयुक्त बलुई दोमट भूमि जिसमें जल-निकास की समुचित व्यवस्था हो उत्तम होती है। इसकी खेती के लिये हल्का से मध्यम ढलान वाली भूमि आदर्श है। गहरी घाटी अनुपयुक्त होती है, क्योंकि आड़ू सबसे उत्तम है।

[1,2,3,4]प्रधान वैज्ञानिक एवं [5]शोध सहयोगी

प्रवर्धन

आड़ू का व्यावसायिक प्रवर्धन चश्मा विधि द्वारा किया जाता है। मूलवृंत हेतु देशी आड़ू के बीजू पौधे प्रयोग किये जाते हैं। सभी आड़ू के मूलवृंत जल भराव में संवेदनशील होते हैं। खुबानी एवं बादाम के मूलवृंत, आड़ू के लिये असंगत होते हैं। आड़ू के व्यावसायिक प्रवर्धन हेतु अधिकतर 'टी' चश्मा बंधन का उपयोग होता है। 'टी' चश्मा हेतु एक वर्ष पुराने मूलवृंत एवं सांकुर शाखा में उचित पोषक तत्वों के संचार के लिये पर्याप्त सिंचाई एवं नाइट्रोजन खाद का छिड़काव करना चाहिये।

किस्में

1. शीघ्र पकने वाली-एलेक्जैण्डर, पैरीग्रीन, अर्ली रीवर्स, बल्र्डस अर्लियस्ट, पेशावरी, अर्ली रेड जून, क्राफोर्ड अर्ली, पैराडीलक्स, रेड हैवन।
2. मध्य में पकने वाली-हेल्स अर्ली, ड्यूक आफ आर्क, स्नोक्वीन, अलबर्टा, सनरेड, सन् हैवन।
3. कम अभिशीतन वाली प्रजाति-फ्लोरडा सन, फ्लारडा बेल, शर्बती, सफेदा अर्ली, फ्लोरडा प्रिंस, फ्लोरडा रैड, अर्ली ग्रांडे, साउथ लैण्ड, प्रभात, सहारनपुर बहार।

स्नोक्वीन (नैक्ट्रीन) : फल छोटे से मध्यम आकार के होते हैं जिनका सतह चिकना सफेद चमकीला लाल रंग का, गूदा सफेद, अच्छी सुगंध वाला एवं गुठली से चिपके होता है। फल मध्य जून में पक कर तैयार होते हैं। इनके पौधे फैलावदार, ओजस्वी एवं अच्छी पैदावार देने वाला होते हैं जिन्हें 6,000 फुट तक की ऊँचाई वाले क्षेत्रों के लिये अनुमोदित किया गया है।

शरबती : फल मध्यम आकार का, गोल और लंबूतरा, उभार वाला, हरा पीला रंग तथा गूठली गूदे से चिपकी हुई होती है। फल अच्छे गुणवत्ता वाले होते हैं जो जून के अन्तिम सप्ताह में पक कर तैयार होते हैं।

शाने-ई-पंजाब : फल मई के दूसरे सप्ताह में पकते हैं। ये 5 से 5.5 सेंटीमीटर व्यास वाले, मध्यम आकार के, लगभग 100 ग्राम वजन प्रति फल, गूदा पीला, गुठली गूदे से चिपकी हुई, उत्तम स्वाद तथा बढ़िया सुगंध वाले हैं जिनकी उपज 125 किलोग्राम प्रति पेड़ तक पायी गयी है।

प्रताप : फूल फरवरी-मार्च में आते हैं। यह 10 से 25 फरवरी के बीच पूर्ण पुष्पन अवस्था में बहुत जल्दी पकने वाली किस्म है। ये अप्रैल के चौथे सप्ताह में पक कर तैयार हो जाते हैं। फल का आकार 5.45 × 5.40 सेंटीमीटर, फल का भार 80 ग्राम प्रति फल होता है तथा उत्पादन 39.17 किलोग्राम प्रति पौधा, कुल घलनशील ठोस पदार्थ (टी.एस. एस.) 10-14 प्रतिशत तथा अम्लता 0.85 प्रतिशत पायी जाता है।

जुलाई एलबर्टा : फल का आकार मध्यम, छिलका फीका लाल रंग का और इसके छिल्के पर हल्के पीले रंग की धारियाँ होती हैं। इसका गठीला गूदा, पीला, बीच में थोड़ा लाल, गठा हुआ, निश्चल मुलायम, फल उत्तम गुणवत्ता वाला, जुलाई के दूसरे सप्ताह में पक कर तैयार होने वाला है जो डिब्बाबंदी के लिये बढ़िया किस्म है।

परागण : आडू की अधिकांश किस्मों में स्वपरागण से ही फल बनते हैं अर्थात एक ही किस्म के फूलों में स्वयं के परागण से निषेचन हो जाता है, लेकिन कुछ किस्मों में पर-परागण जरूरी होता है। जे.एच.हेल, जुलाई अल्बर्टा, हारवर्टा एवं चाइनीस किलिंग में पर-परागण फल टिकाव के लिये आवश्यक होता है।

पौध रोपण : आडू के पौध का रोपण अन्य शीतोष्ण

फलों की भांति दिसंबर-फरवरी तक किया जाता है। भूमि की उर्वराशक्ति के अनुसार पौध रोपण करना चाहिये। परंपरागत आडू 4-5 मीटर की दूरी पर चौकोर प्रणाली में लगाये जाते हैं।

खाद एवं उर्वरक : अच्छी उत्पादकता के लिये, फलत देने वाले पौधों में अन्य फलों की अपेक्षा अधिक नाइट्रोजन की अवश्यकता होती है। गोबर की खाद के अलावा 200, 150, 150 ग्राम नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटैश प्रति वर्ष देना चाहिये। आडू में सूक्ष्म पोषक तत्व की कमी को पूरा करने के लिये, 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट, 0.2 प्रतिशत बोरिक एसिड का पर्णीय छिड़काव करना चहिये।

कटाई-छँटाई एवं सधाई : आडू की सधाई विरूपित केन्द्र प्रणाली, खुला केन्द्र प्रणाली, वी आकार, टटूरा ट्रेलिस, पिलर, वेल्जियम फ्रेंच और दो स्कैफोल्ड विधि से की जाती है। गुठलीदार फलों में से आडू में सर्वाधिक काट-छाँट की आवश्यकता होती है। भारत में आडू की सधाई अधिकतर खुला केन्द्र प्रणाली द्वारा की जाती है। इस विधि में पौधे को रेखांकन के अनुसार लगाने के पश्चात 2-3 मुख्य शाखा को प्रथम वर्ष में बढ़ने देते हैं। दूसरे वर्ष 3-4 शाखायें जो 10-15 सेंटीमीटर की दूरी पर चारों दिशाओं में जिनका उचित कोण हो एवं बढ़ने देते हैं।

आड़ू में काट-छाँट : आड़ू में अधिक काट-छाँट की आवश्कता होती है। आड़ू में फलत एक वर्ष पुराने शाखा पर होती है जिसमें नियमित काट-छाँट कर पेड़ को सही आकार एवं फलत में बनाये रखने में सहायता होती है। शाखाओं की नियमित कटाई करने से फल देने वाली शाखाओं का विकास होता रहता है। 41-61 सेंटीमीटर वार्षिक शाख वृद्धि उत्तम फलत के लिये अच्छी होती है।

आड़ू के मुख्य कीट एवं व्याधियाँ

आड़ू का पत्ता मरोड़ तेला : यह कीट पत्तों एवं टहनियों की छाल से रस चूसकर पेड़ को कमजोर कर देता है। इसका ज्यादा प्रकोप होने पर पत्तियाँ मुड़ी हुई तथा फूल मुर्झाये निकलते हैं। पेड़ पर फल कम लगते हैं तथा लगे फल की बढ़वार प्रभावित होती है। इस कीट के नियंत्रण के लिये गुलाबी कली की अवस्था से एक सप्ताह पूर्व डाइमेथोऐट 0.03 प्रतिशत (200 मिली रोगर 30 ई.सी.) का छिड़काव कर नियंत्रण किया जा सकता है। यदि यह छिड़काव नहीं किया गया हो तो फूलों की पंखुडियाँ गिरने पर करें।

गुठली फटना एवं गोंद रिसाव : इस विकार से भी काश्तकारों को भारी नुकसान होता है क्योंकि असरदार फल बाजार लायक नहीं होते हैं। गुठली ज्यादातर जोड़ से फटती है और उससे गोंद निकलने लगता है। फल के अधिक बढ़ने के साथ गुठली भी फटने लगती है और बाद में गोंद निकलकर पूरे फटे भाग में भर जाता है। इस विकार का मुख्य कारण काफी लंबे सूखे के बाद भारी वर्षा को होना है।

आड़ू की परिपक्वता एवं तुड़ाई : आड़ू की तुड़ाई उसके सख्त रहते ही की जाती है क्योंकि तुड़ाई के बाद फल की गुणवत्ता में सुधार होता है। अधिक पकने पर आड़ू का स्वाद कम अच्छा होता है। परिपक्वता के समय फल के आधार का रंग हरे से धूसर होने लगता है। आड़ू के पेड़ की आर्थिक आयु 15-30 वर्ष होती है। आड़ू के 10-15 वर्ष के पूर्ण विकसित पेड़ से 35-50 किलोग्राम फल प्राप्त होता है।

भंडारण एवं डिब्बाबंदी : सामान्यत: आड़ू की औसत भंडारण क्षमता कम होती है। यह फल शीघ्र ही सड़ने लगते हैं। फल-तुड़ाई के तुरंत बाद ठंडे पानी में भिंगाने से स्थानीय ऊष्मा को कम कर पकने की प्रक्रिया को धीमा किया जा सकता है। ताजे तोड़े गये फल को हाइड्रोकूलिंग या तो ठंडे चलते पानी में रखकर या ठंडी हवा प्रवाहित कर किया जा सकता है। प्री कूल्ड फल को शून्य सेल्सियस तापमान एवं 85-90 प्रतिशत आपेक्षित आर्द्रता पर 25-35 दिन तक भंडारित किया जा सकता है।

दूसरी भाषाओं से हिन्दी में आये प्रचलित शब्द

फारसी शब्द : कमीज़, पाजामा, देहात, शहर, सब्जी, अंगूर, हलवा, जलेबी, कुर्सी, सख्त, मकान, दवा, मरीज, हकीम, बुखार आदि।

तुर्की शब्द : बहादुर, कैंची, बेगम, बाबा, कुर्ता, गलीचा, चाकू, गनीमत, लाश, सुराग आदि।

पश्तो शब्द : पठान, गुण्डा, अचार, डेरा, गड़बड़, नगाड़ा, हमजोली, मटरगश्ती आदि।

पुर्तगाली शब्द : आलमारी, इस्त्री, आया, कनस्तर, गोदाम, चाबी, गमला, तौलिया, परात, पावरोटी, पिस्तौल, बालटी, बिस्कुट, बोतल, तम्बाकू आदि।

अंग्रेजी : इंजन, मोटर, कैमरा, रेडियो, मीटर, हॉस्टल, फीस, स्टेशन, अफसर, रपट, कंपनी, टीम, परेड, प्रेस, अपील, कोर्ट, पाकिट, टाई आदि।

पॉलीहाउस में टमाटर अच्छी आय का साधन

वी.के. सिंह[1], मनोज कुमार सोनी[2], अम्बरीश कुमार शुक्ला[3] एवं अनिल कुमार यादव[4]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

मौसम में हो रहे निरन्तर परिवर्तन के कारण खुले वातावरण में सब्जियों का उत्पादन और उनकी गुणवत्ता दोनों ही प्रभावित हो रही हैं जिससे किसानों को भारी आर्थिक क्षति का सामना करना पड़ रहा है। इस प्रकार की समस्याओं से बचने के लिये आधुनिक पद्धति एवं उन्नत कृषि तकनीक को अपनाते हुए पॉलीहाउस में सब्जियों का उत्पादन करना एक अच्छा विकल्प साबित हो रहा है।

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ के निदेशक, डॉ. शैलेन्द्र राजन बताते हैं कि केन्द्र सरकार की योजना 'किसानों की लागत आधी करने और उत्पादकता बढ़ाने' के लक्ष्य पर काम करते हुए संस्थान में स्थित सुनियोजित कृषि विकास केन्द्र (पी.एफ. डी.सी.) को पौष्टिक तत्वों से भरपूर गुणवत्तायुक्त टमाटर के उत्पादन में बड़ी सफलता प्राप्त हुई है। संस्थान में स्थित यह केन्द्र अधिक उपज के लिये प्लास्टीकल्चर से संबंधित कृषि एवं बागवानी की प्रौद्योगिकी परिष्करण एवं क्षमता संवर्धन पर मुख्यत: कार्य कर रहा है। विगत 5-6 वर्षों से टमाटर की संकर प्रजातियों पर शोध के उपरान्त यह पाया गया कि पॉलीहाउस में टमाटर की कुछ विशेष किस्मों जैसे हिमशिखर, हिमसोना, एनएस-1218, अभिलाष, अविनाश-2,

पॉलीहाउस में लगाये गये टमाटर में फूल एवं फल बैठने की व्यवस्था

टमाटर की हिम शिखर प्रजाति के फलों की स्थित एवं उपज

नवीन, सरताज प्लस, देव, शहंशाह, अर्का रक्षक, अर्का सम्राट एवं चेरी टमाटर का उत्पादन संरक्षित खेती के माध्यम से लंबे समय तक सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

तुलनात्मक अध्ययन के दौरान पॉलीहाउस में लगाये गये पौधों का उत्पादन बाहर लगाये गये उसी प्रजाति के पौधों की उत्पादकता से लगभग 3-5 गुना अधिक पाया गया। कुछ प्रजातियों में टमाटर का उत्पादन पॉलीहाउस में 15-20 किलोग्राम प्रति पौधा तक प्राप्त हुआ जबकि उसी प्रजाति के बाहर लगाये पौधों में मात्रा 5-8 किलोग्राम प्रति पौधा टमाटर प्राप्त हुआ। इसके साथ ही प्रमुख पौष्टिक तत्व लाइकोपीन एवं अन्य ऐंटीऑक्सीडेंट की मात्रा चेरी टमाटर में सबसे ज्यादा (8.7 मिलीग्राम/100 ग्राम) पायी गयी। पॉलीहाउस में लगाये गये पौधों में टमाटर के फलों का एकसमान आकार एवं लाल रंग का होना टमाटर के फलों की गुणवत्ता का सूचक एवं मूल्य निर्धारण का एक प्रमुख कारक भी है, जो बाहर के फलों की तुलना में ज्यादा अच्छा पाया गया है।

परियोजना से जुड़े संस्थान के प्रधान वैज्ञानिक एवं परियोजना अन्वेषक, डॉ. वी. के. सिंह बताते हैं कि यह सफलता पौधों में छत्र प्रबंधन, टपक सिंचाई, सिंचाई जल के साथ उर्वरक देना (फर्टिगेशन) तथा मल्चिंग तकनीक को अपनाकर मिली है। इस तकनीक के तहत पौध रोपण के 20-25 दिन बाद टमाटर के पौधों को 30 सेंटीमीटर ऊपर से

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2,3,4]अनुसंधान सहयोगी

काटकर उसकी दो शाखाओं को बढ़ने दिया जाता है। बढ़ते हुए पौधों को सहारा देने के लिये नॉयलॉन के तार के सहारे प्रत्येक शाखा को बाँधते हैं। इन शाखाओं को फसल के अंत तक रखा जाता है। दोनों शाखाओं पर समान आकार एवं गुणवत्तायुक्त फल आते हैं। शेष सभी शाखाओं को हटाते रहना चाहिये। इससे दोनों शाखाएँ तने से एक साथ निकलती हैं तथा जड़ से समान रूप से पोषण प्राप्त करती हैं। इस तकनीक में फर्टिगेशन एवं मल्चिंग से पोषण तत्व उपलब्ध कराने तथा पानी एवं खरपतवार को नियंत्रित करने की लागत में काफी कमी आयी है जिससे इस तकनीक से टमाटर उत्पादन द्वारा किसानों की आय वृद्धि में समुचित बढ़ोतरी हो सकती है।

सामान्यत: टमाटर के एक पौधे पर 8-12 गुच्छे आते हैं। एक गुच्छे में 6-10 टमाटर पाये जाते हैं। परन्तु कुछ प्रजातियों में 14-18 गुच्छे तथा एक गुच्छे में 8-10 फल होते हैं जिसमें एक फल का वजन लगभग 150-180 ग्राम तक होता है। परन्तु चेरी टमाटर के एक गुच्छे में 25 फल तक होते हैं जिसमें एक टमाटर का वजन 15-25 ग्राम तक होता है।

पॉलीहाउस में लगाये गये टमाटर की भंडारण क्षमता बाहर लगाये गये पौधों के फलों की तुलना में काफी अधिक होती है एवं फलों के ऊपरी सतह पर कवक, फफूँद, यीस्ट, जीवाणु आदि की संख्या भी बाहर लगाये हुए पौधों के फलों की तुलना में लगभग नगण्य होती है।

इसके साथ-साथ पॉलीहाउस में टमाटर की पैदावार 6 महीने तक ली जा सकती है जबकि खुले वातावरण में इसकी पैदावार की अवधि लगभग इसकी आधी होती है। पॉलीहाउस में लगभग 2500-3000 क्विंटल सामान्य प्रजाति के टमाटर तथा 800-1000 क्विंटल चेरी टमाटर प्रति हेक्टेयर उत्पादन किया जा सकता है। अत: इस नयी तकनीक को अपनाकर किसान टमाटर की फसल उत्पादन की लागत में कमी कर अपनी आय में 3-4 गुना तक बढ़ोतरी कर सकते हैं।

टमाटर की चेरी प्रजाति में फलों की स्थित एवं उपज

टमाटर की एन.एस.-1218 प्रजाति में फलों की स्थित

पॉलीहाउस का उपयोग कर उच्च गुणवत्तायुक्त टमाटर का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जा सकता है। पॉलीहाउस में टमाटर उत्पादन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उत्पादन का उच्चतम स्तर हमें तब प्राप्त हो जब बाजार में टमाटर का भाव अधिकतम हो जिससे किसान पॉलीहाउस में टमाटर की खेती से कम समय में अधिक लाभ कमा सके।

संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी, संघ के शासकीय प्रयोगजनों के लिये प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा। (अनुच्छेद 343)

स्पिरुलिना-भविष्य का एक पौष्टिक भोजन

अनुप कुमार भट्टाचार्जी[1] एवं प्रदीप कुमार शुक्ल[2]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

स्पिरुलिना क्या है?

स्पिरुलिना एक खाने योग्य नाइट्रोजन स्थिरीकरण वाला नील-हरित शैवाल है जिसकी उत्पति आज से 3.5 अरब वर्ष पहले मानी जाती है। यह अपने प्रजनन के लिये समुद्र के जल में घुली हुई कार्बन डाईऑक्साइड को पोषक तत्व की तरह उपयोग करता है। बहुकोशिकीय, सहजीवी एवं तंतुयुक्त नील-हरित शैवाल स्पिरुलिना की प्रसिद्धि स्वास्थ्य एवं खाद्य उद्योग में प्रोटीन एवं विटामिन की पूर्ति के रूप में होती है। इसे बड़ी आसानी से कड़ी धूप, उच्च तापमान एवं उच्च क्षारीय वातावरण में उगाया जा सकता है। इसमें बहुत बड़ी मात्रा में सूक्ष्म तथा भारी पोषक तत्व निहित होते हैं। स्पिरुलिना को पानी में उगाकर दोहन के पश्चात् चूर्ण के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। यह प्राकृतिक रूप से क्षारीय झीलों में पाया जाता है तथा पूर्ण आहार की तरह उपयोग किया जाता है। सिंगापुर, मलेशिया, थाइलैंड, ताइवान, मैक्सिको आदि देशों के लोग इसे प्रोटीन के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इसे सामान्यतया पानी से निकालकर, सुखाने के पश्चात सीधे उपयोग में लाया जाता हैं। इसके अलावा मछलियों, झींगा तथा मुर्गी पालन में इसका भोजन के रूप में भी उपयोग किया जाता हैं। स्पिरुलिना चकती अथवा छड़ के आकार के हो सकते हैं। नीले रंग का फाइकोसायनिन इसका मुख्य प्रकाश-संश्लेषी रंजक होता है। इसके अलावा, ये हरे क्लोरोफिल-ए तथा नारंगी कैरोटीनायड रंजक युक्त भी होते हैं।

भोजन के रूप में स्पिरुलिना की उत्कृष्टता के कारण

स्पिरुलिना को एक उत्कृष्ट भोजन (सुपरफूड) भी कहा जा सकता हैं क्योंकि इसके पोषक तत्व अन्य पौधों से प्राप्त पोषक तत्वों से कई गुना अधिक प्रभावशाली होते हैं। यह मुख्यतया सभी आवश्यक पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण प्रोटीन तथा विटामिन का पूर्ण विकल्प बन सकते हैं।

प्रोटीन एवं आवश्यक एमिनो अम्ल

सामान्यतया स्पिरुलिना में बड़ी मात्रा में प्रोटीन (लगभग 55-70% शुष्क भार) पाया जाता है जो सभी आवश्यक एमिनो अम्ल से भरपूर होने के साथ-साथ अन्य पौधों से पाये जाने वाले प्रोटीन से बेहतर होता हैं (सारणी-1)। वनस्पतियों में प्रोटीन के मुख्य स्रोत सोयाबीन (35% शुष्क भार), मूंगफली (25% शुष्क भार), अनाज (8-10% शुष्क भार) तथा फलीदार पौधे होते हैं। फिर भी इन वनस्पतियों से प्राप्त प्रोटीन में मुख्यतया तीन आवश्यक एमिनो अम्ल (मेथिओनीन, सिस्टीन एवं लाइसीन) पशुओं से प्राप्त मांस, अंडा अथवा दूध जैसे प्रोटीन स्रोतों की तुलना में बहुत कम होता है।

सारणी-1 : स्पिरुलिना में प्राप्त एमिनो अम्ल, वसा, कार्बोहाइड्रेट तथा रंजकों की सूची

एमिनो अम्ल (60-70%)	वसा (लिपिड, 3-9%)	कार्बोहाइड्रेट (1-5%)	रंजक
आइसोल्यूसिन	लिनोलेनिक अम्ल	ग्लाइकोजन	क्लोरोफिल-ए
मेथिओनीन	गामा-लिनोलेनिक अम्ल	ग्लूकोज	बीटा कैरोटीन
टाइरोसिन	ओलिक अम्ल	रैमनोज	जैंथोफिल
वेलिन	पामिटिक अम्ल	जाइलोज	फाइकोसायनिन
एलेनिन	अन्य वसा अम्ल	लिग्निन	
ग्लाइसिन			
ल्यूसिन			
सिस्टीन			
थ्रीओनीन			
आर्जिनिन			
एस्पार्टिक अम्ल			
प्रोलीन			
लाइसीन			
फिनाइल एलेनिन			
ट्रिप्टोफैन			
हिस्टीडीन			
ग्लूटॉमिक अम्ल			
सेरीन			

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2]कनिष्ठ शोध सहायक

आवश्यक वसा अम्ल

स्पिरुलिना बड़ी मात्रा में बहु-असंतृप्त प्रकार (पी.यू. एफ.ए.) के वसा अम्ल (संपूर्ण वसा का 1.5-2.0%) युक्त होता है जो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये अति उत्तम होता है। वसा अम्लों में से यह गामा-लिनोलेनिक अम्ल (सम्पूर्ण बहुअसंतृप्त अम्ल का 36%), लिनोलेनिक अम्ल, स्टीरिडोनिक अम्ल, ईकोसापेंटानोइक अम्ल, डोकोसाहेक्सानोइक अम्ल और ऑर्किडोनिक अम्ल से युक्त होता है (सारणी-1)।

विटामिन

इसमें विटामिन बी-1 (थायमिन), बी-2 (राइबोफ्लेविन), बी-3 (नियासिन), बी-6 (पायरीडॉक्सीन), बी-9 (फोलिक अम्ल), बी-12 (साइनोकोबेलामिन), विटामिन-ए, विटामिन-सी, विटामिन-डी एवं विटामिन-ई पाये जाते हैं। इसके अलावा इसमें विटामिन-के एवं विटामिन-एच भी कम मात्रा में होते हैं (सारणी-2)।

सारणी-2 : स्पिरुलिना में उपस्थित विभिन्न विटामिनों एवं खनिज तत्वों की मात्रा

विटामिन	उपस्थित मात्रा (मिलीग्राम/ 100 ग्राम)	खनिज तत्व	उपस्थित मात्रा (मिलीग्राम/ 100 ग्राम)
ए	30-260	कैल्सियम	90-200
बी 1	2-5	पोटैशियम	200-800
बी 2	3-5	सोडियम	500-1000
बी 6	0.3-0.8	मैग्नीशियम	200-300
बी 12	0.05-0.3	फॉस्फोरस	600-1000
ई	5-30	आयरन	30-70
नियासिन	8-18	जिंक	40-50
इनोसिटोल	50-100	आयोडीन	0.4-0.8
पैंटोथेनिक एसिड	0.1-1.0	कॉपर	2-4 पी.पी.एम.
फोलिक एसिड	4-90 माइक्रोग्राम	मैंगनीज	20-30 पी.पी.एम.
के	-	कोबाल्ट	0.1-0.2 पी.पी.एम.
एच	-	सेलेनियम	0.05 पी.पी.एम.

खनिज तत्व

यह पोटैशियम, कैल्सियम, सोडियम, क्रोमियम, कॉपर, लौह, मैंग्नीशियम, मैंगनीज, फॉस्फोरस, सेलेनियम और जिंक जैसे खनिज तत्वों का भी भरपूर स्रोत होता है। (सारणी-2)।

स्पिरुलिना की कोशिका भित्ति में सेलुलोज नामक कार्बोहाइड्रेट उपस्थित नहीं होने के कारण, खाने के पश्चात 85 प्रतिशत से भी अधिक प्रोटीन लगभग 18 घंटे में ही बड़ी आसानी से आत्मसात अथवा पच जाता है। बाजार में व्यापारिक तौर पर मिलने वाले स्पिरुलिना चूर्ण में 60 प्रतिशत प्रोटीन, 20 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 5 प्रतिशत वसा, 7 प्रतिशत खनिज तत्व तथा 3 से 6 प्रतिशत नमी होता है जो इसे कम वसा युक्त, कम कैलोरी वाला, कोलेस्ट्रॉल मुक्त प्रोटीन का उत्तम स्रोत साबित करता है।

स्पिरुलिना की प्राकृतिक स्रोत तथा विकास

स्पिरुलिना मुख्यतया मिट्टी, दलदल, मीठे एवं खारे पानी के स्रोतों, समुद्री जल और गरम झरनों वाले स्थानों में पाया जाता है। उष्णकटिबंधीय प्रदेशों जहाँ उच्च स्तर पर सौर विकिरण अधिक होता है वहाँ स्पिरुलिना का उत्पादन क्षारीय, लवणयुक्त पानी (30 ग्राम/लीटर नमक) तथा उच्च पी.एच. मान (लगभग 8.5 से 11.0) के साथ अच्छे स्तर पर किया जा सकता है।

स्पिरुलिना की दो प्रमुख प्रजातियाँ, *एस. प्लाटेंसिस* और *एस. मैक्सिमा*, अफ्रीका तथा मैक्सिको की अतिक्षारीय झीलों में पायी जाती हैं जहाँ सायनोबैक्टेरिया एवं अन्य सूक्ष्मजीवों का जीवित रहना अत्यंत कठिन अथवा असंभव होता है। अतिक्षारीय तथा उच्च चालकता मान वाले पानी में स्पिरुलिना का उत्पादन बहुतायत में किया जा सकता है। *स्पिरुलिना प्लाटेंसिस* प्रजाति को 85 से 270 ग्राम/लीटर वाले लवण युक्त पानी से प्राप्त किया जा सकता है जबकि इसकी पैदावार के लिये 20 से 70 ग्राम/लीटर लवण युक्त पानी सर्वोत्तम होता है। स्पिरुलिना की उच्चतम पैदावार के लिये प्रयोगशाला में 35 से 37 डिग्री सेंटीग्रेड को उपयुक्त तापमान के तौर पर देखा गया है। इसके अलावा यह बाहरी वातावरण में 39 डिग्री सेंट्रीग्रेड तापमान पर कुछ घंटो तक जीवित रह सकता है।

स्पिरुलिना के लिये न्यूनतम तापमान 15 डिग्री सेंटीग्रेड (दिन के समय) पाया गया है। इसके अलावा यह अपेक्षाकृत कम तापमान को भी (रात में) सहन कर सकता है। प्राय: यह भी देखा गया है कि स्पिरुलिना में पराबैंगनी विकिरण के प्रति उच्च प्रतिरोधक क्षमता भी उपस्थित होती है।

स्पिरुलिना की खेती कैसे करें?

स्पिरुलिना को उगाने हेतु एक तालाब अथवा जलाशय, एकत्र करने का कुंड, निर्जलीकरण कमरा/शुष्कीकरण कक्ष, अलमारी एवं कुछ अन्य कक्षों (जहाँ स्पिरुलिना के टुकड़ों को चूर्ण अथवा कैप्सूल के रूप में परिवर्तित किया जा सके) की आवश्यकता होती है। स्पिरुलिना को उगाने के लिये 3 से 4 मीटर चौड़ी और लगभग 100 मीटर लंबाई वाले एक तालाब की आवश्यकता होती है। तालाब में स्पिरुलिना शैवाल की चुनी हुई अथवा वैज्ञानिकों द्वारा प्रमाणित प्रजाति तथा आवश्यक पोषक तत्वों को पानी में मिलाकर डाल दिया जाता है। तालाब के पानी का लगातार संचालन करना भी आवश्यक होता है जिससे पानी में पोषक तत्वों की उपलब्धता समान रूप से बनी रहे तथा शैवाल को पर्याप्त रोशनी भी मिल सके। अब तालाब को प्लास्टिक आवरण से ढ़क देने से अथवा तालाब के पास ग्रीन हाउस बनवाने से शैवाल के उत्पादन हेतु उचित वातावरण जैसे-तापमान को बढ़ाना, वाष्पीकरण को कम करना, संदूषण और अनावश्यक संकरण से बचाना होता है। सोडियम बाईकार्बोनेट (यदि प्राकृतिक कार्बन डाईऑक्साइड उपलब्ध न हो), मैग्नीशियम सल्फेट, पोटैशियम नाइट्रेट, सिट्रिक अम्ल, नमक, यूरिया, कैल्सियम क्लोराइड, आयरन सल्फेट और अमोनियम सल्फेट कुछ ऐसे तत्व हैं जो स्पिरुलिना के उत्तम पैदावार हेतु पानी में मिलाना आवश्यक होता है। यह ध्यान रखने योग्य है कि खनिज तत्वों एवं उपयोगी रसायनों की निश्चित मात्रा और अनुकूल पी.एच. मान (8-11) पर ही स्पिरुलिना को सही ढंग से विकसित किया जा सकता है।

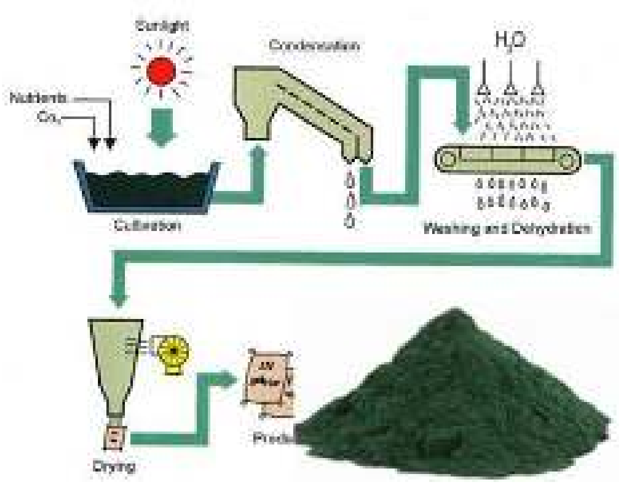

स्पिरुलिना के घरेलू उत्पादन का तरीका

स्पिरुलिना को घर में भी छोटे पानी की टंकी में डालकर विकसित किया जा सकता है। घर में स्पिरुलिना के उत्पादन हेतु पानी की टंकी को खिड़की के पास दक्षिण दिशा में रखना चाहिये जिससे पर्याप्त रोशनी मिलती रहे। पानी की टंकी का उपयुक्त तापमान 35 डिग्री सेंटीग्रेड (95 डिग्री फारेनहाइट) होना चाहिये। बाजार में उपलब्ध स्पिरुलिना के संवर्धित शैवाल को प्रारंभिक बीज की तरह उपयोग में लाया जा सकता है। इसकी आधा अथवा तीन-चौथाई मात्रा को टंकी में मिलाकर खूब अच्छी तरह से मिश्रित करना चाहिये। तीन से छह सप्ताह बाद विकसित स्पिरुलिना को टंकी से बाहर निकालने के लिये महीन कपड़ा अथवा जाली या कलछी का उपयोग कर सकते हैं तथा पानी भी निकाला जा सकता है। स्पिरुलिना की उत्तम वृद्धि के लिये साधारण पानी में खनिज तत्वों जैसे-सोडियम बाईकार्बोनेट, मैग्नीशियम सल्फेट, पोटैशियम नाइट्रेट, सिट्रिक अम्ल, नमक, यूरिया, कैल्सियम क्लोरॉइड, आयरन सल्फेट तथा अमोनियम सल्फेट को समुचित मात्रा में मिलाना चाहिये।

स्पिरुलिना के फायदे

पाँच से दस ग्राम प्रतिदिन खाये जाने वाले स्पिरुलिना के महत्वपूर्ण फायदे कुछ इस प्रकार हैं।

1. एच.आई.वी./ एड्स के खिलाफ प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करता है।
2. स्पिरुलिना में गाजर से 10 गुना अधिक बीटा-कैरोटीन पाया जाता है। यह एक उत्तम ऐंटीऑक्सीडेंट है जो आँखों के स्वास्थ्य के लिये भी अच्छा है।
3. विटामिन-बी की उच्च सांद्रता न केवल कार्बोहाइड्रेट और लिपिड को तोड़ता है अपितु हृदय को स्वस्थ भी बनाये रखने में मदद करता है।

4. गठिया एवं हृदय रोगों को रोकता है।
5. मस्तिष्क में राइबोन्यूक्लिक अम्ल को बढ़ाकर ऊर्जा प्रदान करता है।
6. बुढ़ापे को जल्दी नहीं आने देता है।
7. पाचन क्रिया को उत्तम बनाता है।
8. मांस पेशियों के बनने में मदद करता है।
9. पाचन क्रिया में आसानी से अवशोषित होने के कारण महिलाओं और बच्चों के लिए आयरन का उत्तम स्रोत भी होता है।
10. ऐंटीऑक्सीडेंट तत्व कैंसर के खतरे को कम करता है।

सामान्यतः स्पिरुलिना मनुष्य के लिये पूरी तरह से सुरक्षित खाद्य है। इसका किसी प्रकार का दुष्प्रभाव भी नहीं होता है, फिर भी ऐसे व्यक्ति जिन्हें स्वप्रतिरक्षित रोग हो तथा गर्भवती एवं दुग्धपान करवाने वाली महिलायें इसका सेवन नहीं करना चाहिये।

भारतीय बाजार में स्पिरुलिना

भारतीय बाजार में स्पिरुलिना के विभिन्न प्रकार के खाद्य उत्पाद मिलते हैं, जैसे-स्पिरुलिना का नाश्ता, स्पिरुलिना केक, बिस्कुट, काफी, हरी चाय, मधु, ऊर्जावर्धक पेय, शरबत, स्पिरुलिना सेवई आदि। स्पिरुलिना के उत्पाद बाजार में मिलने वाले इसी प्रकार के अन्य उत्पादों से कई गुना अधिक अच्छा एवं स्वास्थ्यवर्धक होते हैं। प्राकृतिक रूप से सम्पूर्ण भोजन होने के साथ-साथ स्पिरुलिना सभी विटामिन, खनिज और अन्य पोषक तत्वों से भी भरपूर होता है। बाजार में मिलने वाले स्पिरुलिना उत्पादों में भी सारे गुण उपस्थित होते हैं। स्पिरुलिना एवं उससे बनने वाले सभी उत्पाद अपनी विशेष गुणवत्ता के कारण बाजार में आकर्षक और ऊँचे दामों में बेचा जा सकता है।

अशुद्धियों वाले कुछ वाक्य

1.	उसने **भयंकर** गलती की।	(अक्षम्य)
2.	वह **बड़ा** बुद्धिमान है।	(बहुत)
3.	साहित्य और समाज में **घोर** संबंध है।	(घनिष्ठ)
4.	वह समस्या अत्यंत **गहरी** है।	(गंभीर)
5.	वह अपने **भावी** जीवन के प्रति निश्चित है।	(भविष्य)
6.	**अग्रिम** बैठक अगले वर्ष होगी।	(आगामी)
7.	**भयंकर** शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये।	(कठिन)

बोन्साई-प्रकृति से जुड़ने का आकर्षक तरीका

सुभाष चंद्र यादव[1], स्वाति कुमारी[2], मानसी राय शर्मा[3] एवं मनीष मिश्र[4]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

आज के परिवेश में जहाँ शहरों में घर छोटे होते जा रहे हैं और लोग आवासीय फ्लैट कल्चर की ओर बढ़ते जा रहे हैं, ऐसे में अपना बगीचा होना जहाँ आप बागवानी कर सके, यह सबके बस की बात नहीं है। ऐसे में बोन्साई आपको ऐसी सुविधा देता है कि आप अपने मनचाहे पेड़ों की बोन्साई घर की छत पर, बालकनी में या घर अंदर भी लगा सकते हैं। पेड़ों का बोन्साई रूप आजकल विशेष चलन में है। लोगों के बीच यह कौतूहल का विषय भी है कि आखिर बरगद, पीपल, नीम, गुलमोहर और आम के विशाल पेड़ों की बोन्साई कैसे बनाते है? जापानी भाषा में बोन्साई का मतलब 'बौने पौधे' होता है। यह काष्ठीय पौधों को लघु आकार और आकर्षक रूप प्रदान करने की जापानी कला है। बोन्साई शब्द मूल चीनी शब्द 'पेन्जाई' का जापानी उच्चारण है।

इतिहास

यदि हम बोन्साई के इतिहास की बात करें तो चीन में लगभग एक हजार साल पहले इसकी शुरुआत मानी जाती रही है। इसे पुनसाई के नाम से पुकारा जाता था। जापान में इसका प्रवेश जेन बुद्धिज्म के माध्यम से लगभग 12 वीं शताब्दी में हुआ है। 19 वीं शताब्दी के मध्य तक जापान में यह कला अपने चरम पर थी और इसी समय वहाँ पहुँचने वाले विदेशी घुमक्कड़ों के जरिये बोन्साई का प्रचार जापान से बाहर होने लगा। आज विश्व के सभी देशों में बोन्साई का प्रचलन बहुत तेजी से हो रहा है।

प्रक्रिया

पेड़ों के बोन्साई अवतार देखते ही सबसे पहला प्रश्न हमारे मस्तिष्क में आता है कि आखिर वृक्षों का बोन्साईकरण कैसे होता है? वास्तव में, बोन्साई विज्ञान, कला और बागवानी की विधाओं का संगम है। यह थोड़ी मेहनत, थोड़े प्रयास और ज्यादा धैर्य की माँग करता है। नये उगे पौधे को बोन्साई बनाने के लिये कोकोपिट, रेत, बाग की मिट्टी और गोबर की खाद मिलाकर खास भुरभुरे मिश्रण और उथले बर्तन की जरूरत होती है। पेड़ को सघन एवं मनचाहा विशेष आकार का बनाने के लिये उसकी शाखाओं को बढ़ते ही लगातार काटते जाना होगा। जितनी ऊँचाई का बोन्साई आप चाहते हैं उसे प्राप्त कर लेने के बाद उस पर आने वाली नयी कोपलों को काटते जाना चाहिये ताकि वह और ऊँचा न हो बल्कि उसी ऊँचाई पर फैलता जाये और सघन दिखे।

वृक्षों को चयन

बोन्साई बनाने हेतु ज्युनिपर, फाइकस, चीनी एलम, मेपल, ड्वार्फ स्चेफलेरा (अरबोरिका), पाइन, रेड वुड, अजेला, ईव एवं वाइल्ड साइप्रस इत्यादि सर्वोपयुक्त पेड़ है।

गमलों का चयन

बोन्साई हेतु उथले गमलों का प्रयोग किया जाता है। इनकी जड़ों के आसपास मिट्टी कम होती है। वर्गाकार, आयताकार, गोलाकार, अण्डाकार, षट्कोणीय और उथले गमले इनके पौधों के लिये ठीक रहते हैं। गमलों में जल निकास का क्षेत्र बड़ा होना चाहिये।

रिपॉटिंग और जड़ों की कटाई

बोन्साईकरण की प्रक्रिया में पौधों को समय-समय पर नये बर्तन में स्थानान्तरित करना होता है जिसे रिपॉटिंग कहते हैं। यह रिपॉटिंग अलग-अलग पौधों में 6 महीने से लेकर 1 साल, 2 साल, 3 साल या 4 साल तक में की जाती है। रिपॉटिंग की प्रक्रिया में पेड़ की जड़ों की कटाई भी की जाती है और उसे किसी बड़े पात्र में स्थानान्तरित किया जाता है। बड़े पात्र में जड़ें थोड़ा और बढ़ सकती हैं। पेड़ के विकास में जड़ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि भोज्य पदार्थ और पोषक तत्वों के लिये पत्तियों के साथ-साथ जड़ भी अहम भूमिका निभाती है। जड़ में ऐसे रासायनिक तत्व 'सायटोकिनिन' का निर्माण होता है जो काफी हद तक तने की लंबाई को बढ़ने को उत्तेजित करते हैं। इसलिए बोन्साईकरण में शाखाओं को नियंत्रित और व्यवस्थित करने के साथ लगातार जड़ों पर भी काम करना होता है। जब पेड़

[1]वरिष्ठ शोध अध्येता, [2]पीएचडी अध्येता, [3]कनिष्ठ शोध सहायक एवं [4]प्रधान वैज्ञानिक

बढ़ रहा होता है तो उसकी जड़ें भी बढ़ती हैं। ऐसे में उनके पात्र बदलने के दौरान जड़ों की भी छँटाई की जाती है। इस प्रकार जड़ें लंबी होने की बजाय घनी और मांसल होती जाती हैं। वट और पीपल के वृक्ष में इन मांसल जड़ों का कुछ हिस्सा मिट्टी से बाहर उभार देते हैं जो पेड़ के प्राचीन होने का आभास देता है। दोनों सिरों अर्थात जड़ और तने के शिखर को लगातार काटते रहने से तना लंबा होने की बदले चौड़ा और मांसल होता जाता है। जड़ों को छाँट-छाँट कर इतना छोटा करना चाहिये हैं कि उसे एक छोटे और उथले पात्र में लगाया जा सके। उथला बर्तन इसलिए ताकि गहराई में वो मनमाने रूप से नहीं बढ़ सकें।

पौधों को आकार देना

कटाई-छँटाई का मुख्य उद्देश्य पौधे को आकार प्रदान करना होता है। बोन्साई को लकड़ी इत्यादि का सहारा नहीं देना चाहिये। पतली शाखाओं को तांबे या एल्यूमिनियम के तारों के सहारे सुनिश्चित दिशा दी जाती है। शाखाओं के मजबूत होने पर तारों को हटा दिया जाता है।

सिंचाई

बोन्साई के रखरखाव के लिये सिंचाई अत्यंत ही आवश्यक होता है। यदि नियमित रूप से सिंचाई नहीं की जाती है तो बोन्साई के पेड़ सूख जाते हैं। इनको प्रतिदिन नमी की आवश्यकता होती है। गर्मी की दिनों में एक बार या जरूरत पड़ने पर दिन में दो से तीन बार भी सिंचाई की जाती है। सिंचाई हमेशा देर शाम या फिर एकदम सुबह करनी चाहिये।

बोन्साई की शैलियाँ

जापान के बोन्साई विशेषज्ञों के अनुसार बोन्साई को लगभग तेरह तरह से उगाया जा सकता है।

1. **सीधे वृक्षः** इसमें तने सीधे ऊपर की ओर पतले होते हैं। मुख्य तने में चारों ओर की शाखाएँ तने से 90 डिग्री का कोण बनाते हुए ऊपर बढ़ती हैं। चीड़, सिल्वर ओक, फर आदि के लिये यह शैली उपयुक्त है।
2. **दो तने वाले वृक्षः** पौधों में मिट्टी की सतह से ही प्रति वृक्ष के दो तने बढ़ने दिये जाते हैं। तनों की ऊँचाई अलग-अलग होती है। इसे जापानी भाषा में सोकन कहते हैं।
3. **अनेक तने वाले वृक्ष :** एक जड़ से 6 या अधिक तने सीधे ऊपर बढ़ने दिये जाते हैं।
4. **सिनुअस :** अनेक तना विकसित होने दिया जाता है।
5. **तिरछा बोन्साई :** मुख्य तना जमीन से 45 डिग्री के कोण पर झुका हुआ सीधा बढ़ता है।
6. **ब्रूम :** तना सीधा तथा मध्य तने से निकलने वाली दूसरी शाखाएँ केवल दो विपरीत दिशाओं में बढ़ने दी जाती हैं। इससे वृक्ष का रूप पंखे के समान हो जाता है।
7. **खुली जड़ वाले वृक्ष :** तना जमीन की सतह से 90 डिग्री या 45 डिग्री के कोण पर ऊपर की ओर बढ़ता है। साथ ही जड़ें भी मिट्टी के ऊपर बढ़ती हुई दिखायी देती हैं। इस शैली में पौधा लगाते समय उसकी जड़ों को मिट्टी के अंदर ना डालकर ऊपर की ओर खुला रखकर चारों ओर बालू रख देते हैं।
8. **कैस्केड :** इसके मुख्य तने को आधा झुका दिया जाता है। इसे गमले के पैंदे से नीचे तक झुकाया जाता है।
9. **इकाडा वृक्ष :** इसके मुख्य तने को मिट्टी की सतह तक झुकाकर दो-तीन स्थानों पर शाखाओं को विकसित होने दिया जाता है।
10. **विण्ड स्वेप्ट :** वृक्ष भूमि की सतह से 90 डिग्री कोण का निर्माण करता है और साथ ही मुख्य तने से निकलने वाली शाखाओं को एक ही दिशा में बढ़ने दिया जाता है ताकि ऐसा प्रतीत हो कि शाखाएँ वायु के झोंके से प्रभावित हो गयी हैं।
11. **वृक्ष समूह :** एक गमले में अनेक वृक्ष उगाये जाते हैं। इसके लिये चपटे, उथले तथा बड़े गमले प्रयोग में लाये जाते हैं।
12. **लहराता बोन्साई :** एक या दो मुख्य शाखाएँ गमले की मिट्टी की सतह से तिरछी निकली हुई होती हैं।
13. **चट्टानी बोन्साई :** गमले की मिट्टी की सतह पर पुराने पत्थर अथवा चट्टान के टुकड़े रख दिये जाते हैं जिससे कि उन पर वृक्ष की जड़ें फैल जायें।

शोभाकार वृक्षों, झाड़ियों एवं आरोही लताओं द्वारा सौन्दर्यीकरण

सुशील कुमार शुक्ल[1] एवं घनश्याम पाण्डेय[2]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

शोभाकारी वृक्ष (एवेन्यू ट्री) लगाते समय ध्यान देने योग्य बातें

- उपलब्ध स्थान के अनुसार पौधों का चयन किया जाये।
- स्थलाकृति, दिशा, धूप की उपलब्धता एवं अवधि, हवा की दिशा और गति को ध्यान में रखें।
- वृक्षों की बढ़वार की गति के साथ-साथ पूर्ण वृद्धि होने पर उनके आकार, ऊँचाई तथा फैलाव का भी ध्यान रखें।
- समुचित रोपण दूरी, छोटे वृक्षों के बीच भी 5 से 6 मीटर दूरी अवश्य होनी चाहिये।
- मैदानी भागों में अगर सिंचाई का साधन है तो फरवरी-मार्च अथवा मानसून के समय जुलाई-अगस्त में पौध रोपण करें।

गड्ढे तैयार करना

- गर्मी में 1 मीटर गहराई एवं चौड़ाई वाले गड्ढे खोद लें।
- 15 से 20 दिन तक उन्हें धूप में खुला छोड़ दें।
- मिट्टी को तोड़कर सूखने के बाद पीसकर छान लेना चाहिये।
- दो तिहाई मिट्टी में से एक तिहाई में सड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट और 250 से 500 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट या हड्डी का चूरा मिलाना चाहिये।
- खाद एवं उर्वरक मिट्टी में मिलायें और गड्ढों को भर दें। सिंचाई या अच्छी तरह वर्षा होने के बाद ही पौधरोपण करें।
- पौधे की पिंडी के अनुसार लगाते समय गड्ढा बनाकर पौधा लगायें। मिट्टी को अच्छे से दबायें और तुरंत सिंचाई करें।

[1,2]प्रधान वैज्ञानिक

रोपित वृक्षों की देख-रेख

- सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई आवश्यकतानुसार करें।
- आवश्यकतानुसार पौधे के बगल में लकड़ी गाड़कर सीधा बढ़ने के लिये सहारा दें।
- गर्मी में बहुत कोमल पौधों की छप्पर से सुरक्षा करें।
- सर्दी में पाले से बचाव करें।
- जब पौधे बढ़ने लगें तो उन्हें मनचाहा स्वरूप प्रदान करने के लिये वांछित रूप से काट-छाँट करें।
- रोग एवं कीटों से समुचित बचाव तथा नियंत्रण करें।

शोभाकार वृक्ष

(क) **चारदीवारी या पृष्ठभूमि में लगाने हेतु :** बॉटलब्रश, पुत्रजीवा, आस्ट्रेलियन बबूल, कचनार, गुलाबी केसिया, सिल्वरओक, कनक चम्पा, चितवन, अशोक एवं मौलश्री।

(ख) **अकेले लान या किसी अन्य जगह :** अमलतास, लाल केसिया, रबर प्लांट, गुलाचिन, गुलाबी केसिया तथा बॉटलब्रश।

(ग) **बड़े उद्यानों, मार्गों आदि के लिये :** नीली गुलमोहर, लाल गुलमोहर, कमरख, सेल्टिस, काला सिरस, सफेद सिरिस, कनक चम्पा, चितवन तथा फाउंटेन ट्री (स्पैथोडिया)।

शोभाकार झाड़ियों को लगाने के लिये भूमि की तैयारी

- सिंचाई एवं जल निकास का विशेष ध्यान रखें।
- जहाँ सूर्य का प्रकाश उपलब्ध हो।
- पालतू या जंगली जानवरों की समस्या नहीं हो।
- गर्मी में बरसात के पहले 30-40 सेंटीमीटर गहरी खुदाई करें और फिर खुला छोड़ दें।
- 25-30 क्विंटल/1000 वर्ग मीटर के हिसाब से सड़ी गोबर की खाद मिट्टी में डालें।
- रोपण दूरी 2-3 मीटर पौधे के आकार के अनुसार रखें।

लगाने की विधि

- लगाने से पहले पौधों की वृद्धि, फूलते समय पौधों की ऊँचाई, फूलों का रंग तथा पत्तियों का रंग एवं आकृति के बारे में जानना जरूरी है।
- गिरा देने वाली पर्ण झाड़ियाँ जाड़े में अपनी पत्तियाँ गिरा देती हैं। इनको सामने की तरफ नहीं लगाना चाहिये।
- झाड़ियों को बाड़ से 1.5 से 2.0 मीटर दूर लगायें जिससे पानी और पोषण तत्वों के लिये आपस में प्रतियोगिता नहीं हो।
- लंबी वाली सबसे पीछे की तरफ, मध्यम ऊँचाई की बीच में और सामने कि तरफ सबसे कम ऊँचाई वाली झाड़ियाँ ही लगायें।
- पर्णपाती और सदाबहार झाड़ियों के बीच अच्छा सामंजस्य रहे जिससे हर मौसम में फूल उपलब्ध रहें।
- प्रत्येक प्रजाति के पौधे अलग-अलग समूहों में लगाना चाहिये ।
- फूलों के रंगों के अनुसार योजना बनायें।
- पौधे की आकृति और पत्तियों की सुंदरता का भी ध्यान रखें।
- उद्देश्य यह हो कि पूरा समूह सुंदर लगे और हमेशा कोई न कोई फूल आता रहे।
- सदाबहार झाड़ियाँ वर्षा ऋतु में और पर्णपाती झाड़ियाँ फरवरी मार्च में लगाना चाहिये।
- सामान्यत: ऊँची झाड़ियाँ 3 से 5 मीटर, मध्यम ऊँची 2.0-2.5 मीटर और कम ऊँची झाड़ियाँ 1.0-1.5 मीटर की दूरी पर लगायें।

सिंचाई

- रोपाई के तुरंत बाद सिंचाई करें।
- गर्मी में 3-5 दिन एवं सर्दी में 10-15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें।
- सूखाग्रस्त क्षेत्रों या जल की कमी वाले क्षेत्रों में नयी संरक्षण हेतु घास फूस की अवरोध परत (मल्चिंग) का प्रयोग करें।

निराई-गुड़ाई

- समय-समय पर निराई-गुड़ाई कर खरपतवार निकालते रहें। इससे जड़ों की वृद्धि अच्छी होती है। जमीन में वायु का आवागमन अच्छा होता है।
- प्रारंभ में निराई तथा 6 महीने बाद गुड़ाई की आवश्यकता होती है। वर्ष में 4-5 बार गुड़ाई करना जरूरी होता है।

उर्वरक

पौधों की अच्छी वृद्धि के लिये पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इसके लिये निम्नलिखित का 15 किलोग्राम मिश्रण/1000 वर्ग मीटर में डालें।

- यूरिया-4 किलोग्राम,
- सिंगल सुपर फास्फेट-10 किलोग्राम,
- पोटैश-2.5 किलोग्राम को मिलाकर,
- यही मिश्रण वर्ष में दो बार, मई और सितंबर में डालें। उर्वरक डालने के बाद हल्की सिंचाई करना अत्यन्त आवश्यक है।

कटाई-छँटाई

- उचित समय पर झाड़ियों की कटाई-छँटाई करना आवश्यक होता है। पौधों को एक विशेष ऊँचाई तथा आकार देने हेतु कटाई-छँटाई की जाती है।
- रोगग्रस्त तथा सूखी शाखाओं को देखते ही निकाल दें।
- जिनमें नयी शाखाओं पर फूल आते हैं, शीतकाल के अंत में काट-छाँट करें। बसंत में नयी शाखाएँ और फूल आयेंगे।
- जिनमें पुरानी शाखाओं पर फूल आते हैं, उनमें कटाई-छँटाई तब करें, जब फूल खिल चुके हों।
- कटाई-छँटाई हेतु सिकेटियर/हेज शियर/प्रूनिंग नाइफ का प्रयोग करें।
- कटाई-छँटाई के बाद खाद 25-30 क्विंटल/1000 वर्ग मीटर के हिसाब से डालें।

शोभाकारी झाड़ियों का वर्गीकरण

अधिक ऊँचाई वाली-गुड़हल, डुरेंटा, बडेलिया, लैजर्स्ट्रोमिया, कामिनी, प्वाइनसियाना, हिमेलिया, टिकोमा स्टेंस, पीली कनेर तथा एलामैंडा।

मध्यम ऊँचाई वाली-मीनिया, एकेलीफा, क्रोसेंड्रा, रात की रानी, दिन का राजा, मेंहदी तथा इग्जोरा।

कम ऊँचाई वाली-एरेंथिमम, पेडिलेंथस, रसेलिया जंसिया, रसेलिया फ्लोरिबंडा, डेड्लाकैंथस, बार्लेरिया तथा लेंटाना।

लतीय झाड़ियाँ-सफेद चमेली, पीली चमेली, जूही, बोगेनविलिया, अलामैंडा, पेट्रिया वॉलबुलिस तथा माधवीलता।

शोभाकारी लतायें

छायादार स्थानों के लिये-शतावरी, बौगेनविलिया, क्लेरोडेंड्रान स्प्लेंडेंस, जैकमोंटिया तथा लोनीसेरा।

सुगंधित फूल वाली लतायें-जैस्मिनम प्रजाति, लतादार गुलाब, मालती

फूल वाली लतायें-एलामैंडा, एन्टीगोनन, बोगेनविलिया, बिग्नोनिया वेनस्टा, आइपोमिया पामेटा, टिकोमा ग्रैंडिफ्लोरा, पेट्रिया

फाटक पर तोरण आदि हेतु-एलामैंडा, क्लेरोडेंड्रान स्प्लेंडेंस, एंटीगोनन, बिग्नोनिया वेनस्टा, बोगेनविलिया, मालती, टिकोमा ग्रैंडीफ्लोरा

मैदानों और पहाड़ों के लिये लतायें

गर्मी या/और वर्षा में फूल आने वाली	जाड़े में फूलने वाली
एडीनोकालिमा, एलामैंडा, एंटीगोनन लेप्टोपस, एरिस्टोलोकिया, कैम्पसिस, डेरिस स्कैंडेंस, ग्लोरिओसा सुपर्ब, माधवीलता, आइपोमिया पामेटा, सफेद चमेली, लोनीसेरा जैपोनिका, पैसीफ्लोरा (राखी फ्लावर), मालती	ब्यूमोंशिया ग्रैंडीफ्लोरा, बिग्नोनिया वेनस्टा, क्लेरोडेंड्रान स्प्लेंडेंस, जैस्मिनम प्यूबेसेंस (कुंद), पेट्रिया, आरोही गुलाब, थुनबर्जिया

फूलों के रंग के आधार पर लताओं का वर्गीकरण

सफेद-ब्यूमोंशिया ग्रैंडीफ्लोरा, सफेद चमेली, डेरिस स्कॅडेंस (गुलाबी सफेद)।

क्रीम-एरिस्टोलोकिया, माधवी लता, लोनीसेरा।

पीला-एलामेंडा, आइपोमिया ट्यूबरोसा।

हल्का गुलाबी, बैंगनी, गुलाबी-अडीनोकैलिमा, रैम्ब्लर रोज।

गुलाबी-एंटीगोनन लेप्टोपस, मालती, रैम्बलर रोज।

नीला-क्लिटोरिया टरनेशिया, आइपोमिया पामेटा, पेट्रिया।

नारंगी/सिंदूरी-बिग्नोनिया वेनस्टा, क्लेरोडेंड्रान स्प्लेंडेंस (लाल)।

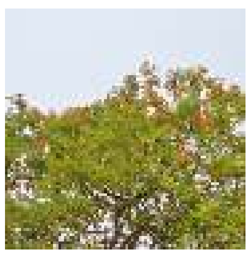

मृदा स्वास्थ्य कार्ड की उपयोगिता

विनोद कुमार सिंह[1], घनश्याम पाण्डेय[2] एवं तरुण अदक[3]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

मृदा पोषक तत्व पौधों के जीवन का आधार होते हैं। पौधों के लिये आवश्यक तत्वों की संतुलित मात्रा गुणवत्तायुक्त उपज के लिये महत्वपूर्ण बिन्दु होती है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड एक ऐसा कार्ड है जिसमें मृदा उत्पादन क्षमता एवं मृदा स्वास्थ्य का विवरण पोषक तत्वों के विश्लेषण उपरान्त लिखा जाता है। मृदा का स्वास्थ्य अच्छा है या नहीं, इसका निर्धारण मृदा विशेषज्ञों द्वारा प्रयोगशाला में मृदा नमूनों के परीक्षण के बाद तय किया जाता है। विश्लेषण से निकले परिणाम के आधार पर कृषकों को मृदा में पर्याप्त आवश्यक खाद, उर्वरक और पोषक तत्वों की मात्रा तथा उनके उपयोग की जानकारी मृदा स्वास्थ्य कार्ड में अंकित की जाती है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड क्यों आवश्यक है?

1. खेती वाली मृदा में आवश्यक पोषक तत्वों की कमी या उनकी अधिकता के कारण निरंतर उत्पादन में कमी की संभावना विद्यमान रहती है। इसकी पूर्ति के लिये पोषक तत्वों को संतुलित मात्रा में प्रयोग किये जाने का सुझाव दिया जाता है।
2. मृदा स्वास्थ्य निरंतर कायम रहे जिससे उपयुक्त मृदा प्रबंधन एवं आदर्श कार्य प्रणालियों का समावेश हो सके। इसके प्रोत्साहन के लिये 3 वर्षों की अवधि के लिये कार्ड बनाया जाता है जिससे इस योजना में कृषि जनसंख्या को अधिक से अधिक शामिल किया जा सके।
3. किसानों के द्वारा फसल विविधिकरण को अपनाने में मृदा स्वास्थ्य कार्ड सहायक हो सकता है। कृषक मिट्टी की उर्वराशक्ति के कारकों को अच्छे ढंग से समझ सकते हैं। इसके माध्यम से नयी-नयी फसलों का चयन किसान कर सकते हैं।
4. यह कृषि में जोखिम तथा घाटा को कम करने में सहायक हो सकता है। इससे उत्पादन लागत में कमी आने के साथ-साथ किसानों की आर्थिक दशा में सुधार होगा।
5. जिंक, बोरॉन, सल्फर आदि पोषक तत्वों की कमी का मृदा विश्लेषण कर उन्हें संतुलित किया जा सकता है। ये तत्व खाद्यान उत्पादन बढ़ाने में एक सीमित तत्व बन चुके हैं। मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना द्वारा उपरोक्त समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। सरकार इस योजना के माध्यम से सम्पूर्ण भारत के 14 करोड़ से अधिक किसानों को जोड़कर उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में योजना का लाभ उपलब्ध कराना चाहती है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना फरवरी, 2015 में भारत सरकार द्वारा प्रारंभ की गयी जिससे किसानों की मिट्टी की गुणवत्ता का अध्ययन कर अधिक फसल उत्पादन प्राप्त करने में सहायता मिल सके। फसल उत्पादन क्षमता मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों पर निर्भर करती है। कृषकों द्वारा गलत फसलों का चयन एवं असंतुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करना, मृदा उत्पादन क्षमता को प्रभावित करने के साथ-साथ उर्वरता को कम करता है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना की विशेषताएँ

1. मृदा स्वास्थ्य कार्ड के रूप में कृषक को रिर्पोट दी जाती है जिसमें फसल हेतु मिट्टी की पूरी जानकारी हो।
2. एक खेत के लिये 3 वर्षो में एक मृदा स्वास्थ्य कार्ड दिया जाता है।
3. इस योजना के अन्तर्गत अधिक से अधिक किसानों को जोड़ना है।
4. देश के सभी भागों को योजना में शामिल किया गया।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के तत्व

मृदा के नमूनों के विश्लेषण के उपरान्त आँकड़ों के आधार पर मृदा स्वास्थ्य कार्ड रिर्पोट तैयार की जायेगी जिसमें निम्नलिखित तत्व होंगे।

1. मृदा का स्वास्थ्य स्तर,
2. मृदा की उत्पादन विशेषताएँ,

[1]मुख्य तकनीकी अधिकारी, [2]प्रधान वैज्ञानिक एवं [3]वैज्ञानिक

3. मृदा में पोषक तत्वों का स्तर,
4. मृदा के विशेष गुणों को भी शामिल किया जायेगा एवं
5. मृदा के सुधार हेतु उपाय एवं सुझावों को अंकित किया जायेगा जिससे कृषक अपनी मृदा की कमियों को सुधार सकेंगे।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के लाभ

1. किसानों की मिट्टी का पूरी तरह विश्लेषण कर रिपोर्ट में भी अंकित किया जायेगा। इससे कृषक फसल का चयन सुनिश्चित कर सकेंगे।
2. मिट्टी की जाँच नियमित रूप से करने पर मृदा को स्वस्थ रखने में सहायता मिलेगी और किसान मृदा पोषक तत्व प्रबंधन के तरीके का मूल्यांकन कर सकेंगे।
3. समस्याग्रस्त मृदाओं की अम्लीयता/क्षारीयता की जाँच की जाती है। मिट्टी में परिर्वतन की दशा में समुचित उपायों का सुझाव दिया जाता है।
4. कृषकों को अधिक एवं गुणवत्तायुक्त उत्पादन प्राप्त करने में विशेषज्ञ द्वारा सुधारात्मक उपाय देने के साथ-साथ मृदा उर्वराशक्ति बनाये रखने में सहायक होता है।
5. मृदा में व्याप्त कमी को कार्ड दर्शायेगा जिससे किसान फसल विशेष में पोषक तत्वों का प्रयोग कर सकेंगे।
6. एक सीमित समय की अवधि में ही किसान को कार्ड मिल सके जिससे अधिक उत्पादन हेतु कदम उठाये जा सकें।
7. मृदा विश्लेषण के आधार पर फसल की आवश्यकतानुसार खाद एवं उर्वरकों के प्रयोग हेतु सुझाव देना।

मृदा स्वास्थ्य योजना की कार्यप्रणाली

1. मृदा जाँच हेतु सबसे पहले एक कृषि अधिकारी कृषक के खेत से मृदा नमूने एकत्र कर एक बैग में भरते हैं।
2. इसके बाद एकत्र नमूनों को परीक्षण हेतु प्रयोगशाला में भेजा जाता है।
3. मृदा विशेषज्ञ मृदा की जाँच करते हैं और मृदा की पूरी जानकारी की जाती है।
4. इसके बाद विशेषज्ञ मृदा विश्लेषण के आधार पर रिर्पोट तैयार करते हैं कि कौन-कौन से पोषक तत्वों की मिट्टी में कमी या आधिक्य है। इनका आकलन कर सुझावों को अंकित किया जाता है।
5. इसके बाद मृदा स्वास्थ्य कार्ड को किसान के घर पहुँचाया जाता है।

मृदा परीक्षण द्वारा फसल के लिये पोषक तत्वों का समुचित प्रबंध करने में सहायता मिलती है। फसलों की अच्छी गुणवत्तायुक्त उपज तथा फल वृक्षारोपण में मृदा परीक्षण विशेष उपयोगी है। मृदा परीक्षण के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं।

1. मृदा में उत्पन्न होने वाले विकारों को जान कर उनको सुधारने के लिये सुझाव देना।
2. मृदा की उर्वराशक्ति को ज्ञात करना जिससे आवश्यकतानुसार खाद एवं उर्वरकों की मात्रा का प्रयोग किया जा सके।
3. मृदा उर्वरता के स्तर पर होने वाले परिर्वतन का अध्ययन करना।
4. उर्वरकों के प्रयोग से होने वाली अतिरिक्त उपज एवं लागत तथा अर्थिक लाभ का आकलन करना।

मिट्टी की रासायनिक जाँच एक प्रक्रिया है जिसे मृदा परीक्षण कहा जाता है। वर्तमान समय में किसानों द्वारा रासायनिक उर्वरकों का असंतुलित मात्रा में प्रयोग करने से मृदा की उर्वराशक्ति का ह्रास होता है तथा मृदा अनुपजाऊ होती जा रही है। मृदा में न केवल मुख्य तत्वों बल्कि सूक्ष्म तत्वों का असंतुलन धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। सभी पोषक तत्व, सभी फसलों के लिये आवश्यक होते हैं। लेकिन विभिन्न फसलों एवं मृदाओं से उनकी आवश्यकता अलग-अलग मात्राओं में होती है। यदि मृदा में किसी एक तत्व की कमी होगी तो उसका प्रभाव अन्य पोषक तत्वों के अवशोषण और उपयोग पर पड़ता है। परिणामस्वरूप, उत्पादन में कमी तथा गुणवत्ता में गिरावट आती है।

मृदा नमूना लेने की विधि

मृदा परीक्षण का पूरा लाभ लेने के लिये सही एवं उचित नमूना लेना आवश्यक है। इसके लिये सर्वप्रथम पूरे खेत को ढलान, मृदा रंग, आकार तथा फसल के अनुसार उचित भागों में बाँट लेते हैं। खेत के प्रत्येक भाग लगभग समान रूप से 0.4 हेक्टेयर से अधिक नहीं हों। इसमें से 15-20 स्थानों से ऊपरी परत से 15 सेंटीमीटर गहराई से एक वर्षीय फसलों की खेती एवं बागवानी के लिए 30 सेंटीमीटर गहराई से नमूना लेना उचित होगा। उपयुक्त नमी की स्थिति मे खुरपा, फावड़ा और वर्मा (आगर) आदि का प्रयोग करें। फल वृक्ष लगाने हेतु 0-25 सेंटीमीटर, 25-50 सेंटीमीटर एवं 50-75 सेंटीमीटर गहराई के नमूने लेने चाहिये। सभी स्थानों से ली गयी मृदा एक साफ स्थान पर रख कर अच्छी तरह से मिला लें। इसके बाद इस ढ़ेर को फैला कर चार भागों में बाँट कर आमने-सामने के दो भागों को हटा दें तथा शेष दो भागों को पुनः मिलाकर चार भागों में बाँट दें। इस प्रकार पूरी मात्रा को घटाते हुए अंत में 500 ग्राम भाग किसी साफ थैली में भर कर उस पर किसान का नाम, पता, नमूने का पहचान चिह्न लिखकर लगा दें। एक ऐसा ही लेबल थैली के अन्दर रख दें। यदि मृदा में अधिक नमी है तो अन्दर लेबल लिखने के लिये पेंसिल का प्रयोग करें। मृदा सूक्ष्म तत्वों के परीक्षण हेतु मृदा नमूने लेने के लिए प्लास्टिक अथवा लकड़ी की पट्टी की सहायता लेनी चाहिये जिससे नमूना धातु के संपर्क में नहीं आ पाये। जंग लगे औजारों का प्रयोग किसी भी दशा में नहीं करना चाहिये।

मृदा नमूना लेते समय सावधानियाँ

1. नमूना उस स्थान से नहीं लें जहाँ खाद का ढेर, मेड़ या सिंचाई की नाली रही हों।
2. नमूनों की थैली को उर्वरकों के बोरे के संपर्क में नहीं आने दें।
3. यदि खेत में उसरीली पट्टियाँ हों तो उन पट्टियों और सामान्य खेत का अलग-अलग नमूना लें।
4. खेतों से नमूना फसल बोआई के एक माह पूर्व तथा फसल काटने के उपरान्त एकत्र करें।
5. अधिक नमी वाले नमूनों को छाया में सूखा कर ही साफ थैली में भरें।

प्रयोगशाला में मृदा परीक्षण

मृदा उर्वरता की जाँच में पी.एच. मान, विद्युत चालकता, उपलबध नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश और सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा का पता लगाया जाता है। जैविक कार्बन की मात्रा को मृदा की उवर्राशक्ति का प्रतीक माना जाता है। इसको नाइट्रोजन का श्रोत भी माना जाता है। उर्वरको की संस्तुति के लिये ये सभी परीक्षण आवश्यक हैं। पोषक तत्वों की मृदा में उपलब्ध आदर्श-न्यूनतम निर्णायक सीमा आधार होती है। न्यूनतम-निर्णायक सीमा का अर्थ है तत्व विशेष की उपलब्धता आदर्श सीमा से कम होने की दशा में उर्वरक का प्रयोग आवश्यक रूप से करना चाहिये। इससे उपज पर इसका सीधा प्रभाव होता है।

मृदा परीक्षण के द्वारा फसल विशेष के लिये आवश्यक पोषक तत्वों की संस्तुति की संतुलित मात्रा को खेत में डालने की सलाह दी जाती है। पोषक तत्वों का संतुलित प्रयोग करने के लिये फसल के आधार पर समय-समय पर मृदा की जाँच करानी आवश्यक है। मृदा की उच्च उर्वरता स्तर बनी रहे एवं उसका ह्रास न हो, यह एक स्वस्थ मृदा की पहचान है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड जारी करने के लिये मृदा परीक्षण आवश्यक होता है जिससे अधिक उत्पादन और लागत को कम किया जा सके।

मातृवत परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत।
आत्मवत सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पंडितः।।

अर्थ : जो दूसरी स्त्रियों को माता के समान, दूसरे के धन को पत्थर के समान, सभी प्राणियों को स्वयं की भाँति मानता है, वही ज्ञानी है।

बागवानी के लिये मृदा गठन एवं संरचना का महत्व

घनश्याम पाण्डेय[1], तरुण अदक[2] एवं विनोद कुमार सिंह[3]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

मृदा के भौतिक गुण, मृदा के उपयोग और पौधों की वृद्धि को सीधे तौर पर प्रभावित करते हैं। ये पौधों की जड़ों को मृदा के अंदर प्रवेश कराने का मृख्य साधन हैं जो जल निकास, मृदा वायु एवं नमी को धारण करती है। पौधों में पोषक तत्वों की उपलब्धता भी इन गुणों पर निर्भर करती है। मृदा के भौतिक गुण, मृदा के रासायनिक एवं जैविक गुणों भी प्रभावित करते हैं। मृदा के भौतिक गुणों का कणों की मात्रा, आकृति, आकार, खनिजों के संगठन, कार्बनिक पदार्थ की मात्रा, मृदा नमी आदि से सीधा संबंध है।

मृदा में पाये जाने वाले विभिन्न आकार के कणों के सापेक्ष अनुपात को मृदा गठन कहते हैं। तीन मृदा वर्ग कणों, बालू, सिल्ट एवं क्ले के अनुपात के आधार पर ही मृदा नाम दिया जाता है।

मृदा कणों का वर्गीकरण

क्रमांक	कण समूहों का नाम	कणों का व्यास (मि.मी.)
1.	बहुत मोटी रेत	2.00 -1.00
2.	मोटी रेत	1.0-0.5
3.	मध्यम रेत	0.5-0.25
4.	महीन रेत	0.25-0.20
5.	अतिमहीन रेत	0.1-0.05
6.	सिल्ट	0.05-0.002
7.	क्ले (मृतिका)	0.002 से कम

रेत

कण बड़े आकार होने के कारण अधिक टिकते हैं। रेत में क्वार्ट्ज की प्रधानता होती है। इसकी जलधारण क्षमता बहुत कम होती है क्योंकि इसके कणों के बीच बड़े आकार वाले छिद्र होते हैं जिनसे होकर पानी नीचे चला जाता है। इसके साथ मृदा पोषक तत्वों का भी ह्रास होता है तथा उनकी उपलब्धता भी पौधों को कम हो पाती है।

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]वैज्ञानिक एवं [3]मुख्य तकनीकी अधिकारी

सिल्ट

सिल्ट के कणों का व्यास 0.05 से 0.002 मिलीमीटर होता है। रेत की अपेक्षा इसमें केशीय रन्ध्र अधिक होते हैं। इसमें वायु और जल संचार उचित रूप से होता है। जब सिल्ट में क्ले और कार्बनिक पदार्थों की मात्रा उचित होती है तो मृदा की बनावट उत्तम मानी जाती है और मृदा उर्वरता अधिक होती है।

क्ले

मृदा के सबसे बड़े कण (0.002 मिलीमीटर) के होते हैं। इन क्ले कणों पर ऋणात्मक आवेश होता है। जल शोषण कर फूल जाते हैं और सूख जाने पर फिर सिकुड़ जाते हैं। इनमें पुनः जल मिलाने पर फूल जाते हैं तथा ऊष्मा को क्लेदन ऊष्मा कहते हैं। क्ले की जल गैसों एवं विलेय लवणों के प्रति अधिशोषण क्षमता अधिक होती है। इनकी धनायन विनिमय क्षमता अधिक होती है।

मृदा वर्ग का निर्धारण

1. बालू - जब मृदा नमूने अँगुलियों पर धब्बे नहीं डालते हैं, किन्तु भीगने पर तरल पदार्थ बनता है और छूने पर अधिक कण मय प्रतीत हो, तो वह बालू है।

2. दोमट बालू - यदि अंगुलियों पर धब्बे पैदा नहीं होते तथा गोलियां बनायी जा सकती हैं, जो सरलता से चूरचूर हो जाती है, छूने पर किरकिरी लगती है, तो वह दोमट बालू है।

3. दोमट - यदि मृदा नमूना का कठोर गोला बनाकर बेलन में परिवर्तित किया जा सकता है, जो धीरे-धीरे मोड़ने पर नहीं टूटता है और चिपचिपापन का संकेत नहीं मिलता है, तो वह दोमट मृदा है।

4. सिल्ट दोमट - यह दोमट मृदा के समान गुण रेशमी अनुभूति होती है, तो वह मृदा सिल्ट दोमट कहलाती है।

5. सिल्टी - यदि मृदा नमूनों में स्पष्ट रूप से मक्खनीय स्पर्श अनुभव होता है और सभी गुण सिल्ट दोमट के समान हैं, तो वह सिल्टी है।

6. क्ले - यदि मिट्टी स्पर्श करने पर अधिक चिपचिपी लगें, अगुलियों पर धब्बे डालें, जिसकी गोलियाँ बन सकती हों और सूखने पर गोलियाँ आसानी से न टूटती हों, इस प्रकार की गुणों वाली मिट्टी क्ले होती हैं।

महत्व

1. मृदा कणाकार उचित मात्रा में होने पर मृदा की जलधारण क्षमता और मृदा वायु संचार, तापमान अच्छा रहता है। इससे पौधों को जल उपलब्धता के साथ-साथ जड़ों का विकास अच्छा होता हैं, पौधे स्वस्थ होते हैं।
2. मृदा गठन अच्छा होने पर लाभदायक जीवाणु मृदा में अच्छा कार्य करते हैं जिनके कारण घुलनशील पोषक तत्वों की उपलब्धता पौधों के लिये बढ़ जाती है।
3. मोटी गठन वाली मृदाओं में जल निकास अच्छा, अधिक लींचिग और जलधारण क्षमता कम होती है। पौधों के लिये जल की आवश्यकता बहुत अधिक होती है।

मृदा संरचना

मृदा अनेक कणों से मिलकर बनती है। ये दो प्रकार के होते हैं।

1. **प्राथमिक कण**-जैसे बालू, सिल्ट और क्ले।
2. **द्वितीयक कण**-जो प्राथमिक कणों के पारस्परिक संयोग से बनते हैं।

मृदा में ये कण अनेक प्रकार से व्यवस्थित होते हैं। मृदा में कणों की व्यवस्था को मृदा संरचना कहते हैं।

मृदा संरचना के प्रकार

मृदा के प्राथमिक कणों तथा कण पुंजों के आकार, आकृति, गुण तथा व्यवस्था के आधार पर संरचना को चार मुख्य भागों मे बाँटा जा सकता है।

1. **प्लेट की तरह मृदा संरचना** - कण पुंजों के क्षैतिज अक्ष की उर्ध्वाधर अक्ष की अपेक्षा अधिक विकसित होती है जिसके कारण प्लेट की तरह संरचना बनती है। इस प्रकार की संरचना नम प्रदेशों की मृदाओं के 'ए' संस्तरों में पायी जाती है। इस प्रकार की मृदा संरचना स्वतंत्र जल निकास में बाधक होती है। इससे पौधों की जड़ों का समुचित विकास नहीं हो पाता है जिससे पौधों की बढ़वार प्रभावित होती है।
2. **प्रिज्मीय मृदा संरचना** - इस प्रकार की संरचना में फलकुंजो का ऊर्ध्वाधर अक्ष क्षैतिज अक्ष की अपेक्षा बड़ा होता है। इससे प्रत्येक कण अपने पास के चार कणों को स्पर्श करते हुए स्तंभ बनाते हैं। इस प्रकार की संरचना शुष्क और अर्धशुष्क मृदाओं के 'बी' संस्तरों में मिलती है। इसमें कण समूहों का आकार 10-100 मिलीमीटर तक होता है।
3. **ब्लाकी मृदा संरचना** - इसे घनाकार संरचना भी कहते हैं। इसमें तीनो शिराएँ लगभग बराबर होती हैं और पेड़ घन की तरह समतल या गोलाकार सतहों के होते हैं। इस प्रकार की संरचना 'बी' संस्तरों में पायी जाती है।
4. **गोलाकार मृदा संरचना** - इसमें बहुत सारे कणों की अक्षों की लंबाई समान होती हैं। यह संरचना मृदा की ऊपरी सतह मे पायी जाती है।

मृदा संरचना को प्रभावित करने वाले कारक - मृदा संरचना को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित कारक हैं।

1. जलवायु, 2. कार्बनिक पदार्थ, 3. जड़ों का प्रभाव 4. फसलों का प्रभाव, 5. सस्य क्रियाओं का प्रभाव, 6. खाद एव उर्वरकों का प्रभाव, 7. जल निकास का प्रभाव, 8. मृदा क्षरण का प्रभाव, 9. सिंचाई का प्रभाव।

बागवानी में मृदा संरचना का महत्व

पौधों के लिये भोजन पदार्थों के अतिरिक्त ऊष्मा प्रकाश, जल, वायु तथा यांत्रिक सहारा की आवश्यकता होती है। इनमें से ऊष्मा सूर्य के प्रकाश से, ऑक्सीजन एवं कार्बन डाईऑक्साइड वायुमण्डल से प्राप्त होती है। वायु, जल, यान्त्रिक सहारा और कुछ अंश तक ऊष्मा भी मृदा के द्वारा पौधों को मिलती है। जब तक मृदा संरचना उपरोक्त आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये उपयुक्त नहीं होगी, पौधों का उत्पादन असफल रहेगा। अच्छी उपज के लिये मृदा में जल और वायु का उचित अनुपात होना चाहिये जो मृदा संरचना पर आधारित है। मृदा संरचना ही मृदा में जल एवं वायु का अनुपात निर्धारित और नियंत्रित करता है। मृदा संरचना के ही ऊपर मृदा संस्थ्रता, मृदा में जल संचालकता,

जल धारण तथा गैसों का विसरण आदि गुण आधारित होने के साथ–साथ परस्पर संबंधित हैं। प्रचुर मात्रा में खाद्य प्रदार्थ मृदा में होते हुए भी यदि मृदा संरचना अनुकूल नहीं है तो अच्छी फसल नहीं मिल सकती। सस्य क्रियाएँ करने में आसानी भी संरचना पर आधारित होती है जिन मृदाओं में स्थायी कम्ब संरचना होती है उनमें कम कटाव होता है। जिन मृदाओं में अस्थायी संरचना होती है, उनमें मृदा कटाव अधिक होता है। मृदा संरचना का स्थायी होना आवश्यक एवं अनिवार्य है क्योंकि ऐसी संरचना ही मृदा उर्वरता की कुंजी है। पौधों की वृद्धि के लिये मृदा की संस्थ्रता, समुचन और जल एवं वायु की मृदा में पारगम्यता को बढ़ाना है। इसमें सुधार होने से पौधों की जड़ें मिट्टी की गहराई तक प्रवेश पाने से पौधों की अच्छी बढ़वार होती है।

मृदा में कार्बनिक पदार्थों में विभिन्न प्रकार के पदार्थों का समावेश होता है जिनको सूक्ष्म जीवों द्वारा विच्छेदित करने के उपरान्त पौधों द्वारा प्राप्त किया जाता है। कार्बन सभी कार्बनिक पदार्थ का एक मुख्य अवयव है मृदा में उपस्थित सभी प्रकार के जीव अपनी आवश्यक ऊर्जा का अधिकांश भाग कार्बन के ऑक्सीकरण से प्राप्त करते हैं। मृदा के अन्दर तथा मृदा के बाहर होने वाले विभिन्न परिवर्तनों को सामूहिक रूप से कार्बन चक्र कहते हैं जिसका सीधा संबंध मृदा के भौतिक गुणों से होता है। जीवांश पदार्थ बलुई मृदा के महीन कणों को बाँधकर बड़े–बड़े कणों में बदलता है जिससे हवा के द्वारा कम नमी की दशा में मृदा के कणों का नष्ट होना कम हो जाता है। कार्बनिक पदार्थ मृदा के तल पर बिछावन के रूप में कार्य करता है और मृदा के ताप को नियंत्रित रखता है। कार्बनिक पदार्थ मृदा को गर्मियों में ठंडा एवं सर्दियों में गर्म रखता है जो पौधों की जड़ों की वृद्धि के लिये लाभदायक होता है।

'रश्मिरथी'

'दो न्याय अगर तो आधा दो, पर, इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पाँच ग्राम, रक्खो अपनी धरती तमाम।
हम वहीं खुशी से खायेंगे, परिजन पर असि न उठायेंगे।

दुर्योधन वह भी दे ना सका, आशिष समाज की ले न सका,
उलटे, हरि को बाँधने चला, जो था असाध्य, साधने चला।
जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है।

हरि ने भीषण हुंकार किया, अपना स्वरूप–विस्तार किया,
डगमग–डगमग दिग्गज डोले, भगवान् कुपित होकर बोले–
'जंजीर बढ़ा कर साध मुझे, हाँ, हाँ दुर्योधन! बाँध मुझे।

यह देख, गगन मुझमें लय है, यह देख, पवन मुझमें लय है,
मुझमें विलीन झंकार सकल, मुझमें लय है संसार सकल।
अमरत्व फूलता है मुझमें, संहार झूलता है मुझमें।

–रामधारी सिंह 'दिनकर'

बागवानी फसलों पर अजैव कारकों का प्रभाव और जीन अभिव्यक्ति

यशी बाजपेई[1], मुत्थुकुमार एम.[2] एवं अंजू बाजपेई[3]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

ग्लोबल वार्मिंग सहित अनेक पर्यावरणीय कारक पूरी दुनिया में पौधों की वृद्धि और उत्पादकता को प्रभावित कर रहे हैं। एफ.ए.ओ. के वर्ल्ड सॉयल रिसोर्सेज रिपोर्ट (2000) के अनुसार विश्व में सूखे, ठंडे और लवणता से प्रभावित भूमि क्षेत्र क्रमशः 64 प्रतिशत, 57 प्रतिशत और 6 प्रतिशत हैं। इन सभी प्रतिकूल पर्यावरणीय कारकों के कारण प्रमुख फसलों की उपज क्षमता अनुमानतः दो-तिहाई रह गयी है (चित्र 1)। दूसरी ओर, 2050 तक दुनिया की आबादी 10 अरब तक पहुँचने का अनुमान है जिससे गंभीर खाद्यान्न की कमी हो सकती है। अतः फसल पौधों पर अजैव कारकों की प्रभावी प्रतिक्रियाओं को समझना कृषि अनुसंधान का एक महत्त्वपूर्ण पहलू बन गया है जिससे खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके। चूँकि पौधे गत्यात्मक वातावरण में विकसित होते हैं, उन्हें पर्यावरण के अनेक अजैव और जैविक कारकों से निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। अजैव तनाव में पर्यावरणीय कारक हवा, तापमान, पानी आदि मुख्य रूप से शामिल हैं और शोध के अनुसार पौधों के पर्यावरणीय और जैविक तनाव से औसत उपज 50 प्रतिशत तक कम हो सकती है।

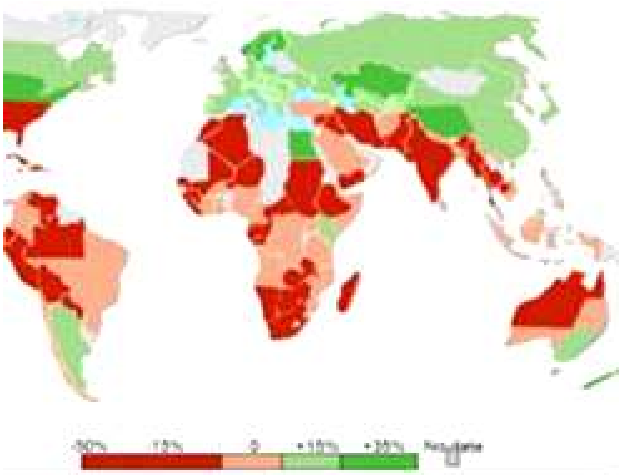

चित्र 1: ग्लोबल वार्मिंग के कारण फसल उत्पादकता में बदलाव (पर्यावरण नीति के लिये बार्ड केंद्र)

चित्र 2: पर्यावरणीय परिवर्तन के प्रभाव से पौधों की विस्तृत प्रतिक्रियाएँ

पौधों में संरचनात्मक और जैव रासायनिक परिवर्तन

जब भी पर्यावरण में तनाव पैदा होता है, पौधों में विभिन्न संकेतों के संगठित जटिल नेटवर्क और सेलुलर गतिविधियों का पूरा संयंत्र जैव रासायनिक और शारीरिक प्रतिक्रियाओं की रक्षा के लिये उत्प्रेरित होता है (चित्र 2)। तापमान का सीमाओं के ऊपर जाना, पानी की घटती आपूर्ति और खराब मिट्टी की स्थिति जैसे पर्यावरणीय प्रभावों से कृषि और खाद्य सुरक्षा के लिये बड़ा दबाव पड़ता है। पौधे बहुत कम पानी (सूखा), बहुत अधिक नमक (लवणता) और अत्यधिक तापमान सहित विभिन्न पर्यावरणीय तनावों का अनुभव करते हैं। इन अजैव तनावों के लिये सहिष्णुता या संवेदनशीलता एक बहुत ही जटिल घटनाक्रम है, क्योंकि पौधों के विकास के अनेक चरणों में तनाव हो सकता है और अक्सर एक से अधिक तनाव एक साथ पौधों को प्रभावित करते हैं। फलस्वरूप, पौधे अजैव तनाव के अनुभव से उचित प्रतिक्रियाएँ द्वारा चयापचय, वृद्धि और विकास में परिवर्तन द्वारा इसका सामना करते हैं जिसमें शारीरिक, जैव रासायनिक और आणविक प्रक्रियाओं के एकीकृत प्रयास महत्वपूर्ण हैं। सूखे की वजह से प्रकाश-संश्लेषण में गिरावट, पौधों की प्रक्रियाओं पर असामयिक तनाव ग्रस्त बाधाएँ और मिट्टी के सूखने पर पोषक तत्व की उपलब्धता में कमी और आयन विषाक्तता, इन सभी कारणों से पौधों की वृद्धि सीमित है। चिलिंग (इष्टतम से नीचे का तापमान लेकिन फ्रीजिंग से ऊपर) भी उपापचय पर उनके प्रत्यक्ष

[1]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, [2]वैज्ञानिक एवं [3]प्रधान वैज्ञानिक

प्रभाव के अतिरिक्त ओसमोटिक तनाव पैदा कर सकते हैं। इसलिए, असामयिक तनाव से जुड़े ऑक्सीडेटिव तनाव सूखा, लवणता और कम तापमान के सामान्य परिणाम हैं। पौधों की प्रजातियों की विविधता के बावजूद, वनस्पति संरचनात्मक स्तर पर एक सामान्य 'तनाव-प्रेरित' प्रतिक्रिया पायी गयी है जिसमें मुख्य रूप से तीन घटक शामिल हैं। कोशिका विस्तार की रोकथाम, स्थानीय कोशिका विभाजन में तेजी और कोशिका भेदभाव की स्थिति में बदलाव। इसके परिणामस्वरूप, मूल पौधों के अंगों जैसे जड़ें, जाइलेम और पत्ते की संरचनात्मक विशेषताओं में परिवर्तन प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में अनुकूलन में योगदान करते हैं। उदाहरणस्वरूप, क्यूटिकल में अधिक मोम का जमाव, पत्ती में स्टोमेटा की संख्या का कम होना, ट्राइकोम की उपस्थिति तथा पत्तियों के आकार का घटना, मोटी क्यूटिकल का बनना, स्पाइन आदि।

फलदार वृक्षों पर अजैव कारकों का प्रभाव

चीन के बाद भारत फलों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है जिसके 6.46 मिलियन हेक्टेयर (उद्यानिकी डाटा, 2016) क्षेत्र से 92.84 मिलियन टन फल का उत्पादन होता है। भारत में फलों की एक विशाल विविधता पायी जाती है जिसमें आम, केला, नीबू वर्गीय, अमरूद, अंगूर, पपीता, लीची, अनानास और सेब प्रमुख हैं। अजैव तनाव से बागवानी फसलों की उत्पादकता पर बुरा प्रभाव पड़ने की संभावना होती है। बदलते हुए पर्यावरण से जलवायु में 1.40 से 5.80 तक वृद्धि हुई है तथा वायुमंडलीय कार्बन-डाईऑक्साइड एवं वर्षा पैटर्न में भी महत्वपूर्ण बदलाव आया है। तापमान में वृद्धि के कारण, फसलें समय से पहले परिपक्व हो कर जाती हैं और उनकी उत्पादका भी कम रह जाती है। उदाहरण के लिये, ये संतरा, अंगूर, खरबूजे आदि लगभग 15 दिनों से पहले ही परिपक्व हो जाते हैं। नीबू और स्ट्रॉबेरी में मानसून का देरी से आना, कम वर्षा होना तथा तापमान का संतुलित न होना कम उत्पादकता के सर्वाधिक प्रमुख कारक पाये गये हैं। उच्च तापमान और बाढ़/जल भराव ने केला की खेती को भी क्षतिग्रस्त किया है। परिणामस्वरूप, इन फलों की पैदावार कम हो गयी है। उच्च तापमान और नमी तनाव से सेब, एप्रीकौट और चेरी में सनबर्न और क्रैकिंग का बढ़ना, लीची का समय से पहले टूट जाना तथा आम में झुमका रोग आदि समस्याएँ बागवान अनुभव कर रहे हैं। वायु प्रदूषण के कारण अनेक बागवानी फसलों की पैदावार कम हो गयी है और इसका मुख्य उदाहरण है सल्फर डाईऑक्साइड, इथायलीन, कार्बन मोनोऑक्साइड और फ्लोराइड जैसी गैसों से उत्पन्न होने वाले धुएँ से आम की टिप का काला पड़ जाना। इसी प्रकार अत्यधिक ठंड से शाखाओं में विकृति की समस्या प्रमुख है। इसके अतिरिक्त शीत से आम के पुष्पन की समस्या बढ़ रही है। अतिवृष्टि और जलभराव के कारण अनेक वृक्ष उकठा रोग की समस्या से जूझ रहे हैं।

अजैव तनाव में जीन की भूमिका

भारतीय कृषि आज भी वर्षा पर आश्रित है तथा वर्षा के अभाव में सिंचाई में अधिक मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये, 1 एकड़ मक्का के उत्पादन में लगभग 594,000 गैलन पानी लगता है। अत: सीमित पानी कि आपूर्ति को दूर करने के लिये पौधों ने विभिन्न रक्षात्मक प्रतिक्रिया (डिफेन्स मेकेनिस्म) को विकसित किया हैं। उदाहरण के लिये, तनाव-संकेत पारगमन (स्ट्रैस सिगनल-ट्रांस्डकसन) स्ट्रैस रिसपोनसिव जीन को जन्म देता है जिससे विभिन्न शारीरिक और उपापचय प्रतिक्रियाएँ सामान्य रूप से चलती हैं। यह प्रक्रिया ही पौधों को तनाव की अवस्था में भी जीवित रहने में मदद करती है। अजैव तनाव प्रतिक्रियाओं में शामिल जीन और ट्रांसक्रिप्शन फैक्टर पर शोध द्वारा चिह्नित कुछ उदाहरण तालिका 1 में प्रस्तुत हैं।

तालिका 1: तनाव के लिए जिम्मेदार जीन और ट्रांसक्रिप्शन फैक्टर

क्र.सं.	जीन	फसल	सहिष्णुता का प्रकार
1.	ए.टी.ड्रेप1ए	अरैबिदोप्सिस थैलियाना, चावल, तंबाकू	सूखे, लवणता
2.	कैप-2	नींबू	लवणता
3.	5-पायरोलीन कार्बोक्सीलेट सिंथेसा	गाजर, अरैबिदोप्सिस थैलियाना, सोयाबीन	सूखे, लवणता
4.	4-एक्वापोरिंन	संतरा, केला, अंगूर	सूखे

5.	एस.यू.बी.1	चावल	जलमग्न
6.	एच.एस.पी.	टमाटर और अन्य फसल	संरक्षक प्रोटीन
7.	कोर	अरैबिदोप्सिस थैलियाना	शीत
8.	डब्ल्यू.सी.एच. 120	सभी अनाज	तापमान
9.	लीया, बी.एच. एल.एच.बी. जेड.आई.पी.	चावल	तापमान
10.	मैप के	चावल	सभी तनावों
11.	वाली 1 और 5	गेहूँ	सभी अजैव तनाव
12.	टी(एफ.टी.)	लीची	शीत
13.	ए.टी.जी.3	सेब	सभी अजैव तनाव
14.	पी.आई.पी.	अंगूर	सूखा
15.	एस.एस.आर.	चावल, बीन और अन्य फसल	सूखा, तापमान और अन्य

वर्तमान जलवायु परिदृश्य में कृषि के सशक्त कदम

देश के विभिन्न कृषि-पारिस्थितिकी के लिये तनाव सहिष्णु किस्मों की पहचान करना, अधिक भोजन की माँग को पूरा करने के लिये उत्पादकता बढ़ाने के लिये प्रमुख चुनौती साबित हुई है। जलवायु परिवर्तनशीलता से संघर्ष करने के साथ ही अधिक उत्पादकता युक्त प्रजातियों के विकास की आज की परिस्थितियों में अत्यंत आवश्यकता है। पिछले कुछ दशकों के दौरान राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली (एनएआरएस) और विश्व के अनेक प्रतिष्ठित संस्थाओं के ठोस प्रयासों ने कई फसलों में तनाव सहनशील किस्मों की खोज की गयी है। स्थान विशिष्ट संरक्षण तकनीकों, जल संचय और जल संसाधनों के कुशल प्रबंधन और अन्य अनुकूल रणनीतियों के साथ-साथ फसल बीमा पर नीतियाँ तथा मजबूत चेतावनी प्रणाली और मौसम आधारित सलाहकारों ने जलवायु परिवर्तन के लिये भारतीय कृषि को बेहतर बनाने में अतुलनीय सहयोग दिया है। सबसे प्रभावी तरीका है अक्षय ऊर्जा, वन और जल संरक्षण, पुनर्नवीनीकरण आदि का उपयोग कर कृषि को प्रगतिशील और लाभदायी बनाया जा सकता है। वर्तमान की बागवानी प्रथाओं के सुधार और ग्रीनहाउस तकनीक का अधिक उपयोग, जलवायु परिवर्तन से जूझने का प्रमुख उपाय हैं। उच्च तापमान के लिये बागवानी फसलों की नयी किस्मों का विकास, कीटनाशक और रोगों के प्रति प्रतिरोधकता, कम अवधि और तनाव की स्थिति में अच्छी उपज का निर्माण, साथ-ही-साथ उच्च तकनीक बागवानी और प्राकृतिक संसाधनों का न्यायपूर्ण प्रबंधन ही वर्तमान जलवायु परिवर्तन परिदृश्य के खिलाफ सबसे सशक्त कदम है।

निष्कर्ष

अजैव तनाव हमेशा से ही पर्यावरण तथा खेती के लिये एक चुनौती रहा है। प्रतिकूल पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना करने के लिये हमें सहिष्णुता युक्त पौधों की प्रजातियों का उत्पादन करने की ओर ध्यान देना चाहिये। सूखे तनाव से बचाव के लिये मौजूदा जीन के ज्ञान के साथ-साथ, पौधों में हो रहे लक्षणों को भी पहचानना होगा। जीनोमिक्स तथा जेनेटिक इंजीनियरिंग प्रक्रियाओं ने सहिष्णुता युक्त पौधों को प्राप्त करने में अहम भूमिका निभायी है। साथ ही यह भी समझने की आवश्यकता है कि अलग-अलग तनाव, पौधों में विशिष्ट एंजाइमों और कारकों को जन्म देते हैं, जो इकोसिस्टेम को प्रभावित कर नये कीट और व्याधियों को जन्म दे रहे हैं। इसीलिए हमें तनाव तथा पौधे में उत्पन्न हो रहे एंजाइमों के बीच स्थापित संपर्क को समझना होगा जो अजैव तनाव को दूर रखने में सहायक सिद्ध होगा। इस समीक्षा में कई अबाधित तनाव पथ, संकेत अणुओं, जीन, जो तनाव के लिये जिम्मेदार हैं, वर्णित हैं तथा पर्यावरणीय परिस्थितियों से बचने के लिये सहिष्णुता वाले ट्रांसजेनिक फसलों और पौधों के विकास की ओर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु गतः धनम।
कार्यकालेसमुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम॥

अर्थ : जो विद्या पुस्तकों में है तथा जो धन दूसरों के हाथ में गया है, ये दोनों आवश्यकता के समय काम नहीं आते।

जैविक तथा अजैविक तनाव में एथिलीन की भागीदारी

इसरार अहमद[1], मुथ्थुकुमार एम.[2], उमेश एच[3], देवेन्द्र पाण्डेय[4] एवं एस. राजन[5]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

पादप हॉर्मोन पौधों की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करते हैं। पादप हॉर्मोन एथिलीन वृद्धि सेनसेन्स को नियंत्रित करते हैं। एथिलीन को बहुकारिकी हॉर्मोन की संज्ञा दी जाती है। इसकी सांद्रता के उपयोग का समय तथा पादप जाति के प्रकार के आधार पर पौधों की जीवारणता तथा वृद्धि को प्रभावित करता है। एथिलीन पौधों की पत्तियों, फलों, तथा फूलों की वृद्धि तथा विकास को नियंत्रित करते हैं इसके साथ ही, यह हॉर्मोन पौधों को बहुत सारी जैविक तथा अजैविक तनाव वाले कारकों से सुरक्षित करता है। पौधों का विकास और उनकी उत्पादकता पर्यावरण के स्तर से नकारात्मक रूप से प्रभावित है। प्रत्येक वर्ष भारत में जैविक और अजैविक तनाव के कारण फसल उत्पादकता में कमी होने से लाखों रुपये का नुकसान होता है। प्रतिकूल पर्यावरणीय स्थिति के कारण फसल पैदावार को बनाये रखना आधुनिक कृषि की एक बड़ी चुनौती है। तनाव के दौरान विभिन्न हार्मोन एक क्रॉस टॉक में प्रवेश करते हैं और विभिन्न तंत्र जैसे विभिन्न प्रोटीन और एंजाइमों के सक्रियण या निष्क्रियता के माध्यम से अपने स्तर या गतिविधि को समायोजित करते हैं।

एथिलीन और जैविक तनाव

पौधों के भीतर हानिकारक तथा रोगजनक सूक्ष्म जीवों की चुनौतियों से लड़ने की कुशल रक्षा प्रणाली होती है। प्रभावी रक्षा के लिये रोगजनक जीवों की पहचान के बाद पौधों की रक्षा जीनों की अभिव्यक्ति की तीव्र सक्रियता बहुत ही आवश्यक है। पौधों की रक्षा में एथिलीन की भागीदारी रोगजनक के प्रकार एवं पौधों की प्रजातियों के प्रकार पर निर्भर करती है। एथिलीन असंवेदनशील उत्परिवर्ती या तो संवेदनशीलता में वृद्धि या बढ़ा हुआ प्रतिरोधन दिखते हैं जो शायद विभिन्न संक्रामक तंत्र के फलस्वरूप होता है। पौधों में रोगजनकों से प्रतिरोध के लिये एथिलीन की भागीदारी अत्यंत जटिल है क्योंकि माइक्रोबियल वेसिस्ट एथिलीन संश्लेषण मार्ग से कई रोगजनक एथिलीन का संश्लेषण करते हैं जो पौधों द्वारा एथिलीन संश्लेषण के मार्ग से भिन्न होता है। सामान्यतः पौधों द्वारा उत्पन्न एथिलीन को रोगजन्य विषमता का विरोधी माना जाता है जबकि रोगजन व्युत्पन को रोगजन्य विषमता में योगदान वाला माना जाता है। एथिलीन अकेले अथवा सैलिसिलिक अम्ल अथवा जैसमोनिक अम्ल के साथ अतिसंवेदनशील प्रतिक्रिया के सक्रियण में कार्य करता है तथा स्थिति रूप से दीर्घकालिक होती है।

एथिलीन और अजैविक तनाव

एथिलीन पौधों के बहुत सारे अजैविक तनाव के प्रति सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। इसका प्रभाव तनाव की प्रकृति पर निर्भर करता है। अजैविक तनाव में एथिलीन भागीदारी के कुछ उदाहरण निम्नानुसार है।

ओजोन से पौधों की सुरक्षा के दौरान आरओएस प्रमुख संकेतक अणु हैं जबकि एथिलीन सैलिसिलिक अम्ल और जैसमोनिक अम्ल दूसरे दूतों के रूप में कार्य करते हैं और ऑक्सीडेटिव तनाव के लक्षणों के प्रसार को विनियमित करते हैं। बढ़ी हुई एथिलीन और सैलिसिलिक अम्ल का उत्पादन ओजोन प्रेरित कोशकीय मौत को बढ़ावा देता है जबकि जैस्मोनिक अम्ल सेल सुरक्षात्मक घटक के रूप में कार्य करता है और ओजोन से प्रेरित क्षति को सीमित करता है। सूखा एवं तनाव के दौरान ऑब्सेसिक अम्ल रंध्रों के बंद होने को नियंत्रित करता है जबकि बढ़ी हुई एथिलीन उत्पादन में ऑब्सेसिक अम्ल कार्रवाई पर एक निरोधात्मक प्रभाव डालती है। गहरे पानी में चावल के रोपण में एथिलीन कम ऑक्सीजन सांद्रता के लिये पौधों में अनुकूलन प्रदान करती है तथा पौधों को शिथिलता तथा क्लोरोफिल को टूटने से बचाती है। सामान्यतः एथिलीन पौधे में बाढ़ के दौरान जलमग्न सहनशीलता और पानी के नीचे की शूटिंग को उत्तेजित करता है। ओस्मोटिस तथा साल्ट तनाव में भी एथिलीन का संश्लेषण तथा संवेदना प्रभावित होती है।

[1,2,3]वैज्ञानिक, [4]प्रधान वैज्ञानिक एवं [5]निदेशक

पादप	जीन	अजैविक तनाव
एराबिडोप्सिस	इरफ 1	नमक सूखा गर्मी
एराबिडोप्सिस	इरफ 4	नमक
एराबिडोप्सिस	इरफ 5	आसमाटिक, सूखा
एराबिडोप्सिस	इरफ 6	आसमाटिक, सूखा
एराबिडोप्सिस	इरफ 98	नमक
एराबिडोप्सिस	इरफ 104	नमक सूखा ठंड गर्मी
एराबिडोप्सिस	इरफ 105	नमक सूखा ठंड गर्मी
चावल	इरफ 1	सूखा
आलू	पीफ 1	सूखा गर्मी
मक्का	आरफ 1	नमक
टमाटर	इरफ 1	नमक
टमाटर	इरफ 2	नमक
टमाटर	इरफ 5	नमक, सूखा, गर्मी
तंबाकू	इरफ 1	नमक, सूखा, गर्मी

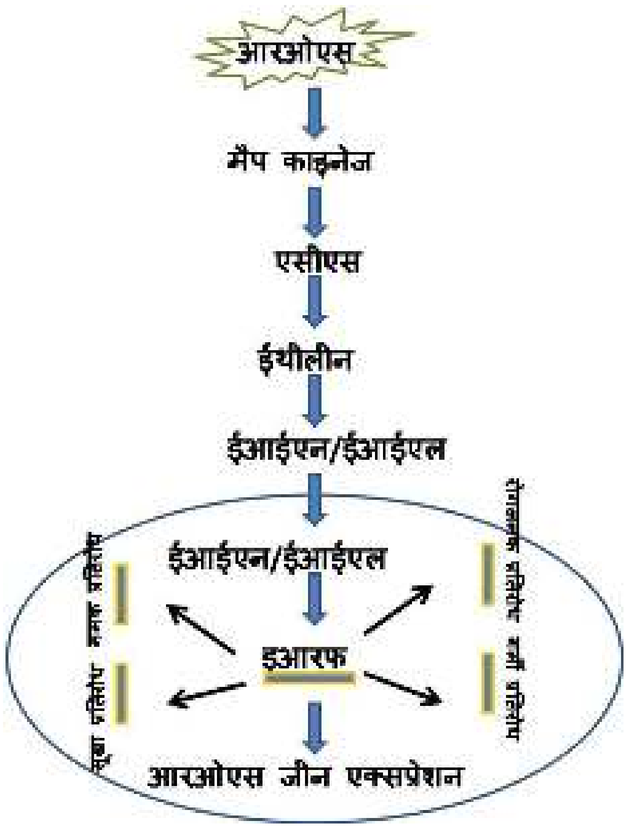

जैविक तथा अजैविक तनाव में एथिलीन की भागीदारी

चेतक की वीरता

रण बीच चौकड़ी भर-भर कर
चेतक बन गया निराला था
राणाप्रताप के घोड़े से
पड़ गया हवा का पाला था
जो तनिक हवा से बाग हिली
लेकर सवार उड़ जाता था
राणा की पुतली फिरी नहीं
तब तक चेतक मुड़ जाता था
गिरता न कभी चेतक तन पर
राणाप्रताप का कोड़ा था
वह दौड़ रहा अरिमस्तक पर
वह आसमान का घोड़ा था
था यहीं रहा अब यहाँ नहीं
वह वहीं रहा था यहाँ नहीं
थी जगह न कोई जहाँ नहीं
किस अरिमस्तक पर कहाँ नहीं
निर्भीक गया वह ढालों में
सरपट दौडा करबालों में
फँस गया शत्रु की चालों में
बढ़ते नद-सा वह लहर गया
फिर गया गया फिर ठहर गया
विकराल वज्रमय बादल-सा
अरि की सेना पर घहर गया
भाला गिर गया गिरा निसंग
हय टापों से खन गया अंग
बैरी समाज रह गया दंग
घोड़े का ऐसा देख रंग।

-श्यामनारायण पाण्डेय

उद्यानों में पोषक तत्वों की कमी या अधिकता के दुष्प्रभाव

अजय कुमार त्रिवेदी[1]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

संतुलित भोजन में हमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एवं वसा के अतिरिक्त अन्य बहुत से अवयवों की आवश्यकता होती है। इनकी आपूर्ति हम फलों एवं सब्जियों से करते हैं। सामान्यत: फल बहुवर्षीय पौधों से प्राप्त किये जाते हैं। अत: ऐसे पौधों की नियमित देख-रेख एवं रखरखाव लंबे समय तक करना पड़ता है। एक फलदार पौधा एक स्थान पर लंबे समय तक स्वस्थ एवं जीवित रहे इसके लिए पौधों के आसपास की मृदा में आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा आवश्यकता के अनुरूप होना आवश्यक है, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये। ऐसे उद्यानों की मृदा में, जहाँ पौधों की नियमित देख-रेख नहीं होती है, आवश्यक पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। इसके विपरीत व्यापारिक उद्देश्य से बनाये गये उद्यानों में आवश्यकता से अधिक रासायनिक खादों के प्रयोग से मृदा में पोषक तत्वों की विषाक्तता के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। अत: दोनों स्थितियाँ टिकाऊ उद्यानिकी के लिये हानिकारक होती हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कृषि, उद्यानिकी, पशुपालन एवं मत्स्यपालन का मुख्य उद्देश्य अन्न, फल, सब्जी, दूध तथा अंडा आदि का उत्पादन बढ़ाना था जिसे प्राप्त करने के लिये किसानों एवं कृषि वैज्ञानिकों ने उन्नत किस्म के बीजों, अकार्बनिक रासायनिक खादों तथा रोगनाशी दवाओं का प्रयोग किया गया और देश में हरित क्रांति लाने में सफल हुए। खेतों एवं उद्यानों में रासायनिक खादों के अंधाधुंध प्रयोग के परिणामस्वरूप भूमि में पौधों के लिये आवश्यक पोषक तत्वों का असंतुलन बढ़ता गया। समय के साथ कृषि की प्राथमिकताओं में भी परिवर्तन आया। आज हमारा उद्देश्य कृषि तथा उद्यानिकी की पैदावार बढ़ाने के साथ-साथ मृदा की उर्वरता बनाये रखना भी है। मृदा की उर्वरता उसमें मौजूद एवं पौधे के लिये उपलब्ध आवश्यक पोषक तत्वों पर निर्भर करती है। पोषक तत्व पौधों की वृद्धि, उत्पादकता एवं उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ाने में सहायक होते हैं।

[1]प्रधान वैज्ञानिक

किसी तत्व को पौधों के लिये आवश्यक पोषक तत्व तब कहते हैं जब पौधा इसकी कमी के कारण अपने जीवन चक्र की कायिक अवस्था या जनन अवस्था पूरी न कर सके, इस पोषक तत्व की कमी किसी दूसरे पोषक तत्व के प्रयोग द्वारा पूरी न की जा सके और यह तत्व पौधे में अन्य उपयोगों के अतिरिक्त सीधे तौर पर पौधे के पोषण के लिए उत्तरदायी हो।

पोषक तत्वों का मुख्य कार्य पौधों के शरीर निर्माण में भाग लेना, पौधों की कोशिकाओं में परासरण दबाव एवं पी.एच. मान को नियंत्रित करना तथा कोशिका झिल्ली की पारगम्यता को नियंत्रित करना होता है। पोषक तत्व पौधे के अन्दर उपस्थित एन्जाइम के उत्प्रेरक के भी काम के अलावा और दूसरे तत्वों के प्रभाव को कम, ज्यादा या संतुलित करते हैं। अधिक मात्रा में उपस्थित होने पर यह पौधों पर विषाक्त प्रभाव भी डालते हैं।

आम की पत्तियों में नाइट्रोजन की कमी

आम की पत्तियों में फास्फोरस की कमी

पौधे के लिये आवश्यक पोषक तत्वों को दो भागों में बाँटा गया है–प्रमुख पोषक तत्व तथा सूक्ष्म पोषक तत्व। प्रमुख पोषक तत्व वे तत्व हैं जिनकी पौधों को शुष्क भार के हिसाब से 1 मिलीग्राम प्रतिग्राम या इससे अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। पौधों को कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, गंधक, कैल्सियम एवं मैग्नीशियम नामक नौ प्रमुख पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है–सूक्ष्म पोषक तत्व वे तत्व होते हैं जिनकी पौधों को शुष्क भार के हिसाब से 0.1 मिलीग्राम प्रतिग्राम या इससे कम मात्रा में आवश्यकता होती है। पौधों को सात सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है - लौह, तांबा, मैग्नीज, जस्ता, मालिब्डेनम, बोरॉन और क्लोरीन। इसके साथ ही कुछ तत्व अतिसूक्ष्म मात्रा में पौधों के लिये लाभदायक होते हैं, जिन्हें गौण पोषक तत्व कहते हैं जैसे कि सोडियम, सिलिकान, कोबाल्ट, निकिल, सेलेनियम, एलुमिनियम गौण पोषक तत्व भी कहते हैं।

मृदा में पोषक तत्वों की अधिकता से रसाकर्षण बढ़ जाता है, जिससे पौधे पर्याप्त मात्रा में पानी नहीं ले पाते हैं। कुछ पोषक तत्वों की अधिकता दूसरे आवश्यक पोषक तत्वों के घुलनशील रूप को अघुलनशील रूप में बदल देती है जिससे यह तत्व पौधों को प्राप्त नहीं होते हैं। कुछ पोषक तत्व जैसे बोरॉन तथा क्लोराइड अधिक मात्रा में होने पर पौधों पर विष का कार्य करते हैं। भारी तत्व जैसे जस्ता, तांबा, कोबाल्ट, निकिल, कैडमियम, क्रोमियम, पारा, शीशा आदि अधिक मात्रा में होने पर पौधों पर विषाक्त प्रभाव डालते हैं।

मृदा में पोषक तत्वों की कमी की स्थिति में यदि फसलें उगायी जाती हैं तो उनकी उपज एवं गुणवत्ता प्रभावित

आम की पत्तियों में पोटैशियम की कमी

एवोकाडो की पत्तियों में आयरन क्लोरोसिस

होती है। यदि भारतीय मृदाओं में सूक्ष्म पोषक तत्वों को देखा जाये तो जस्ते की कमी काफी विस्तृत है। इसके बाद बोरॉन की कमी भी बहुत सारी मृदाओं में पायी जाती है। जस्ते की कमी से पौधों के अंदर एन्जाइम प्रभावित होते हैं जिससे पौधों की बढ़वार रुक जाती है, उत्पादन क्षमता घट जाता है या नहीं होता हैं। बोरॉन की कमी से पौधों के बढ़ने वाले अग्र भागों में शुरू से ही ह्रास उत्पन्न हो जाता है। इसकी कमी से मूल तथा तनों के ऊपरी बढ़ने वाले अंगो का विकास रुक जाता है। इसी तरह मालिब्डेनम तत्व का सीधा संबंध नाइट्रोजन स्थिरीकरण से है। इसकी कमी से जड़ ग्रन्थि का विकास प्रभावित होता है। यदि मृदा में लौह तत्व की कमी होती है तो पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं, जड़ का विकास ठीक तरह से नहीं हो पाता तथा पौधे की उपापचय क्रियाएँ प्रभावित होती हैं।

किसान आमतौर पर नाइट्रोजन, जिसे यूरिया के रूप में प्रयोग करते हैं इसके प्रति विशेष रूप से जागरूक रहते हैं क्योंकि उन्हें नाइट्रोजन का प्रभाव तत्काल दिखायी देने लगता है जैसे कि अच्छी बढ़वार, पत्तियों का हरा रंग, उत्तरोत्तर फसल वृद्धि नाइट्रोजन के लाभकारी परिणाम है। फास्फोरस के भी कुछ लाभकारी परिणामों की उन्हें सामान्य जानकारी रहती है जैसे कि कल्लों और शाखाओं की संख्या में वृद्धि। लेकिन पोटाश के प्रयोग के प्रति वह इतने जागरूक नहीं होते हैं। इसका कारण यह है कि पोटाश का प्रभाव उपज, उत्पाद गुणवत्ता, कीट रोग प्रतिरोधकता, सूखा, पाला आदि के बचाव पर दिखायी देता है।

उत्तर भारत के राज्यों में पोटाश का प्रयोग नगण्य मात्रा में होने के कारण नाइट्रोजन: फास्फोरस: पोटाश का अनुपात

नींबू की पत्तियों में बोरॉन की विशाक्तता

आडू की पत्तियों में नाइट्रोजन की विषाक्तता

काफी असंतुलित है। राष्ट्रीय स्तर पर यह अनुपात 4:2:1 में करने का लक्ष्य रखा गया था जो अभी तक नहीं हो पाया है। आज भारतीय कृषि इन तत्वों के लगभग सत्तानवें लाख टन के नकारात्मक संतुलत पर टिकी है जिसमें नाइट्रोजन का हिस्सा लगभग 22.29 लाख टन, फास्फोरस का 14.96 लाख टन और पोटाश का सर्वाधिक 59.76 लाख टन है। भू-संसाधनों के अनवरत दोहन एवं रासायनिक खादों के असंतुलित प्रयोग के कारण मिट्टी की उर्वराशक्ति में हो रहे ह्रास से पोषक तत्वों की कमी या अधिकता के रूप में व्यापक रूप से देखा जा सकता है।

पोषक तत्वों की कमी या अधिकता के उपचार के लिये मुख्यत: तीन विधियाँ है-पहली विधि में कमी या अधिकता का उपचार आँख से दिखायी देने वाले लक्षणों जैसे पत्तियों में हरेपन की कमी, पत्तियों के किनारों का धीरे-धीरे सूखना, पत्तियों पर चकते आदि पड़ना के आधार पर किया जाता हैं। लेकिन पौधों में आवश्यक तत्वों की थोड़ी कमी या अधिकता होने पर कोई विशेष लक्षण स्पष्ट रूप से दिखायी नहीं देते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि इस तत्व की कमी या अधिकता के कारण ऐसा हो रहा है। साथ ही यदि उद्यान में एक से अधिक तत्वों की कमी या अधिकता है जो अक्सर पाया जाता है तो लक्षणों को पहचान पाना और भी कठिन होता है।

दूसरी विधि में पोषक तत्वों की आपूर्ति एवं पौधों की वृद्धि दर के आधार पर उपचार किया जाता है। पोषक तत्वों की आपूर्ति एवं पौधों की वृद्धि को तीन स्थितियों में बाँट कर देखा जा सकता है। पहली स्थिति जब उद्यान की मृदा में पोषक तत्वों की कमी हो, दूसरी स्थिति जब उद्यान की मृदा में पोषक तत्वों की प्रचुरता हो और तीसरी स्थिति जब उद्यान की मृदा में पोषक तत्वों की अधिकता हो। पहली स्थिति में उद्यान में पोषक तत्वों की आपूर्ति बढ़ाने से पौधों की वृद्धि दर बढ़ती है। दूसरी स्थिति में पौधों की वृद्धि दर पोषक तत्वों की प्रचुरता के कारण अधिकतम रहती है और पोषक तत्वों की आपूर्ति बढ़ाने से वृद्धि दर पर कोई प्रभाव नही पड़ता है। तीसरी स्थिति में पोषक तत्वों की आपूर्ति बढ़ाने से वृद्धि दर में कमी देखी जा सकती है। इस कमी का कारण

पत्तियों में आयरन की कमी

पत्ती में मैग्नीशियम की कमी

आवश्यकता से अधिक मात्रा में उपलब्ध होने पर पोषक तत्व विषाक्त प्रभाव डालते हैं, जिससे पौधों को लाभ की जगह हानि होती है।

तीसरी विधि में पोषक तत्वों की कमी या अधिकता का उपचार मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता के रासायनिक परीक्षण एवं पौधों के विभिन्न भागों में पोषक तत्वों की उपलब्धता के रासायनिक परीक्षण के आधार पर किया जाता है। पौधों के विभिन्न भागों में पोषक तत्वों की कमी या अधिकता के लिए रासायनिक परीक्षण करते समय पौधों के विकास की अवस्था एवं उनकी आयु का भी ध्यान रखना चाहिये। जैसे-जैसे पौधे की आयु बढ़ती जाती है उसमें कैल्सियम के अतिरिक्त अन्य अधिकांश पोषक तत्वों का स्तर कम होता जाता है। रासायनिक परीक्षण में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि एक ही पौधे की विभिन्न प्रजातियों के एक ही आयु के पौधों में उपापचय का स्तर अलग-अलग होता है, जिसके कारण उनके पोषक तत्वों की जरूरत का स्तर भी भिन्न होता है। साथ ही वातावरणीय कारक भी पोषक तत्वों की कमी या अधिकता की सीमा निर्धारण में महत्वपूर्ण होते हैं। यदि वातावरण में आर्द्रता अधिक है तो किसी पोषक तत्व की कमी के लक्षण कम दिखायी देंगे और यदि आर्द्रता कम है तो पोषक तत्व की उतनी ही मात्रा की उपस्थिति में कमी के लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं।

पत्ती में जिंक की कमी

स्ट्राबेरी की पत्तियों में पोटेशियम की कमी

सेब में पोटेशियम की कमी

सेब में बोरॉन की कमी

उद्यानों में पोषक तत्वों की कमी या अधिकता के दुष्प्रभावों से बचाव के लिए समय-समय पर मृदा एवं पौधों का रासायनिक परीक्षण करवाते रहना चाहिये। यदि उद्यान विशेष की मृदा की जाँच के फलस्वरूप प्राप्त मृदा उर्वरता संबंधी जानकारी को ध्यान में रखते हुए पूर्व निर्धारित उपज लक्ष्य की प्राप्ति हेतु फसल की खुराक पूरी की जाये तो इससे न केवल गुणवत्तायुक्त अधिकतम उपज प्राप्त होगी बल्कि अधिकतम लाभ भी प्राप्त होगा।

औद्यानिक फसलों पर पाले का प्रभाव तथा बचाव के उपाय

अजय कुमार त्रिवेदी[1], घनश्याम पाण्डेय[2] एवं प्राणनाथ बर्मन[3]

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

किसानों और बागवानों की सुबह की शुरुआत पक्षियों के कलरव ध्वनि एवं चहचहाने की आवाज सुनकर ही होती है। किन्तु वर्ष के बारह महीने मौसम एक सा नहीं रहता है। कभी मौसम जीवन के लिये अनुकूल होता हैं तो कभी प्रतिकूल भी रहता है। प्रतिकूल मौसम का प्रभाव पशु-पक्षियों से लेकर पेड़-पौधों तक, चल-अचल सभी जीवों पर पड़ता है। अंतर यह है कि चल जीव अपने बचाव के लिए स्थान परिवर्तन कर सकते हैं किन्तु पेड़-पौधे विपरीत परिस्थितियों को सहन करने के लिये बाध्य होते हैं। वह एक जगह से दूसरी जगह सुरक्षित स्थान पर नहीं जा सकते हैं। जाड़े के मौसम में जैसे-जैसे सर्दी बढ़ती जाती है, उसका प्रभाव स्पष्ट दिखने लगता हैं। सुबह उठते ही पक्षियों की चहचहाने की आवाज सुनायी नहीं देती है। पक्षी सर्दी से बचाव के लिये इधर-उधर आशियाना ढूंढ रहे होते हैं। लेकिन लगातार गिरता हुआ तापमान एवं बढ़ती हुई ठंड पशु-पक्षियों के साथ-साथ फसलों को नुकसान पहुँचा सकते हैं। सर्दी के मौसम में, दिसंबर-जनवरी महीने में ठंड अधिक होती है और धीरे-धीरे शीतलहर में बदल जाती है। ठंड के समय जब रात्रि का तापक्रम 3 डिग्री सेंटीग्रेड या इससे भी कम होता है तथा हवा रुक जाती है तथा आसमान साथ होता है ऐसे मौसम में ठंड के साथ-साथ पाला पड़ने की संभावना ज्यादा होती है। पौधों की पत्तियों के अंदर उपस्थित पानी जमने लगता है, जिससे कोशिकाभित्ति फट जाती है और कोशिका के अंदर का तरल पदार्थ बाहर की ओर आ जाता है। परिणामस्वरूप पौधा धीरे-धीरे मुरझाने लगता है। इसे पाला या ठंड से जलना कहते हैं।

पाला मूलतः दो तरह का होता है—अभिवहन (एडवेक्टिव) और विकिरणवाला (रेडिएटिव)। एडवेक्टिव पाला तब पड़ता है जब ठंडी हवाएँ चलती हैं। इस अवस्था में आसमान खुला हो या बादल हो, दोनों परिस्थितियों में एडवेक्टिव पाला पड़ सकता है। जब आसमान साफ हो और हवा शांत हो, ऐसी स्थिति में जो पाला गिरता है, उसे रेडिएटिव पाला कहा जाता है। हवा शांत होने से पृथ्वी के ऊपर एक इनवरजन परत बन जाती है। यह एक ऐसी वायुमंडलीय दशा है जो सामान्य परिस्थिति की तुलना में बिलकुल विपरीत होती है। सामान्य अवस्था में हवा का ताप ऊँचाई बढ़ने से घटता है। लेकिन इनवरजन के कारण ठंडी हवा पृथ्वी की सतह के पास इकट्ठा हो जाती है और गर्म हवा इस पर्त के ऊपर होती है ।

पौधों पर कम तापमान का प्रभाव तथा उससे होने वाली क्षति दो प्रकार की होती है। दोनों से पौधों को नुकसान होता है। एक को चिलिंग क्षति कहते हैं जबकि दूसरे को

पालाग्रस्त आम का पुराना पौधा

पालाग्रस्त आम का नया पौधा

[1,2]प्रधान वैज्ञानिक एवं [3]वैज्ञानिक

फ्रीजिंग क्षति। तापमान शून्य डिग्री सेटीग्रेड से ऊपर रहने पर होने वाली क्षति को चिलिंग क्षति कहा जाता है जबकि पौधों के ऊतकों का तापमान शून्य या शून्य से कम होने पर होने वाली क्षति को फ्रीजिंग क्षति कहा जाता है। इस स्थिति में पत्तियों के अंदर बर्फ जम जाती है। गर्म क्षेत्रों में उगने वाले पौधे रात के 12 से 15 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान पर भी क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। कुछ फसलें पाले के प्रति बहुत ही संवेदनशील होती हैं जैसे कि टमाटर। अत: पाला से बचने का अन्य कोई उपाय न हो तो बेहतर यह होता है कि हरे टमाटर जो पकने की स्थिति में आ चुके हैं, उन्हें तोड़ कर उपयुक्त स्थान पर रख दिया जाये जिससे वे प्राकृतिक रूप से पक जाये। पाला पड़ने से पौधों की पत्तियाँ ज्यादा प्रभावित होती हैं क्योंकि पौधे असमतापी (पोईकिलोथर्मिक) होते हैं। अत: वे अपना तापमान नियंत्रित नहीं कर पाते हैं। उनके शरीर का तापमान वातावरण के तापमान से नियंत्रित होता है। गर्म हवा में पौधे गर्म हो जाते हैं, ठंडी हवा में ठंडे। पाला गिरने से पत्तियाँ सबसे ज्यादा प्रभावित इसलिए होती हैं कि पत्तियाँ ही पौधे का सर्वाधिक खुला एवं ज्यादा क्षेत्रफल का अंग होती हैं।

पत्तियाँ हवा के आदान-प्रदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पत्तियों में पानी की मात्रा अधिक होती हैं। अत: वातावरणीय तापमान में परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव पौधों की पत्तियों पर पड़ता है। पत्ती के अन्दर कोशिकाओं के बीच-बीच में तथा कोशिका के अंदर भी पानी भरा रहता है जो तापमान के शून्य या शून्य से कम होने से जम जाता है। सामान्यत: बर्फ पड़ने के बाद पत्तियों के ऊपर जमी हुई बर्फ अधिक दिखायी देती है जबकि जमीन पर बर्फ कम दिखायी

पालाग्रस्त केला का पौधा

पालाग्रस्त पपीता का पौधा

देती है जो बर्फ मिट्टी पर गिरती हैं मिट्टी का तापमान अधिक होने से पिघल जाती है जबकि पत्तियों पर बनी रहती है। जागरूक किसान-बागवान पाला पड़ने की संभावना होने पर सिंचाई पहले ही कर देते हैं। सिंचाई करने से मिट्टी गीली हो जाती हैं, गीली मिट्टी अपेक्षाकृत धीरे-धीरे ठंडी होती है। अत: मिट्टी की सतह पर अपेक्षाकृत ज्यादा ताप होने से फसल पाले के दुष्प्रभाव से बच जाती है। सिंचाई करने से पत्तियों में पानी की मात्रा बढ़ जाती है। जब पानी जमता है तब प्रत्येक ग्राम पानी के जमने पर लगभग 80 कैलोरी ऊष्मा उत्सर्जित होती है। अत: पाला पड़ने से पहले पौधों को पानी देने से इनका आंतरिक तापमान जमाव बिंदु से ऊपर बना रहता है और वे क्षतिग्रस्त होने से बच जाते हैं। लेकिन यदि पौधे पाला से प्रभावित हो गये, तब सिंचाई कर इन्हें बचाया नहीं जा सकता हैं। पौधों को नुकसान पाला के कारण से नहीं बल्कि पौधों के अंगों, विशेषकर पत्तियों के ऊतकों के आंतरिक तापमान के कारण होता है। यदि तापमान इतना कम है कि वह कोशिका भित्ति को तोड़ दे या कोशिकांग को इतना क्षतिग्रस्त कर दें कि वे वापस अपनी पूर्व स्थिति में न आ पायें, तो प्रभावित ऊतक मुरझा जाते हैं। प्रभाव ज्यादा होने पर उनकी मृत्यु भी हो जाती है। सामान्यत: शीत ऋतु वाले पौधे 2 डिग्री सेंटीग्रेड तक का तापमान सहने में सक्षम होते है। इससे कम तापमान होने पर पौधों को नुकसान होता हैं।

सामान्यत: पाला गिरने का अनुमान वातावरणीय स्थिति से भी लगाया जा सकता है। सर्दी के दिनों में जिस दिन दोपहर से पहले ठंडी हवा चलती रहे एवं हवा का तापमान जमाव बिंदु के समतुल्य आ जाये। दोपहर बाद

अचानक हवा चलना बंद हो जाये तथा आसमान साफ रहे, या आधी रात से ही हवा रुक जाये तो पाला पड़ने की संभावना अधिक होती है। विशेषकर रात के तीसरे एवं चौथे पहर में पाला पड़ने की संभावना अधिक होती है। साधारणतया तापमान गिरने की स्थिति में यदि हवा चलती रहे तो पौधों को नुकसान नहीं या काफी कम होता है। परन्तु यदि इसी बीच हवा चलना रुक जाये तथा आसमान साफ हो तो पाला पड़ता है, जो फसलों के लिये नुकसानदायक होता है।

किसी स्थान विशेष की भौगोलिक परिस्थितियाँ भी पाले को प्रभावित करती हैं। यदि किसी स्थान पर टीले एवं पहाड़ियाँ हैं, तो वहाँ एक जगह से दूसरी जगह की दूरी तो कम हो सकती है। लेकिन ढलान, ऊँचाई एवं दिशा में परिवर्तन के कारण पाले का प्रकोप भी भिन्न-भिन्न होगा। ढलान की तलहटी में ठंडी हवा नीचे बैठ जाती है क्योंकि यह गर्म हवा से भारी होती है। अत: घाटी में पाला ज्यादा पड़ता है, साथ ही पहाड़ की चोटी पर तापमान कम होने के कारण पाला अधिक प्रभावित करता है। अत: पहाड़ों के शीर्ष एवं घाटियों में पाला ज्यादा पड़ता है जबकि पहाड़ के अन्य हिस्से उससे बचे रहते हैं।

पाले के लक्षण

वस्तुत: सर्दी के मौसम में पाले से सभी फसलों को नुकसान होता है। यह नुकसान कुछ फसलों एवं पौधों में अधिक जबकि कुछ में कम हो सकता है। पौधों पर पाले के निम्नलिखित मुख्य प्रभाव दिखायी देते हैं–

(i) पाले के प्रभाव से पौधों की पत्तियाँ एवं फूल झुलसे हुए दिखायी देते हैं एवं बाद में झड़ जाते हैं।

(ii) पौधों पर लगी हुई फूलों की कलियाँ गिर जाती हैं।

(iii) पौधौं में लगे हुए अधपके फल सिकुड़ जाते हैं तथा उनमें झुर्रियाँ आ जाती हैं।

(iv) पत्ती, फूल एवं फल सूख जाते हैं।

(v) फल के ऊपर धब्बे पड़ जाते हैं तथा फल का स्वाद खराब हो जाता है।

(vi) पाले के प्रभाव से फूल झड़ने लगते है एवं फल मर जाते हैं।

(vii) प्रभावित फसल का हरा रंग समाप्त हो जाता है तथा पत्तियों का रंग मिट्टी के रंग जैसा दिखता है।

(viii) फलदार पौधों जैसे की आम, पपीता आदि में पाले का प्रभाव अधिक होता है।

(ix) ज्यादा पाला पड़ने की स्थिति में सब्जी की पूरी फसल नष्ट हो सकती है।

(x) पाले के कारण अधिकतर पौधों के फूलों के गिरने से पैदावार में कम हो जाती है।

(xi) पालाग्रस्त पत्तियों के सड़ने तथा पत्ती, टहनी और तने के नष्ट होने से पौधों में बीमारियों का प्रकोप अधिक होता है।

(xii) पाले से प्रभावित फसल, फल एवं सब्जियों में कीटों का प्रकोप बढ़ जाता है।

पाले से पौधों की सुरक्षा के उपाय

जब पाला पड़ने की संभावना हो तब सिंचाई कर देना चाहिये। नमीयुक्त जमीन में काफी देर तक गर्मी रहती है तथा भूमि का तापक्रम अचानक कम नहीं होता है। इस प्रकार पर्याप्त नमी होने पर पाले से नुकसान की संभावना कम रहती है। खेत या बगीचे के चारों ओर घने पेड़ पंक्तियों में लगाने से हवा की ठंडी तरंगे फसलों को कम नुकसान पहुँचाती है। बगीचे या खेत में उत्तर-पश्चिम दिशा में वृक्ष घने लगाने से यह वायुरोधी कार्य करते हैं तथा ठंडी हवाओं को खेत या बगीचे में बहने से रोकते हैं। आम, नीबू, अनार आदि के पौधों को घास-फूस या पुवाल की टटियों से ढ़क देना चाहिये। पाले से बचाव हेतु फसल पर घुलनशील गंधक (0.4 प्रतिशत) एवं घुलनशील बोरॉन (0.2 प्रतिशत) मिश्रण का पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से पाले का असर बहुत कम होता है। डाईमिथाइल सल्फोऑक्साइड 87 मिलीलीटर/1000 लीटर का छिड़काव भी पाले से बचा सकता है। ऐसे छिड़काव का असर दो सप्ताह तक रहता है। यदि इस अवधि के बाद भी पाले की संभावना बनी रहे तो छिड़काव को 15 से 20 दिन के अन्तर पर दोहरा देना चाहिये। फसलों को पाले से बचाने में गंधक का छिड़काव करने से न केवल पाले से बचाव होता है बल्कि पौधों में लौह तत्व की जैविक एवं रसायनिक सक्रियता बढ़ जाती है जो पौधों में रोग रोधिता बढ़ाने में एवं फसल को जल्दी पकाने में सहायक होती है।

जिस रात पाला पड़ने की सम्भावना अधिक हो उस रात बगीचे या खेत के उत्तरी पश्चिमी दिशा से आने वाली ठंडी हवा की दिशा में बगीचे या खेत के किनारे पौधों या फसल के आसपास मेड़ों पर रात्रि में कूड़ा कचरा, घास, फूल, पुवाल या अनुपयोगी लकड़ी जला कर धुआँ करना चाहिये ताकि खेत में धुआँ आ जाये एवं वातावरण में गर्मी बनी रहे। ऐसे स्थानों पर जहाँ पाले से नुकसान की संभावना बहुत ज्यादा रहती है, सुविधा के लिए मेड़ पर 10 से 20 फुट के अंतर पर जलने योग्य कूड़ा करकट, घास-फूस का ढेर पहले से ही लगा लेना चाहिये, जिससे समय पर धुआँ करने में परेशानी नहीं हो। ऐसा करने से बगीचे या खेत का तापमान बढ़ जाता है। पौधशालाओं कें पौधों एवं सीमित क्षेत्र वाले उद्यानों/ नगदी सब्जी वाली फसलों में भूमि के ताप को कम न होने देने के लिए फसलों को टाट, पॉलिथीन अथवा भूसे से ढक देना चाहिए। नर्सरी, किचन गार्डन एवं कीमती फसल वाले खेतों में उत्तर पश्चिम दिशा में वायुरोधी टटिया बांधकर क्यारियों के किनारों पर लगा देना चाहिये। ये टटिया दिन की समय हटा देना चाहिये।

मैं नीर भरी दुःख की बदली!

स्पंदन में चिर निस्पंद बसा,
क्रंदन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते,
प्लकों में निर्झणी मचली!
मैं नीर भरी दु:ख की बदली!

मेरी पग पग संगीत भरा,
श्वासों में स्वप्न पराग झरा,
नभ के नव रंग बुनते दुकूल,
छाया में मलय बयार पली!
मैं नीर भरी दु:ख की बदली!

मैं क्षितिज भृकुटि पर घिर धूमिल,
चिंता का भर बनी अविरल,
रज-कण पर जल-कण हो बरसी,
नव जीवन-अंकुर बन निकली!
मैं नीर भरी दु:ख की बदली!

पथ न मलिन करता आना,
पद चिह्न न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग में,
सुख की सिहरन हो अंत खिली!
मैं नीर भरी दु:ख की बदली!

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली!
मैं नीर भरी दु:ख की बदली!

-महादेवी वर्मा

आम के बागों में समेकित प्रबंधन : आवश्यकता एवं महत्व

पी.के. शुक्ल[1], गुंडप्पा[2] एवं तहसीन फातिमा[3]

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

आम के बागों को स्वस्थ एवं उत्पादक बनाये रखने तथा अधिकतम लाभार्जन हेतु उनमें समेकित प्रबंधन आवश्यक है। आज बागवान अपने ज्ञान और समझ के विपरीत एक अंधी विनाशकारी दौड़ में लगे हैं। उनको लगता हैं कि अधिकतम पोषक तत्वों की आपूर्ति, जुताई, सिंचाई और जीवनाशी रसायनों के अंधाधुन्ध प्रयोग से वे उच्च गुणवत्ता का अधिकतम उत्पादन प्राप्त करते हुए अधिकतम लाभ भी अर्जित कर लेंगे। जबकि अधिक लाभ प्राप्त करने की एक सीमा होती है और उसके बाद प्रति इकाई व्यय पर उत्पादकता वृद्धि और शुद्ध लाभ दोनों ही घटने लगते हैं। संसाधनों का अधिक उपयोग न सिर्फ प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ता है अपितु कहीं न कहीं अन्य समस्याएँ भी उत्पन्न करता है। अधिकांश बागवान बुद्धिमान होते हुए भी एक अजीब दुविधा से ग्रस्त रहते हैं और अधिक व्यय कर कम लाभ पाते हैं। उनकी वर्तमान समस्याओं को समझते हुए इस लेख के द्वारा उन्हें अंधी दौड़ से निकालने का प्रयास किया जा रहा है।

योजना

किसी भी कार्य में सफलता सूक्ष्म, मध्यम और दीर्घकालीन योजना एवं लक्ष्य बनाकर कार्य करने से प्राप्त होती है। बागवानी में भी यह आवश्यक है कि परिस्थितियों, समस्याओं और संभावनाओं को संज्ञान में लेकर मजबूत योजना बनाकर कार्य किया जाये। विचारणीय है कि बाग की उम्र के अनुरूप कितनी कटाई-छँटाई की जाये, क्या अंतः फसलें उगा सकते हैं, कितनी बार जुताई या सिंचाई आवश्यक है, सिंचाई कैसे की जाये, खाद एवं उर्वरक कब, कितना और कैसे दिया जाये, कितने प्रकार के रोग और कीट आर्थिक क्षति कर सकते हैं, कौन-कौन से रोग और कीट का प्रबंधन किया जाये, रोग-कीट प्रबंधन कब और किस प्रकार से किया जाये, जीवनाशी रसायनों से मुक्त उत्पादन कैसे किया जाये, तुड़ाई पूर्व एवं उपरांत फसल को होने वाली क्षति को कैसे घटाया जाये, कैसे उच्च गुणवत्ता प्राप्त की जाये और सबसे जरूरी है कि फसल कब, कहाँ और कैसे बेचकर अधिकतम लाभ अर्जित की जाये।

बागों में कटाई-छँटाई

वन और उपवन के बीच के अन्तर को पाटना आवश्यक है। बाग नया हो या पुराना, पेड़ों के कटाई-छँटाई कर ऐसा आकार देना है कि प्रत्येक पत्ती तक धूप पहुँचे, वायु का संचार सुगम हो, अन्तः सस्य क्रियाओं के लिये पर्याप्त स्थान हो और प्रत्येक फल तक हमारी पहुँच हो। कटाई-छँटाई का कार्य हमेशा शीतकाल में करना चाहिये क्योंकि सर्दी में पेड़ की दैहिक स्थिति इसके लिए श्रेष्ठ होती है और रोग संक्रमण एवं तना भेदक कीट के प्रकोप की संभावना भी न्यूनतम होती है। पेड़ पर या बाग में कभी भी सूखी लकड़ी नहीं रखनी चाहिये क्योकि यह रोग एवं कीट को बढ़ावा देती है।

जुताई एवं खरपतवार प्रबंधन

बागों में जुताई भूमिगत कीटों एवं उग रहे खरपतवारों के प्रबंधन का उचित माध्यम है। किन्तु ध्यान रहे कि जुताई के कारण जड़ों को होने वाली क्षति, रोगकारी सूक्ष्म जीवों को संक्रमण का मौका प्रदान करती है। अतः गहरी जुताई नहीं करें और पेड़ के तने के पास तक जुताई न करें। वर्षा ऋतु की समाप्ति पर बाग में एक जुताई करना पर्याप्त है। इसके बाद बाग में उग रहे मौसमी खरपतवारों को बनाये रखना चाहिये क्योंकि इनमें बौर खिलने से पहले ही फूल खिलकर मित्र एवं परागण कीटों को आश्रय देते हैं और बौर खिलने पर भरपूर परागण होता है। साथ ही साथ मित्र कीट, शत्रु कीटों की अवयस्क अवस्थाओं को खाकर कीट प्रबंधन में सहायक होते हैं।

फलन की प्रक्रिया संपन्न होने के बाद भौतिक साधनों से खरपतवारों को हटाना चाहिये। अप्रैल से जुलाई तक खरपतवार मुक्त बाग, फलों की चुनाई, तना भेदक कीट के प्रकोप की निगरानी तथा साँपों से भी बचाव करता है। वर्षा

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]वैज्ञानिक एवं [3]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता

ऋतु में बागों में उगने वाले खरपतवार, मृदा क्षरण को रोकते हैं, लेकिन तना भेदक कीट के प्रकोप के निरीक्षण में बाधक होते हैं। ऐसे में जुताई नहीं करें लेकिन बागों की देख-रेख हेतु जरूरी खरपतवार प्रबंधन करते रहें। बागों में खरपतवार नियंत्रण के रासायनिक उपाय कालान्तर में आम के लिये हानिकारक हो सकते हैं।

बागों में अन्त: फसलें

बागों की उम्र और धूप की उपलब्धता के अनुसार अनेक अन्त: फसलें उगाने की संस्तुति की जाती है। यह प्रति इकाई भूमि के अधिकतम उपयोग और अधिक लाभ प्राप्त करने का उत्तम तरीका है। लेकिन ध्यान रहें कि इस कार्य से आम की जड़ों को क्षति नहीं हो अन्यथा कालान्तर में उकठा रोग की समस्या उत्पन्न हो सकती है। नये बागों में पहले तीन साल आम के पौधों से 2 मीटर तक, 4-7 साल के पौधे के 3 मीटर तक तथा पेड़ों के छाया क्षेत्र में अन्त: फसलें न उगायें। अन्त: फसल की ऊँचाई आम के पौधों की ऊँचाई से सदैव कम होनी चाहिये जिससे आम को खुली धूप और हवा प्राप्त होती रहे।

सिंचाई

हमारे देश के आधे से अधिक भू-भाग पर अंत: भू-जल सिंचाई हेतु उपलब्ध नहीं है। शेष भू-भाग में अधिकांश स्थानों पर भूमिगत जल स्तर में लगातार गिरावट आ रही है। अत: जहाँ भी आज जल उपलब्ध है उसका यदि हम न्यूनतम दोहन नहीं करेंगे तो परिणाम भंयकर होगा। टपक प्रणाली बागों में सिंचाई का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक पेड़ का थाला बनाकर पाइप के माध्यम से सिंचाई करना भी उत्तम है। किन्हीं कारणों से इस प्रकार सिंचाई नहीं कर पाने की दशा में पेड़ की दो पंक्तियों के मध्य नाली बनाकर प्रत्येक थाले में अलग-अलग सिंचाई की जा सकती है। पूरे बाग में बिना थाला बनायें सिंचाई करना हानिकारक होता है। इससे जल की बर्बादी के साथ-साथ खरपतवार और रोग में भी वृद्धि होती है।

खाद एवं उर्वरक

आम के पेड़ के आस-पास समुचित दूरी पर गोलाई में नाली खोदकर जुलाई और सितंबर-अक्टूबर माह में खाद, उर्वरकों एवं पैक्लोब्यूट्राजॉल के प्रयोग की संस्तुति की जाती है। इस प्रक्रिया में ध्यान रहे कि जड़ों को क्षति नहीं पहुँचे अन्यथा उकठा रोग का प्रकोप हो सकता है। अत: उथली नाली बनाकर ही यह कार्य संपन्न करें।

रोग और कीट प्रबंधन

आम के बाग में पूरे वर्ष 3-4 रोगकारी जीव और 4-5 प्रकार के कीट सक्रिय रहते हैं। प्रत्येक रोग और कीट प्रत्येक वृद्धि की अवस्था में अर्थिक क्षति नहीं करते हैं। रोग और कीट, फसल की अवस्था विशेष पर ही अर्थिक क्षति करते हैं। अत: बागों की अच्छी देख-रेख रखते हुए नयी वृद्धि, बौर खिलते और फल विकसित होने के समय विशेष सावधानी रखना चाहिये और अर्थिक क्षति की संभावना होने पर ही जीवनाशी रसायनों का प्रयोग करना चाहिये।

उदाहरणार्थ, पिछले दो वर्षो के दौरान बौर विकास काल में सबसे महत्वपूर्ण रोगों, खर्रा और झुलसा का प्रकोप नगण्य रहा है। नयी पत्तियों पर एन्थ्रेक्नोज का संक्रमण भी औसत से कम और अर्थिक क्षति स्तर से नीचे रहा। ऐसे में जिन बागों में फफूँदीनाशकों का प्रयोग नहीं किया गया, उनमें उत्पादकता और शुद्ध लाभ दोनों ही उत्तम रहे। वर्षा प्रारंभ होने के बाद, देर से तुड़ाई की जाने वाली आम की किस्मों के फलों पर शोल्डर ब्राउनिंग रोग का गंभीर प्रकोप हुआ था जिसकी अच्छी वर्षा की स्थिति में पुन: संभावना हो सकती है। इससे तथा तुड़ाई उपरांत फल सड़न से बचने हेतु बागों में फलों की थैलाबंदी करें तथा परिस्थिति को अनुसार डाइफेनोकोनाजोल 0.5 मिली के साथ तरल साबुन/स्टीकर 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी का छिड़काव वर्षा प्रारंभ के समय करें।

कीटों के संदर्भ में जानना आवश्यक है कि नाशी कीटों के अनेक प्राकृतिक शत्रु होते है। जिनमें परजीवी फफूँद, कीट तथा परभक्षी कीट प्रमुख हैं। परजीवी फफूँद प्राकृतिक रूप से आम के बागों में पाये जाते हैं और यह नाशीकीटों पर शैशवावस्था में ही संक्रमण कर उन्हें मार देते हैं। नाशीकीटों के परजीवी और परभक्षी कीटों की उपस्थित एवं बहुतायत नाशीकीटों की उपस्थिति के अनुरूप होती है। इसलिए बागों में कुछ नाशीकीटों का होना अत्यंत आवश्यक है। यदि हम नाशीकीटों को समाप्त करने का प्रयास करते हैं तो मित्र कीट पहले रसायनों के प्रभाव से और शेष भूख से मर जाते हैं। अत: ध्यान रखें कि बाग में अत्यंत आवश्यक

होने पर पूरे वर्ष में कीटनाशकों के 2-3 छिड़काव ही करें। ऐसा करने पर प्राकृतिक संतुलन बनाये रखा जा सकता है।

कुछ कीटों को भौतिक माध्यमों से भी सीमित किया जा सकता है। वर्षा उपरांत जुताई से गुजिया, थ्रिप्स, फल मक्खी, फल बेधक आदि कीटों के भूमिगत प्यूपा नष्ट होते हैं। जाला कीट की प्रारंभिक उपस्थिति देखते ही अगर पंजे से जाला तोड़कर कीटों का मार दिया जाये तो आर्थिक क्षति स्तर का प्रकोप रोका जा सकता है। गुजिया कीट को पेड़ पर चढ़ने से रोकने के लिये जनवरी माह में तनें पर पॉलिथीन पट्टी और तने एवं उसके आसपास की मृदा पर विवेरिया वेसियाना के कवक जाल एवं बीजाणुओं का छिड़काव प्रभावी है। शीतकाल में पेड़ों की कटाई-छँटाई के समय स्केल कीट से अत्यधिक ग्रस्त टहनियों को काट कर जला देना चाहिये। वर्षा ऋतु में यदि बाग में कुछ दिन के लिये जल भराव की स्थिति उत्पन्न हो जाये तो भी अनेक प्रकार के भूमिगत कीट-नष्ट हो जाते हैं। फल मक्खी को सीमित करने के लिये फेरोमोन ट्रैप का प्रयोग लाभकारी है।

जीवनाशी रसायन मुक्त उत्पादन

हमारा नैतिक दायित्व है कि खाद्य उत्पादन सदैव हानिकारक रयायनों से मुक्त होना चाहिये। बागों में प्रयोग किये जाने वाले जीवनाशी रसायनों की प्रभाविकता तथा उनके फलों में अवशेष रहने की एक समय सीमा होती है। अतः बाग में प्रयोग हेतु रसायनों का चुनाव करते समय ध्यान रखें कि फलों की तुड़ाई के समय से पूर्व उनमें रसायन अवशेष समाप्त हो जायें। सामान्य तौर पर तुड़ाई से पहले 30 दिन के समय में किसी भी रसायन का छिड़काव नहीं करना चाहिये।

फलों की गुणवत्ता

गुणवत्ता के अनेक मानक हैं। फलों के आकार, रंग, रूप के साथ उनके अंदर फफूँद या जीवाणु का संक्रमण और फल मक्खी की उपस्थित भी नहीं होना चाहिये। उचित परिपक्वता पर तुड़ाई होना भी फलों की उच्च गुणवत्ता के लिए आवश्यक है। डठल सहित तोड़क यंत्र से तुड़ाई उपरांत चेंप निकालना भी गुणवत्ता उन्नयन करने का माध्यम है। अच्छे-समान पकाव और उसके बाद अधिक दिनों तक फलों की गुणवत्ता बनाये रखने हेतु 52 डिग्री सेंटीगेड के गर्म पानी में इथरल (0.8-1.0 मिलीलीटर/लीटर) मिलाकर 5-10 मिनट तक फलों को उपचारित करना चाहिये।

विपणन

बाजार में प्रत्येक प्रकार के ग्राहक उपलब्ध हैं। सारा उत्पाद एक साथ बेचने से अच्छा लाभ नहीं मिल सकता। उच्च गुणवत्ता के फलों को उचित प्रकार के डिब्बों में पैक कर विशिष्ट बाजारों में तथा निम्न गुणवत्ता के फलों को मंडी भेजना चाहिये। साथ ही बाजार भाव पर नजर रख कर उचित समय पर तुड़ाई कार्य करनी चाहिये।

उपरोक्त सामान्य बातों को ध्यान में रखकर संस्थान द्वारा विभिन्न बागवानी क्रियाओं हेतु संस्तुत तकनीकों को अपनाया जाना चाहिये। इसके लिये हमारे संस्थान द्वारा मौसम आधारित साप्ताहिक कृषि परामर्श सेवा www.cish.res.in के उपयोग से भी लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण दिवस

मिट्टी पानी हवा सब, हुए प्रदूषित आज।
जन जीवन में प्लास्टिक, बना कोढ़ में खाज।।1।।
सब्जी फल हैं जहरयुत, जहरीले छिड़काव।
मजबूरी है आपकी, खाना हो तो खाव।।2।।
पैदा करता है अलग, अपने लिए किसान।
खिला रहा है बेधड़क, जहर आज इंसान।।3।।
अधिकारी सरकार में, जो हैं जिम्मेदार।
खा पीकर सब मस्त हैं, जनता है लाचार।।4।।
कहीं बढ़ रहा कैंसर, बढ़ता कहीं तनाव।
बच्चे भी गंजे दिखे, बदल गया बर्ताव।।5।।
हुंडे गायब हो गए, मिले प्लास्टिक ग्लास।
चाय पिएं गरमागरम, कैंसर होगा दास।।6।।
जैसे ही छिड़का जहर, कीड़ा मरा तुरंत।
चिड़िया ने खाया हुआ, बेचारी का अंत।।7।।
कंकरीट के बढ़ रहे, जंगल ही चहुँ ओर।
वृक्ष कट रहे दिनों दिन, बढ़ा प्रदूषण शोर।।8।।
जनसंख्या में वृद्धि है, जल स्रोतों का ह्रास।
इक दिन पानी के लिए, होगा युद्ध विनाश।।9।।
अपने घर के सामने, लगा लीजिए वृक्ष।
आसपास वातावरण, हो जाएगा स्वच्छ।।10।।

-डॉ. सुशील कुमार शुक्ल

थ्रिप्स कीट : आम पर महामारी

गुंडप्पा[1], पी.के. शुक्ल[2] एवं हरीश पाल[3]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

पिछले कुछ वर्षों में उत्तर प्रदेश के विभिन्न आम उत्पादक क्षेत्रों में थ्रिप्स के प्रकोप ने प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न कर दी है। इसके प्रकोप से फलों में हो रही कुरूपता और विकृति से किसानों को अत्यधिक अर्थिक क्षति हुई है। इसका प्रकोप मार्च माह में आरंभ होकर जुलाई में नयी पत्तियों के निकलने तक जारी रहता है। इस कीट का प्रकोप आम की कोंपलों, नयी पत्तियों, बौर तथा छोटे फलों पर होता है। थ्रिप्स कीट कोमल अंगों पर खुरच कर रस चूसता है। नयी कोपल पर डाल प्रकोप होने पर पत्तियाँ विकसित होने से पहले ही विकृत होकर सूख जाती हैं। नयी पत्तियाँ जब निकलती है तो बहुत मुलायम होती है। ऐसी दशा में थ्रिप्स का प्रकोप होने पर 2-3 दिन के अंदर पत्तियों का सारा हरित पदार्थ (क्लोरोफिल) चूस लेती हैं। थ्रिप्स द्वारा पत्तियों का रस चूसने के कारण पत्तियाँ सिकुड़ कर किनारे से मुड़ना आरंभ कर देती हैं और सूख के गिरने भी लगती हैं। प्राय: बौर में भी इनके लक्षण प्रकट हो जाते हैं। एक फल पर लगभग 80-90 तथा एक पत्ती पर 150-160 अधिकतम संख्या में थ्रिप्स देखे जा सकते हैं। परागण उपरांत विकसित हो रहे फलों पर इसका प्रकोप फूलों को असमय ही गिरा देता है और यदि फल विकसित होते भी हैं तो वे सामान्य स्वरूप और आकार नहीं ले पाते। फलों की त्वचा पर भूरा-खुरदरा दरारयुक्त मृत भाग मृतोपजीवी एवं परजीवी फफूँदों को भी उगने में सहायक होता है जिससे वर्षा के समय थ्रिप्स से प्रभावित फल जल्द ही सड़ जाते हैं।

कीट का विवरण

थ्रिप्स एक अत्यन्त छोटा कीट है। यह हल्के भूरे-पीले, काले या मटमैले रंग का होता है। थ्रिप्स की 20 प्रजातियाँ आम की फसल को क्षति पहुँचाती हैं जिसमें से *सिरटोथ्रिप्स डौरसैलिस* उत्तर प्रदेश में अधिकता से पाया गया है। थ्रिप्स का जीवन चक्र चार अवस्थाओं में पूरा होता है, अंडा, निम्फ, प्यूपा तथा प्रौढ़। प्रौढ़ अवस्था को प्राप्त करने के बाद कीट एक से तीन दिन बाद समागम करते हैं तथा इसके एक-दो दिन बाद मादा अंडा देना प्रारंभ करती है। अंडे पत्तियों तथा फलों के ऊपर अलग-अलग दिये जाते हैं। इनका रंग पीला-गुलाबी तथा गहरा भूरा होता है। मादा अपने जीवन काल में लगभग 35-108 अंडे देती हैं जो तीन से पांच दिन में फूटते हैं। अंडे से निकलने के बाद शिशु (निम्फ) अल्प अवस्था में रहते हैं। इनका रंग पीला-भूरा होता है। ये पत्तियों के निचली सतह और बौर का रस चूसते हैं। शैशव काल 5-10 दिन का होता है। आकार में ये प्रौन जैसे लगते हैं किन्तु इनके पंख नहीं होते हैं। प्यूपा में पंख दिखने लगते हैं, यह वक्ष के ऊपर झुके रहते हैं। प्यूपा क्रियाशील नहीं होते परन्तु छेड़ने पर थोड़ी गति करते हुए प्रतीत होते हैं। यह अवस्था प्राय: भूमि पर कूड़े-करकट में या मृदा के अंदर पायी जाती है। प्यूपा अवस्था 4-7 दिन की होती है। प्रौढ़ कीट पीले, भूरे या काले रंग के होते हैं। इसका जीवन चक्र गर्मियों में 14 दिन तथा सर्दी में 24 दिन में पूरा होता है। पूरे वर्ष के दौरान यह कीट अपनी दस पीढियाँ संपन्न कर सकता है।

प्रबंधन

इस कीट के प्रबंधन पर संग्रहित आँकड़ों से स्पष्ट हुआ कि जिन बागों में जीवनाशी रसायनों का न्यूनतम प्रयोग किया गया तथा बाग के आसपास सरसों की फसल उगायी गयी, वहाँ मित्र कीटों द्वारा स्वत: ही थ्रिप्स को नियंत्रित किया गया और अर्थिक क्षति नहीं हुई। इसके विपरीत जिन बागों में फरवरी से अप्रैल माह के मध्य 6-7 बार जीवनाशी रसायनों का प्रयोग किया गया, उनमें यह कीट नियंत्रित नहीं हुआ और गंभीर क्षति हुई। स्पष्ट है कि कीटनाशी रसायनों का प्रयोग कम और बहुत सोच-समझ कर ही करना चाहिये। इससे उत्पादन लागत में कमी के परिणामस्वरूप अधिक अर्थिक लाभ अर्जित किया जा सकता है।

इस कीट को सुषुप्तावस्था में नष्ट करना काफी

[1]वैज्ञानिक, [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं [3]स्काउट

प्रभावी होता है। अत: अक्टूबर से दिसंबर माह के मध्य में बाग की एक जुताई करने से इस कीट के प्यूपा जमीन से बाहर निकल कर सूख जाते हैं या अन्य कीट उन्हें खा लेते हैं। फल उत्पन्न होने के समय से 30 दिन तक की अवस्था महत्वपूर्ण होती है। इस बीच आवश्यकतानुसार स्पाइनोसैड 44.2 एस.सी. (1 मिलीमीटर प्रति 5 लीटर पानी) तथा साथ ही स्टीकर (भिंगोने वाला साबुन) 1.0 मिलीमीटर प्रति लीटर मिला कर प्रकोप प्रारंभ होने पर छिड़काव करना चाहिये। इसके 15 दिनों के बाद थायमेथोक्जाम 0.3 मिलीमीटर प्रति लीटर का छिड़काव करना चाहिये।

झीनी-झीनी बीनी चदरिया

झीनी-झीनी बीनी चदरिया
काहे कै ताना, काहै कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया॥

आठ कँवल दल चरखा डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया।
साँई को सियत मास दस लागै, ठोक-ठोक कै बीनी चदरिया॥

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ी कै मैली कीनी चदरिया।
दास 'कबीर' जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया॥

-कबीरदास

आम में गलन (जेली सीड) की समस्या एवं उसका प्रबंधन

वी.के. सिंह[1]

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

आम के उत्पादन एवं क्षेत्रफल में अग्रणी रहने के बावजूद उत्पादकता एवं गुणवत्ता वाले उत्पादन में भारत अन्य देशों से काफी पीछे है, जबकि यहाँ से आम के फलों एवं इससे निर्मित उत्पादों के निर्यात की प्रबल संभावनाएँ विद्यमान हैं। आम के फलों में बहुत से दैहिक विकार आ जाने से गुणवत्तायुक्त उत्पादन एवं निर्यात में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। दैहिक विकारों में कोयलिया, फलों में आंतरिक निर्जीवता, फलों का असामान्य परिपक्वन, स्पंजी ऊतक, फलों में गलन (जेली सीड) आदि प्रमुख हैं।

विगत कुछ वर्षों में आम के फलों में गलन (जेली सीड) एक गंभीर समस्या के रूप में उभर कर सामने आया है। आम के गलन (जेली सीड) में गुठली के पास का गूदा अधिक पिलपिला हो जाता है जिससे फलों की गुणवत्ता प्रभावित हो जाती है और फल भी खाने में स्वादिष्ट भी नहीं लगते हैं। उत्तर भारत की व्यावसायिक प्रजाति दशहरी इस समस्या से सबसे अधिक प्रभावित है जिसके कारण दशहरी आम की माँग में निरंतर कमी हो रही है तथा इसके फलों का निर्यात भी क्षमता के अनुरूप नहीं हो पा रहा है। आम की संकर प्रजाति आम्रपाली भी इस समस्या से प्रभावित पायी गयी है, जबकि लंगड़ा, बाम्बे ग्रीन एवं चौसा के फलों में यह विकार समय से फलों की तुड़ाई न करने पर ही पाया गया है। इस विकृति के कारण फलों का ठोसपन (फर्मनेस) कम होने के साथ-साथ उनकी भंडारण क्षमता भी कम हो जाती है। इस तरह के फल देखने में तो सामान्य फलों के समान ही

गलन (जेली सीड) से प्रभावित बाहर से सामान्य दिखता हुआ फल

विभिन्न अवस्थाओं पर गलन (जेली सीड) से प्रभावित फल

लगते हैं, परन्तु इन्हें काटने पर गुठली के पास का चारों तरफ का भाग जेलीनुमा गहरा पीला एवं अत्यंत मुलायम रहता है। प्रभावित फलों का पोषकमान (न्यूट्रीशनल वैल्यू) भी कम हो जाता है।

उत्तर प्रदेश के आम फल पट्टी प्रक्षेत्रों में गलन (जेली सीड) की समस्या

उत्तर प्रदेश के सहारनपुर, मेरठ, बिजनौर, बुलंदशहर, लखनऊ एवं वाराणसी फल पट्टी क्षेत्रों के आम के बागों के फलों का सर्वेक्षण कर इन बागों से भिन्न-भिन्न समय पर परिपक्व फलों की तुड़ाई कर उनमें गलन (जेली सीड) के प्रभाव का मात्रात्मक अध्ययन कर इन सभी बागों की मृदा एवं पत्तियों के पोषक तत्वों का विश्लेषण भी किया गया।

सहारनपुर एवं मेरठ के बागों के सर्वेक्षण अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि जो फल 10 से 20 जून के बीच तोड़े गये, उनमें गलन की समस्या 5 प्रतिशत से कम थी जबकि जो फल इसके बाद (20 से 30 जून के मध्य) तोड़े गये, उनमें यह समस्या लगभग 20-30 प्रतिशत तक पायी गयी। लखनऊ एवं इसके समीपवर्ती क्षेत्रों के बागों के फलों में जून के द्वितीय सप्ताह के पहले (5-10 जून के मध्य) तोड़े गये फलों में यह समस्या बहुत कम (5-10 प्रतिशत) पायी गयी। जून के द्वितीय एवं तृतीय सप्ताह के बीच में तोड़े गये फलों में यह समस्या 20-30 प्रतिशत तक तथा इसके बाद (20 जून के उपरान्त) तोड़े गये फलों में जेली सीड का प्रभाव 50 प्रतिशत तक पाया गया। वाराणसी क्षेत्र में स्थित बागों के फलों में जेली सीड का प्रभाव कम (5 से 20 प्रतिशत तक ही) पाया गया।

लखनऊ के काकोरी ब्लॉक के दशहरी गाँव में स्थित मातृ दशहरी वृक्ष (100 वर्ष से अधिक उम्र) के फलों में भी यह समस्या देखी गयी है। उत्तराखंड की कुमायूँ पहाड़ियों एवं घाटी में लगे आम के वृक्षों/बागों की स्थिति का अध्ययन जी.पी.एस. द्वारा किया गया तथा इन क्षेत्रों में भी दशहरी प्रजाति के फलों में यह समस्या देखी गयी।

[1]प्रधान वैज्ञानिक

मृदा एवं पौधों/वृक्षों में पोषक तत्वों का स्तर एवं इसका गलन (जेली सीड) समस्या से संबंध

उत्तर प्रदेश के विभिन्न जनपदों (वाराणसी, सहारनपुर, मेरठ एवं लखनऊ) के आम के फल पट्टी प्रक्षेत्रों में स्थित बागों का सर्वेक्षण करते समय परीक्षण हेतु बागों से मृदा नमूने संकलित किये गये। इन मृदा के नमूनों का प्रयोगशाला में प्रमुख तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटैशियम), गौण तत्वों (सल्फर, कैल्सियम एवं मैंग्नीशियम) तथा सूक्ष्म तत्वों (बोरॉन, लोहा, मैंगनीज, कॉपर एवं जिंक) का विश्लेषण किया गया जिसमें यह पाया गया कि लखनऊ एवं वाराणसी जनपदों के आम के बागों की मृदा में फॉस्फोरस, कैल्सियम, बोरॉन एवं जस्ते की कमी पायी गयी, जबकि सहारनपुर, मेरठ एवं लखनऊ के आम के बागों की मृदा में पोटैशियम की कमी पायी गयी। अनेक स्थानों पर इन तत्वों का स्तर क्रांतिक स्तर के आसपास अथवा कम पाया गया।

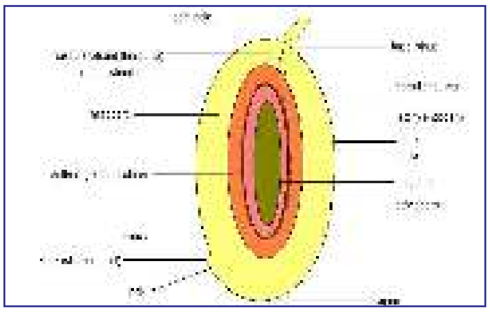

ऊतक की गलन से प्रभावित फल का हिस्टोलाजिकल व्यू

गलन (जेली सीड) की समस्या के कारण

अध्ययन में गलन (जेली सीड) समस्या के अनेक कारण पाये गये जो निम्नलिखित हैं।

1. वाष्पोत्सर्जन एवं पोषक तत्वों के संवहन में कमी

पौधों में पोषक तत्वों का वाष्पोत्सर्जन के माध्यम से संवहन एवं जेली सीड के प्रभाव में संबंध स्थापित करने हेतु शोध किये गये। इसके लिये संवेदनशील प्रजाति दशहरी एवं अपेक्षाकृत सहिष्णु प्रजाति चौसा की पत्तियों एवं फलों में वाष्पोत्सर्जन के साथ-साथ पोषक तत्वों के संवहन का अध्ययन फलों के विकास की विभिन्न अवस्थाओं पर किया गया। दोनों ही प्रजातियों की पत्तियों के वाष्पोत्सर्जन दर में कोई प्रभावी अंतर नहीं पाया गया परन्तु फलों में इस प्रक्रिया में बहुत अन्तर पाया गया। मई एवं जून के प्रथम सप्ताह में दशहरी के फलों में वाष्पोत्सर्जन की दर (3.7 एवं 4.6 मिली मोल वाष्प प्रति वर्ग मीटर प्रति सेकेंड) चौसा (6.6 एवं 9.3 मिली मोल वाष्प प्रति वर्ग मीटर प्रति सेकेंड) से काफी कम पायी गयी।

अध्ययनोपरान्त फलों के वाष्पोत्सर्जन एवं जेली सीड समस्या में ऋणात्मक संबंध पाया गया। दशहरी प्रजाति के फलों में कम वाष्पोत्सर्जन इस प्रजाति का विशेष स्वभाव पाया गया जिसके फलस्वरूप वाष्प एवं पोषक तत्वों का संवहन मृदा एवं पत्तियों के माध्यम से उपयुक्त समय में फलों तक प्रचुर मात्रा में नहीं हो पाता है जिससे गलन की समस्या अधिक होती है। फलों को देर से या एक-दो वर्षा के बाद तोड़ने पर यह समस्या बढ़ जाती है। इसका मुख्य कारण वातावरण की आर्द्रता बढ़ जाना तथा वाष्पोत्सर्जन की दर कम हो जाना है।

2. पोषक तत्वों एवं द्वितीयक (सेकेंड्री) मेटाबोलाइट्स का असंतुलन

गलन से प्रभावित एवं सामान्य फल के गूदों में पोषक तत्वों एवं द्वितीयक उपापचयी तत्वों में काफी महत्वपूर्ण अन्तर पाया गया। प्रभावित फलों के गूदे में मुख्य पोषक तत्वों यथा कैल्सियम (298 पीपीएम), पोटैशियम (80 पीपीएम) का स्तर सामान्य फलों के गूदे की अपेक्षा कम (क्रमशः 382 एवं 110 पीपीएम) तथा नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं लौह का स्तर अधिक (क्रमशः 0.187 प्रतिशत, 0.018 प्रतिशत एवं 37 पीपीएम) पाया गया। फलों में कैल्सियम ठोसपन एवं पोटैशियम गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। अतः प्रभावित फलों में इन दोनों तत्वों का कम होना स्वाभाविक है। सूक्ष्म तत्वों में जस्ते का स्तर प्रभावित फलों में अधिक पाया गया, जबकि मैंगनीज, कैडमियम एवं क्रोमियम लगभग नगण्य पाये गये। प्रभावित फलों में निकिल का स्तर (0.71 पीपीएम) सामान्य फलों (1.82 पीपीएम) की अपेक्षा कम पाया गया। गलन से प्रभावित आम के फलों के गूदे में निकिल का कम पाया जाना शोध का एक नवीन परिणाम है। यह विदित है कि निकिल विभिन्न उपापचयी प्रक्रिण्वों (एन्जाइम्स) की क्रियाओं में उत्प्रेरक का कार्य करता है। अतः गलन से प्रभावित फलों में इसके स्तर में कमी के दृष्टिगत इसकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है।

जैव निर्धारण (बायोएसे) तकनीक से ज्ञात हुआ कि गलन से प्रभावित फलों में ऑक्सीकरणरोधी (ऐंटीऑक्सीडेंट)

क्षमता आधे से भी कम हो जाती है। प्रभावित फलों में एस्कार्बिक अम्ल के स्तर में कमी पायी गयी, परन्तु सम्पूर्ण फिनाल्स एवं कैरोटीनायड के स्तर में विशेष अंतर नहीं पाया गया। ऑक्सीकरणरोधी परिमाण (एफआरएपी एवं डीपीपीएच) तथा ऑक्सीकरणरोधी प्रक्रिण्व कैटालेज एवं परऑक्सीडेज की क्रियाएँ भी प्रभावित भाग में काफी कम पायी गयी। अतः अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ है कि गलन से प्रभावित फलों की गुणवत्ता उपापचयी क्रियाओं के कम होने से काफी कम हो जाती हैं।

3. फलों के आकार एवं वजन का गलन समस्या पर प्रभाव

अध्ययन में यह भी पाया गया है कि छोटे फलों के परिपक्वन हेतु बड़े फलों की अपेक्षा कम हीट यूनिट की आवश्यकता होती है, जबकि छोटे एवं बड़े फलों की तुड़ाई एक साथ ही की जाती है। ऐसी परिस्थितियों में यह स्पष्ट हो जाता है कि बड़े फलों के साथ छोटे फलों की तुड़ाई करने पर इन्हें अधिक हीट यूनिट मिल जाने के कारण छोटे फलों में जेली सीड की समस्या अधिक बढ़ जाती है।

4. गलन समस्या का रोग कारक से संबंध

आम में जेली सीड की समस्या में रोग कारक की भूमिका को ज्ञात करने के दृष्टिकोण से तीन प्रकार के फल लिये गये। 1. परिपक्व, ताजा तोड़ा गया फल (बिना पका हुआ), 2. स्वस्थ, पका हुआ फल एवं 3. विकृत, पका हुआ फल। तीसरी प्रकार के विकृत पके हुए फल के गूदे को दो भाग में बाँटा गया-प्रथम गुठली के पास का पिलपिला भाग और दूसरा फल के छिलके के नीचे वाला भाग। इन सभी ऊतकों को निर्धारित माध्यम में प्रतिस्थापित कर रोग कारक की भूमिका ज्ञात करने हेतु प्रयोगशाला में अध्ययन किया गया और लगभग 48 घंटे, 28° सेंटीग्रेड उष्मायन (इनक्यूबेशन) करने पर भी रोग कारक सूक्ष्मजीव नहीं प्राप्त हुए। इससे स्पष्ट होता है कि आम में गलन (जेली सीड) की समस्या में रोग कारक सूक्ष्मजीवों की कोई भूमिका नहीं है।

5. दैहिक एवं रासायनिक क्रियाओं में परिवर्तन

आम की चौसा, दशहरी एवं लंगड़ा प्रजाति के परिपक्व फलों का भंडारण के पूर्व एवं भंडारण के 4, 6 एवं 9 दिनों के बाद विभिन्न दैहिक एवं रासायनिक क्रियाओं हेतु विश्लेषण किया गया। इस क्रिया में कठोरता, क्रियात्मक भार, श्वसन क्रिया, एथिलीन निर्माण, क्लोरोफिल में परिवर्तन, कुल विलेय ठोस, अम्लीयता में बदलाव के साथ-साथ पेक्टिन मिथाइल इस्टरेज एवं पॉलीगैलोक्टोयूरोनेज प्रक्रिण्व (एन्जाइम) जो कठोर ऊतक के पेक्टिन को कम कर गूदे को मुलायम करने का अध्ययन किया गया। तीनों प्रजातियों में इन सभी क्रियाओं में काफी भिन्नता पायी गयी। उल्लेखनीय है कि चौसा प्रजाति की अपेक्षा गलन (जेली सीड) की समस्या ग्राह्य प्रजाति दशहरी में विशेषतः एथिलीन 30 प्रतिशत एवं पॉलीगैलोक्टोयूरोनेज 50 प्रतिशत अधिक पाया गया। दशहरी प्रजाति में इन दोनों क्रियाओं का अधिक होना फल के गूदे को अत्यधिक नरम कर देता है जो अन्ततोगत्वा गलन (जेली सीड) का स्वरूप ले लेता है।

गूदे का ऊतकलयन

गलन (जेली सीड) प्रभावित एवं सामान्य फलों के गूदों का ऊतकलयन किया गया। प्रभावित फलों के गूदे की कोशिकाएँ निर्जीव एवं अलग-अलग होती हुई दिखायी दी, जबकि सामान्य फलों के गूदे की कोशिकाएँ स्वस्थ एवं एक दूसरे से जुड़ी हुई पायी गयीं। सूक्ष्मदर्शीय अध्ययन से सामान्य गूदे में जाइलम वैसेल्स साबुत एवं जुड़े हुए दिखायी दिये तथा टेनिनफेरस कोशिका, स्टार्च इडियोब्लास्ट एवं रेजिन नलिकायें भी स्वस्थ दिखायी दी, परन्तु प्रभावित फलों के गूदे की कोशिकाओं के बीच काफी वात स्थान (एयर स्पेस) दिखायी दिया जिसमें मंड (स्टार्च) बिखरा हुआ देखा गया।

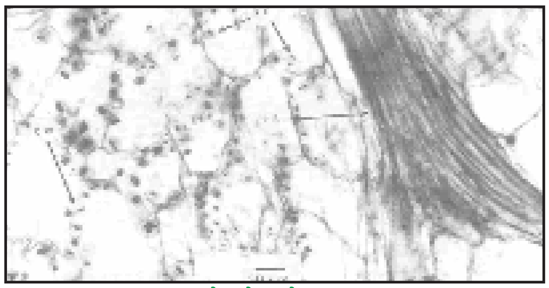

सामान्य फलों के गूदे का ऊतकलयन

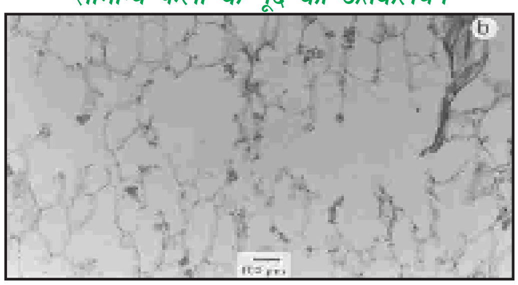

प्रभावित फलों के गूदे का ऊतकलयन

जेली सीड ग्राह्य प्रजाति दशहरी एवं सहिष्णु प्रजाति चौसा के फलों के छिलके का भी ऊतकलयन किया गया। दशहरी के फलों के छिलकों में वातरंध्र की चौड़ाई चौसा की अपेक्षा काफी अधिक पायी गयी जिससे यह परिलक्षित होता है कि दशहरी में बड़े वातरंध्रों के होने के कारण इसके फलों से जल का ह्रास अधिक हो जाता जिससे ऊतक फट जाते हैं। फलस्वरूप, फलों में गलन की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

बीजों का दैहिक स्तर एवं गलन की समस्या

गलन (जेली सीड) की समस्या से प्रभावित फलों के बीजों की अंकुरण क्षमता ज्ञात किये जाने के भी प्रयास किये गये। इसके अन्तर्गत इस समस्या से ग्रस्त दशहरी प्रजाति के प्रभावित एवं सामान्य फलों के बीजों को एकत्रित कर उन्हें एक ही समय पर अलग-अलग गमलों में बो दिया गया तथा इन गमलों को एक समान परिस्थितियों में रखा गया। उल्लेखनीय है कि जेली सीड से प्रभावित फलों से प्राप्त बीजों का अंकुरण प्रथम सप्ताह में ही हो गया जबकि सामान्य फलों से प्राप्त बीजों में अंकुरण द्वितीय एवं तृतीय सप्ताह में दिखायी दिया। इस परिप्रेक्ष्य में अंकुरण को प्रभावित करने वाले एन्जाइम्स यथा लाइपेज (वसा प्रकिण्व) एवं अल्फा-एमाइलेज (शर्करा प्रकिण्व) के स्तर का भी अध्ययन किया गया जो जेली सीड से प्रभावित बीजों में अधिक पाये गये। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि गलन की समस्या का बीज के दैहिक स्थिति से सीधा संबंध है। ऐसा भी पाया गया है कि यदि पेड़ पर आवश्यकता से अधिक दिन तक आम के फल को पेड़ पर छोड़ दिये जायें तो आम की पूरी फसल गलन की समस्या से प्रभावित हो जाती है तथा वीवीपेरी की समस्या भी देखी गयी है जिसमें पेड़ पर ही फलों के बीजों में अंकुरण शुरू हो जाता है।

सामान्य एवं विकृत बीजों का अंकुरण

गलन (जेली सीड) की समस्या का प्रबंधन

आम के फलों की गुणवत्ता के लिये विभिन्न पोषक तत्वों में कैल्सियम, पोटैशियम एवं बोरॉन की महत्वपूर्ण भूमिका पायी गयी। इन तीनों तत्वों को विभिन्न मात्राओं में वृक्षों में फलन अवस्था के पहले एवं फलन अवस्था के समय प्रयोग कर गलन की समस्या का समाधान किया जा सकता है। इन तत्वों के प्रयोग से फलों को देर से भी तोड़ने पर गलन विकार में काफी कमी पायी गयी।

1. दशहरी में जेली सीड समस्या के प्रबंधन हेतु किये गये विभिन्न सार्थक शोध परिणामों को एकीकृत कर इस समस्या से होने वाली गुणवत्ता क्षति को अत्यंत कम किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत काली पॉलिथीन की पलवार (100 माइक्रान मोटाई) का प्रयोग बोरेक्स 150 ग्राम प्रति वृक्ष की दर से नवंबर के द्वितीय सप्ताह में मृदा में प्रयोग करने तथा मई के द्वितीय सप्ताह (फल तोड़ने के एक माह पूर्व) में फलों पर 2.0 प्रतिशत डाईहाइड्रेटेड कैल्सियम क्लोराइड तथा 1.0 प्रतिशत पोटैशियम सल्फेट का छिड़काव करने की संस्तुति की जाती है। उल्लेखनीय है कि इन परिणामों का अनुकरणीय परीक्षण भी बागवानों के प्रक्षेत्रों में किया गया।
2. फलों को निर्धारित प्रजाति के परिपक्वता के अनुसार तुड़ाई करने पर गलन की समस्या में काफी कमी पायी जा सकती है।

फल गिरना, फटना और सड़न : समस्या एवं समाधान

दीपक कुमार जैन[1], आनन्द सिंह जोधा[2] एवं हेमन्त स्वामी[3]

कृषि विज्ञान केन्द्र[1,2] बड़गाँव, उदयपुर, कीट विज्ञान विभाग[3], राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर

"करम किये जा, फल की इच्छा मत कर ऐ इंसान" कहावत सुनने में तो बहुत अच्छा लगता है, परन्तु जब किसान के लिये ऐसा कहा जाये तो उसके दिल या भावनाओं पर क्या गुजरती है इसका अनुमान लगाना मुश्किल है, वह भी तब जब फल प्राप्ति का समय आये और फल खराब हो जाता है या सड़ जाये। कभी अपनी गाढ़ी कमाई का हिस्सा खुले आसमान के नीचे रखकर देखिये, रात भर नींद नहीं आयेगी। विचार कीजिये उस किसान के साथ क्या गुजरती होगी, जब फल पककर तैयार हो जाते हैं और फलमक्खी उसे खराब कर देती है, सड़ा देती या फल फट या गिर जाते हैं। अतः प्रस्तुत इस लेख में इन्हीं समस्याओं को ध्यान में रखकर फल फटने, गिरने, सड़ने एवं फलमक्खी से नुकसान एवं उनके प्रबंधन के बारे में वर्णन किया गया है।

(अ) फलों का गिरना

फल गिरने की समस्या मुख्य रूप से नीबू वर्गीय फलों (संतरा, माल्टा, ग्रेपफुट) आम, सेब, बेर, नाशपती एवं आँवला में अधिक गंभीर है। फूलों तथा फलों का गिरना एक प्राकृतिक घटना है, जो आरंभ में खाद्य पदार्थों के आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण होती है। गिरने से पहले फल और डंठल के जोड़ पर एक विशेष प्रकार की कोशिकाओं की परत बन जाती है, जिसके अन्दर खाद्य पदार्थ पहुँचाने वाले संवहन ऊत्तक नहीं होते हैं। यह स्थान बहुत कमजोर हो जाता है, जिसे विगलन पर्त कहते हैं तथा फल इसी स्थान से टूटकर गिर जाते हैं। जब फल परिपक्व अवस्था में पहुँचते हैं, तो ऐसी पर्त सभी फलों में बनती है, लेकिन परिपक्व अवस्था में पहले इस पर्त का बनना हानिकारक है क्योंकि इससे परिपक्व होने से पहले ही आवश्यकता से अधिक फल गिर जाते हैं तथा फलोत्पादकता के सामने आर्थिक समस्या उत्पन्न हो जाती है। इस समस्या के प्रमुख कारण एवं उनके समाधान निम्नलिखित हैं।

फल क्यों गिरते हैं? फल गिरने के अनेक कारण हैं, जिनमें हार्मोन की कमी, नाइट्रोजन की कमी, नमी की कमी, प्रतिकूल मौसम (तेज एवं गर्म हवा तथा पाला) तथा कीड़े तथा बीमारी का प्रकोप प्रमुख हैं।

फलों का गिरना कैसे रोकें : फल गिरने के कारणों को दूर करने के निम्नलिखित उपाय हैं।

हार्मोन की कमी : बाजार में ऐसे बहुत से हार्मोन उपलब्ध हैं जो विगलन की परत को बनने से रोकते हैं। इनमें नैफथेलीन एसिटिक एसिड (एन.ए.ए.), 2, 4 डाइक्लोरोफिनॉक्सी एसिटिक एसिड (2, 4 - डी) प्रमुख हैं। इन रसायनों के उचित मात्रा वाले घोल का छिड़काव पौधों पर सही समय पर करने से फलों का गिरना कम हो जाता है और फलों के गुणों में भी वृद्धि होती है। कुछ प्रमुख फलों में इनका उपयोग लाभदायक है, जो निम्नलिखित हैं।

1. **नीबू वर्गीय फल :** नीबू वर्गीय फल वृक्षों पर 2, 4 - डी, 10 पी. पी. एम. (10 मिलीग्राम 2, 4 - डी प्रति लीटर पानी) के घोल के दो छिड़काव मई और सितंबर में कर फलों को गिरने से बचाया जा सकता है।
2. **आम :** आम के फलों को गिरने से बचाने के लिये 10-15 पी.पी.एम. 2, 4-डी या एन.ए.ए. (10-15 मिलीग्राम रसायन प्रति लीटर पानी) के घोल का छिड़काव अप्रैल के महीने में लाभदायक होता है।
3. **सेव :** मई के महीने में 10 पी.पी.एम., एन.ए.ए.. (10 मिलीग्राम रसायन प्रति लीटर पानी) के घोल का छिड़काव कर फलों को गिरने से बचाया जा सकता है।
4. **अंगूर :** 'ब्यूटी सीडलैस' किस्म में गुच्छे के दाने गिरने की समस्या अधिक होती है। इस समस्या के समाधान के लिये फल पकने से लगभग 15 दिन पहले 100 पी.पी.एम. प्लेनोफिक्स के घोल का छिड़काव उपयोगी होता है।
5. **लीची :** लीची के फल बनने के तुरन्त बाद जिब्रेलिक एसिड (जी.ए.) या एन.ए.ए. या 2,4-डी में किसी

[1]विषय-विशेषज्ञ (पौध संरक्षण), [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं [3]सहायक प्राध्यापक

एक हार्मोन के 100 पी.पी.एम. (100 मिलीग्राम रसायन प्रति लीटर पानी) के घोल का छिड़काव कर फलों को गिरने से बचाया जा सकता है।

नाइट्रोजन की कमी : फल बनने के बाद फलों की वृद्धि बहुत तेजी से होती है और मुख्य रूप से इसी समय नाइट्रोजन की कमी होती है। इसलिए फल वृक्षों में नाइट्रोजन धारी उर्वरक की आधी मात्रा फूल खिलने के पहले तथा आधी मात्रा फल बनने के बाद देकर इस कमी को पूरा किया जा सकता है। कुछ फल वृक्षों में नाइट्रोजन की अधिक कमी होती है। इसलिए इसे पर्णीय छिड़काव के रूप में भी दिया जा सकता है। पर्णीय छिड़काव का तात्पर्य पोषक तत्वों के घोल का छिड़काव करना होता है। इस विधि द्वारा दिये गये पोषक तत्वों का पत्तियों द्वारा शीघ्र अवशोषण होता है। कुछ प्रमुख फलों में पर्णीय छिड़काव उपयोगी सिद्ध हुए हैं जो निम्नलिखित हैं।

1. **नीबू वर्गीय फल :** मार्च के महीने में एक प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव उपयोगी है।
2. **आम :** अप्रैल के महीने में 1 या 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव कर फलों को गिरने से बचाया जा सकता है।

प्रतिकूल मौसम : तेज, गर्म एवं ठंडी हवाएँ भी फल के गिरने में सहायक होती हैं। तेज हवा होने की स्थिति में फल हिलते हैं तथा एक-दूसरे से रगड़ खाकर गिर जाते हैं। तेज हवा की समस्या से बचने के लिये बाग के चारों तरफ, मुख्य रूप से पश्चिमी दिशा में वायुरोधी वृक्ष लगाना उपयोगी रहता है। गर्म हवा के कारण वायुमंडल का तापमान बढ़ जाता है। तापमान के अधिक होने पर पत्तियों एवं फलों से नमी अधिक मात्रा में निकल जाती है जिसमें फलों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप, नमी की कमी के कारण फल गिरने लग जाते हैं। इस समस्या के निदान के लिये आवश्यकतानुसार बाग की सिंचाई कर पौधों के पास नमी बनाये रखनी चाहिये। पाला पड़ने से पहले बाग की सिंचाई आवश्यक है तथा जिस दिन पाला पड़ने की संभावना हो, उस दिन बाग के चारों तरफ धुआँ करना लाभप्रद होता है।

नमी की कमी : फलों में नमी की कमी होने पर फलों की आकृति विकृत हो जाती है और फल गिरने लगते हैं। फल वृद्धि के समय बाग में नमी का बराबर बना रहना अत्यन्त आवश्यक है। अत: गर्मी में 8-10 दिन के अंतर पर तथा सर्दी में 20-25 दिन के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिये।

रोग एवं कीड़े : कुछ कीट एवं रोग का प्रकोप फूल निकलने एवं फल बनने के समय अधिक होता है जिसके परिणामस्वरूप फूल एवं फल गिरने लगते हैं तथा पैदावार में बहुत कमी हो जाती है। अत: इनका नियंत्रण आवश्यक है।

चूर्णी रोग : यह रोग एक प्रकार के कवक से होता है। इस रोग से फूल, छोटे फल एवं पत्तियाँ प्रभावित होती हैं। प्रभावित भागों पर सफेद पाउडर की तरह एक पर्त जम जाती है। प्रभावित फूल एवं फल के बनने के पहले तथा फल अपरिपक्व अवस्था में गिर जाते हैं। इस रोग से आम एवं बेर की फसलों को अधिक हानि होती है। रोग के बचाव के लिये 2-3 छिड़काव किये जायें। पहला छिड़काव सल्फेक्स (घुलनशील गंधक), 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर जब 80-90 प्रतिशत मंजरिया निकल गयी हों परन्तु फूल खिलने से पहले दूसरा छिड़काव केराथिन का 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर जब फल सरसों के दाने के बराबर हो जायें तब तथा तीसरा छिड़काव दूसरे छिड़काव के 15 दिन बाद यदि रोग दिखायी दे तो केलेक्सीन 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें। इन कवकनाशियों के स्थान पर गंधक चूर्ण के 2-3 भुरकाव भी प्रभावकारी है।

(ब) फलों का फटना

उद्यानिकी फसलों में फलों का फटना एक गंभीर समस्या है। ये फलों की गुणवत्ता को ही कम नहीं करता अपितु उनमें रोग और कीट आक्रमण की संभावना को भी बढ़ा देता है। सेब, अंगूर, लीची, अनार आदि के फल तोड़ने से पूर्व ही फट जाते हैं। फलों में यह समस्या निम्नलिखित कारणों से होती है।

1. **तापमान :** अत्यधिक तापमान के कारण पौधों एवं मृदा में जल की कमी हो जाती है जिससे फलों की बाहरी त्वचा सख्त हो जाती है। तदनुपरान्त पौधों को पानी देने से फलों के अंदर ऊत्तकों के अनुपात में वृद्धि नहीं हो पाती जिससे फल फट जाते हैं। कागजी

नीबू एवं देशी नीबू में इस समस्या को फलों के परिपक्व होने से पूर्व देखा जा सकता है।

2. **नमी :** अत्यधिक वातावरणीय तापमान के तत्काल बाद सिंचाई करने से फलों में फटने की समस्या हो जाती है। नमी के कारण फल के भार एवं आयतन में वृद्धि तो होती है, किन्तु उसी अनुपात में फल के बाहरी आवरण की वृद्धि नहीं हो पाती जिसके परिणामस्वरूप फल फट जाते हैं।

3. **हवा :** गर्म एवं तेज हवाओं के कारण भी फल फटते हैं। गर्म हवाओं के चलने पर फल एवं पौधे में नमी की कमी हो जाती है जिसके कारण फल फट जाते हैं।

4. **परिपक्वता :** फलों की परिपक्वता के साथ-साथ उसमें घुलनशील ठोस पदार्थ तथा शर्करा बढ़ती है। यदि फलों के बाह्य कोष में सेलूलोज तथा लिग्निन का जमाव नहीं होता, तो भी फल फटने की समस्या होती है। लिग्निन का जमाव फलों की परिपक्वता से प्रभावित होता है।

5. **पोषक तत्व :** चेरी एवं अनार के फल बोरॉन की कमी के कारण फट जाते हैं। सेब के फल बोरॉन, ताँबा तथा जिंक की कमी के कारण फटाते हैं।

6. **कीट एवं रोग :** कीट एवं रोग से संक्रमित फल भी फट जाते हैं।

7. **मूलवृन्तः :** कुछ फल वृक्षों में मूलवृन्त उपयुक्त नहीं होने के कारण भी फल फट जाते हैं। दशहरी आम में मेलेपेलियम किस्म के मूलवृन्त का प्रयोग करने पर फल अधिक फटते हैं जबकि एमबेलावी किस्म के मूलवृन्त का प्रयोग करने पर फल कम फटते हैं।

8. **किस्म का प्रभाव :** फलों का फटना किस्म के ऊपर भी निर्भर करता है। आम के लंगड़ा, बनारसी, फजली, जाफरानी और नीलम फलों में फटने की समस्या कम होती है। केला की हरी छाल तथा रसथाली किस्मों में अन्य किस्मों की अपेक्षा फल अधिक फटते हैं। लीची की देहरादून किस्म की तुलना में मुजफ्फरपुर तथा बीज रहित किस्मों में फलों का फटना कम पाया जाता है।

9. **पादप हार्मोन :** पौधों में जिंक की कमी होने पर ऑक्जीन हार्मोन की भी कमी हो जाती है क्योंकि ऑक्जीन के संश्लेषण के लिये जिंक की आवश्यकता होती है। फलों में वृद्धि रोधक हार्मोन्स की अधिकता के फलस्वरूप भी फल फट जाते हैं।

10. **यांत्रिक कारण :** फलों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक परिवहन करने के फलस्वरूप भी रगड़न, टकराने तथा अनुचित तरीके से रख-रखाव के कारण भी फल फट जाते हैं। पक्षियों द्वारा भी फलों को काटने पर फल फट जाते हैं।

फलों के फटने का नियंत्रण

निम्नलिखित उपायों द्वारा फलों को फटने से रोका जा सकता है।

1. **प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग :** अनार में फलों के फटने के प्रति प्रतिरोधी किस्में जैसे नासिक, डोलका, जालौर सीडलैस, बेदाना बोसेक, खोग का प्रयोग करना चाहिये। लीची की कलकत्ता किस्म फटने के प्रति प्रतिरोधी किस्म है। चेरी की बिंग प्रजाति भी फटने के प्रति प्रतिरोधी है।

2. **सिंचाई :** मृदा में पर्याप्त मात्रा में नमी रहनी चाहिये। अत्यधिक तापमान के तुरंत पश्चात सिंचाई नहीं करना चाहिये। पौधों को पानी प्रायः प्रातःकाल एवं सायंकाल के समय ही देनी चाहिये।

3. **रसायनों का छिड़काव :** फलों को फटने से बचाने के लिये बोरॉन का 0.5 प्रतिशत की दर से 15 दिन के अंतराल पर 2 बार छिड़काव करना चाहिये। कैल्सियम सल्फेट, जिंक सल्फेट, कॉपर सल्फेट इत्यादि रसायन भी फलों को फटने से बचाने में सहायक है। पोटेशियम सल्फेट के 3 छिड़काव लेमन पर करने से फल कम फटते हैं।

4. **हार्मोन्स का छिड़काव :** फलों को फटने से बचाने के लिये 10-20 पी.पी.एम. मात्रा का छिड़काव करना चाहिये। एन.ए.ए. भी फलों को फटने से रोकने में सहायक सिद्ध होता है।

5. **जल्दी तुड़ाई :** सामान्यतः बड़े आकार के एवं अधिक परिपक्व फल छोटे आकार वाले फलों की

तुलना में फटने के प्रति अधिक सुग्राही होते हैं। अतः फलों की जल्दी तुड़ाई करने से फलों को फटने से रोका जा सकता है।

6. **गति अवरोधक वृक्षों की कतार :** अत्यधिक हवा वाले क्षेत्रों में फलों को फटने से बचाने के लिये उत्तर-पश्चिम दिशा में ग्रेविया रोबस्टा, जामुन, शीशम इत्यादि गति अवरोध वृक्षों की कतार लगानी चाहिये।

7. **फलों की तुड़ाई का तरीका :** फलों को गैर-वैज्ञानिक तरीके से तोड़ने से जमीन पर गिरने के कारण फल फट जाते हैं। अतः जमीन पर पलवार लगाना चाहिये। विभिन्न उपकरण जैसे मैंगो हार्वेस्टर एवं क्लिपर का उपयोग करना चाहिये जिससे फलों को तोड़ने पर कम नुकसान पहुँचता है।

(स) फल विगलन या सड़न

फलों में सड़न रोग अनेक प्रकार के कवकों द्वारा होता है। प्रारंभ में फलों पर छोटे-छोटे धब्बे बनते हैं और बाद में कई धब्बों के आपस में मिल जाने से एक बड़ा-सा क्षेत्र बन जाता है और कवक संक्रमण फल के अधिकांश भाग को ढक लेता है। सामान्यतः ऊपर से फल का छिलके वाला भाग ही रोगी प्रतीत होता है तथा फल का आंतरिक हिस्सा पूर्ण रूप से गलकर मुलायम हो जाता है। इस प्रकार के लक्षण कवक *राइजोपस ऐरिजस* तथा *राइजोपस स्टोलोनिफर* नामक कवकों से होते हैं। एक-दूसरे प्रकार के फल विगलन के लक्षण नारंगी लाल से हल्के भूरे रंग के दाग के रूप में दिखायी देते हैं। फल के अंदर के दाने जैतूनी-भूरे हो जाते हैं। रोग की तीव्र व्यवस्था से पूरा फल सड़ जाता है। इस प्रकार के लक्षण *क्लैडोस्पोरियम ऑक्सीस्पोरम* नामक कवक से होते हैं।

ऐस्पर्जिलस एवं *फाइटोफ्थोरा* नामक कवकों की जातियों से भी अनार में फल विगलन रोग लगता है। रोग के लक्षण भूरे एवं बदरंगेपन के रूप में प्रारंभ होते हैं। धीरे-धीरे यह काला तथा चिपचिपा हो जाता है। बाद में रोगी फल कवक के हरे रंग की बढ़वार से ढक जाते हैं। रोगी फल मुलायम होकर सड़ने लगता है और इनमें से एक प्रकार की दुर्गंध आती है।

रोग प्रबंधन

- फल तुड़ाई करते समय ध्यान रखें कि फलों में घाव या खरोंच नहीं हो।
- रोगी फलों को दिखायी देते ही पेड़ से निकालकर नष्ट कर दें।
- पेड़ों पर रोग के लक्षण दिखायी देते ही मेन्कोजेब (0.3 प्रतिशत) का छिड़काव करें और फल भंडारण से पहले भी कवकनाशी जैसे कार्बेन्डाजिम या थायोफिनेट मिथाइल (0.1 प्रतिशत) द्वारा फलों का उपचार करें।

(द) फल मक्खी द्वारा फल सड़न एवं गिरना

फल मक्खी का प्रकोप तेज ठंड के अलावा (जनवरी-फरवरी) पूरे वर्ष देखा जा सकता है। गर्मी के दौरान इसके वयस्क फल वृक्षों के पत्तों के नीचे तथा इनके प्यूपे सुषुप्तावस्था में बागों की जमीन में रहते हैं। यह फल मक्खी मुख्यतः अमरूद, आम, बेर आदि फसलों तथा बेलों वाली सब्जियों के कोमल फलों को नुकसान पहुँचाती हैं। यह फल मक्खी बसन्त ऋतु के दौरान बेर, अप्रैल से जून के दौरान आम तथा जुलाई से अक्टूबर तक अमरूद को नुकसान पहुँचाती है। नवंबर-दिसंबर के दौरान यह फल मक्खी शान्त रहती है। फल मक्खियों के सफल नियंत्रण के लिये इनके जीवन-चक्र की जानकारी आवश्यक है। वयस्क मादा कीट फलों अथवा फलीय सब्जियों के छिलके में उदर का पिछला भाग घुसाकर (गाड़कर) सुराख कर उसमें 8-10 अंडे देती हैं। अंडों से 1-3 दिनों के अंदर लार्वा निकल आते हैं जो 7-9 दिनों में फल के अंदर पूर्णतया बड़े हो जाते हैं। लार्वा फल के गूदे पर पलते हैं, फल के अन्दर नाली बना लेते हैं और फलों से बाहर निकलकर मिट्टी के अन्दर प्यूपा बना लेते हैं। क्षतिग्रस्त फल परिपक्वता से पूर्व ही सड़कर गिरना शुरू हो जाते हैं। प्यूपा बनने के 7-11 दिन बाद युवा फल मक्खियाँ बाहर निकलना शुरू हो जाती हैं जो लगभग 75 दिनों तक जीवित रहती हैं।

फल मक्खी का समन्वित प्रबंधन

1. केवल ऐसे फलों को छोड़कर जिनमें समय से पहले कटाई करने पर स्वाद बिगड़ने की संभावना हो, परिपक्वता की अगेती स्थिति में कटाई कर लेनी चाहिये।
2. बेर की इलायची एवं टीकड़ी किस्मों को रोपना चाहिये क्योंकि ये किस्में फल मक्खी के प्रति

प्रतिरोधक क्षमता रखती हैं। अमरूद की नासिक तथा चाइना सुर्खा किस्में अमरूद की फल मक्खी के प्रति प्रतिरोधक क्षमता रखती हैं। तरबूज की सी.वी.जे. 18-1 और जे.एस.एस.-1 किस्म बेल वाली सब्जियों की फल मक्खी के विरूद्ध प्रतिरोधी क्षमता रखती हैं।

3. फलों को सही समय पर सही प्रकार से तोड़ना चाहिये बागों की स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना अत्यन्त जरूरी है। सड़े-गले फलों तथा बागों में जमीन पर पड़े आधे पके फलों को एकत्रित कर जमीन में डेढ़ फीट गहरायी में दबा देना चाहिये।

4. फल वृक्षों के बागों में गहरी जुताई करने से जमीन के अन्दर पाये जाने वाले प्यूपा ऊपर आ जाते हैं तथा सूर्य की तेज रोशनी एवं परभक्षी चिड़ियों द्वारा खाकर नष्ट कर दिये जाते हैं।

फल धब्बा (फ्रुट स्पाट)

विभिन्न प्रकार की फल मक्खीयाँ

5. फलों के बागों में नर फल मक्खी के नाश करने हेतु तुलसी रोप के उस पर 15-18 दिनों के अन्तराल पर फेन्थीयोन 5 मिलीमीटर दवा को 10 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कनी चाहिये। आम, चीकू तथा अमरूद के बागों में फल मक्खी के उपद्रव को रोकने हेतु फेन्थीयोन 5 मिलीमीटर दवा को 10 लीटर पानी में मिलाकर फल वृक्षों पर छिड़कना चाहिये।

6. फल वृक्षों में फल मक्खियों को आकर्षित कर उनका नाश करना चाहिये। इसके लिये मिनरल वोटर की खाली बोतल में मिथाईल युजीनोल नामक नर आकर्षक पैरा-फेरोमोन में डूबे प्लाई-वुड के टुकड़ों का प्रयोग किया जाता है। 30 से 40 दिनों में एक बार ल्यूर बदलना चाहिये। बोतल में नीचे पानी भरकर 1-2 बूँद किसी भी कीटनाशी की डालें। 6 से 10 प्रति एकड़ ट्रेप लगायें।

फल विगलन (फ्रूट राट)

फल फटना (फ्रूट क्रेकिंग)

अमरूद का सूत्रकृमि से बचाने हेतु जागरूकता

आर. एम. खान[1]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

उपभोक्ताओं में अमरूद में विद्यमान स्वास्थ्यवर्धक गुणों के कारण व्याप्त जागरूकता तथा इसकी खेती से होने वाली अच्छी आय के कारण इस फल के क्षेत्रफल में वृद्धि हो रही है। इसके परिणास्वरूप अमरूद के कलमी पौधों की माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है और इसकी नर्सरी को एक लाभकारी व्यवसाय के रूप में लोगों द्वारा अपनाया जा रहा है। मलिहाबाद का क्षेत्र आम की नर्सरी के लिये विख्यात था, किन्तु आज अमरूद के कलमी पौधों के लिये भी जाना जाता है। इसमें होने वाले अधिक लाभ के कारण अत्यधिक संख्या में पौधों के बनाने, नाशीकीट तथा रोगों संबंधी कम समझ तथा उत्तम नर्सरी प्रबंधन को नहीं अपनाने के कारण मूलग्रंथि सूत्रकृमि (रूटनॉट निमाटोड) नामक रोग का संक्रमण हुआ है। मूलग्रंथि सूत्रकृमि (रूटनॉट निमाटोड) मृदा में होने वाला एक कीट है जो अमरूद के बागों में बड़े पेड़ों को भी नष्ट कर देता है।

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ के तत्वावधान में डॉ. आर.एम. खान द्वारा किये गये सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि कुछेक उत्तम पौधशालाओं को छोड़कर बाकी अधिकांश अमरूद की पौधशालाओं के अमरूद के पौधे मूलग्रंथि सूत्रकृमि रोग से संक्रमित हैं। इसके संक्रमण के लक्षण में पौधों के जड़ों का फूलना प्रमुख है जिस पर किसान प्रायः ध्यान नहीं देते हैं। मूलग्रंथि सूत्रकृमि से गंभीर रूप से ग्रस्त अमरूद के पौधों में अनेक प्रकार की विकृतियाँ देखी गयी हैं जिनमें जड़ों में अंडाकार, गोलाभ तथा गोलाकार आकार की जड़ों में गाँठ बनना प्रमुख है। जड़ों में होने वाले संक्रमण से पौधों की वृद्धि रुक सी जाती है जिससे पौधों का आकार भी छोटा रह जाता है। इसके संक्रमण से पौधों में कम शाखाएँ निकलती हैं तथा पत्तों का आकार भी छोटा रह जाता है। अधिक गंभीर रूप से आक्रांत कलम पॉलीबैग/बेड में ही मर जाते हैं। पॉलीबैग में उगायी गयी कलम की जड़ें काली रंग की दिखायी देती हैं तथा जड़ें फफूँद के कारण खराब हो जाती हैं। कलम में होने वाले छोटे आकार के गॉल (ग्रंथि) दूर-दराज के क्षेत्रों में कीट के फैलाव के सबसे प्रमुख स्रोत होते हैं। संक्रमित पौधे प्रारंभ में एक से दो वर्ष की अवधि तक सामान्य वृद्धि दर्शाते हैं। फिर समय के साथ पौधों के आकार में पर्याप्त वृद्धि नहीं होती और पत्तियाँ छोटी रह जाती हैं। जिन पौधों में सूत्रकृमि का संक्रमण होता है वो नाजुक होने के कारण फफूँद से भी संक्रमित हो जाती हैं तथा उनकी जड़ों में सड़न दिखायी देना प्रारंभ हो जाते है जिसके परिणामस्वरूप बागों में लगे हुए बड़े तथा पूर्ण स्थापित पौधे भी मर जाते हैं। लखनऊ, फरूखाबाद, बदायूँ क्षेत्रों की निजी तथा सरकारी नर्सरियों में पौधे इससे ग्रस्त पाये गये हैं तथा सूत्रकृमि को फैलाने में सहायक हैं। सर्वप्रथम नर्सरियों में संक्रमण होता है जो बाद में फैलकर नये स्थापित बागों में फैल जाता है। ऐसा राजस्थान के क्षेत्रों में देखा गया है जहाँ अमरूद की खेती का महत्वपूर्ण विस्तार हुआ है।

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ ने मिशन मोड में उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान तथा आंध्रप्रदेश के अमरूद उत्पादकों को प्रशिक्षित कर इस संदर्भ में रोकथाम हेतु जागरूकता पैदा करने का प्रयास किया। इसके अंतर्गत उन्हें इन कीटों के लघु/दीर्घकालिक प्रभाव, नर्सरी में संक्रमण तथा पौध सामग्री की आपूर्ति के क्रम में संक्रमण से कैसे बचे के अलावा समस्या से निपटने के अनेक उपाय बताये हैं। किसानों को सलाह दी गयी है कि वो संक्रमित क्षेत्रों में बीजू पौधे तैयार न करें तथा मृदा में सूत्रकृमि है या नहीं इसकी जाँच प्रयोगशालाओं में अवश्य करवायें। जिन खेतों में बीजू पौध तैयार किये जा रहे हैं वहाँ सब्जी की खेती न करें। नाली के माध्यम से खेतों की सिंचाई से बचे। नर्सरी क्षेत्रों को खरपतवार मुक्त रखें तथा उन्हें नीम से एक किलोग्राम प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से उपचार करें।

[1]प्रधान वैज्ञानिक

खाद्य प्रसंस्करण और स्वच्छता

नीलिमा गर्ग[1] एवं संजय कुमार[2]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

खाद्य प्रसंस्करण का अर्थ है फल, सब्जी या अन्य खाद्य पदार्थों का विशेष क्रियाओं द्वारा रूप बदलना। खाद्य प्रसंस्करण क्रिया के अंतर्गत गेहूँ, चना आदि के दानों को सुखाकर भंडारित करना या फलों-सब्जियों के टुकड़े काटकर उन्हें फ्रिज में रखना, अचार, मुरब्बा, चटनी, जूस, कैंडी आदि बनाना शामिल है। इस प्रकार प्रसंस्करण के अंतर्गत उच्च एवं निम्न ताप, शुष्कीकरण, हिमीकरण आदि क्रियाओं अथवा रसायनों, परिरक्षकों आदि का उपयोग किया जाता है। प्रसंस्करण के उपरांत खाद्य पदार्थों को लंबे समय तक भंडारित कर उनका उपभोग किया जा सकता है। खाद्य प्रसंस्करण से न केवल तुड़ाई उपरान्त होने वाली हानि को बचाया जा सकता है अपितु इससे रोजगार के अवसर भी बढ़ते हैं तथा खाद्य पदार्थों में उपस्थित गुण एवं पोषक तत्व पूरे वर्ष उपलब्ध रहते हैं। स्वच्छता प्रसंस्करण की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है क्योंकि यदि प्रसंस्करण के दौरान स्वच्छता नहीं बरती जाती है तो उत्पादित खाद्य पदार्थ बीमारी कारक हो सकते हैं। भोजन की गुणवत्ता एवं स्वच्छता पर परिवार का स्वास्थ्य निर्भर करता है। आमतौर पर, ऐसी धारणा घर कर जाती है कि महँगा भोजन ही उत्तम भोजन होता है, परंतु यह सच नहीं है। सस्ता, सुलभ लेकिन स्वच्छ एवं पौष्टिक भोजन भी उतना ही गुणकारी है।

बाजार में उपलब्ध खाद्य विशेषकर पेय पदार्थ अक्सर स्वच्छ नहीं होते हैं। लोग गन्ने का रस बहुत पसंद करते हैं। गर्मी में यह बहुत बिकता है किन्तु यदि रस निकालने की मशीन पर मक्खियाँ भिनभिना रहीं हों तो यह पीलिया, आंत्र-शोध जैसी घातक बीमारियों को निमंत्रण दे सकता है।

हमारी बहने खटाई, आम पापड़ आदि बनाकर यदि खुले में सुखाती हैं तो इन पर मक्खी, मच्छर तथा अन्य कीडे-मकोड़े अंडे दे सकते हैं अथवा जीवाणु संक्रमित कर सकते हैं। सूखने पर भी इन पर ये अंडे, जीवाणु बचे रहते हैं। इस प्रकार के शुष्क पदार्थ भी रोग के कारक हो सकते हैं।

प्राय: लोग फलों एवं सब्जियों आदि को बाजार से लाकर बिना धोये खा लेते हैं। इस प्रकार ये लोग अनजाने में कीटाणु तथा सूक्ष्म जीवनाशक दवाईयों का सेवन कर लेते हैं।

प्राय: महिलायें हरी सब्जियों को ताजा बनाये रखने के लिये पानी छिड़क कर कपड़े से ढ़क देती हैं किन्तु यदि पानी कुछ ज्यादा मात्रा में डाल दिया जाये तो हरी सब्जियों में कोलीफार्म जीवाणु पनपने लगते हैं तथा सब्जियाँ लिसलिसी तथा बदबूदार हो जाती हैं। हरी सब्जियों को अन्य सब्जियों से अलग रखना चाहिये क्योंकि इन पर कोलीफार्म जीवाणु की मात्रा बहुत अधिक रहती है तथा ये अन्य सब्जियों को भी खराब कर सकती हैं।

जीवाणु भोजन में कैसे मिलता है?

सूक्ष्म जैविक संक्रमण के निम्नलिखित स्रोत हैं।

- प्राकृतिक रूप से उपलब्ध खाद्य पदार्थ,
- दूषित कच्चा माल,
- प्रसंस्करण कर्मी की व्यक्तिगत अस्वच्छता,
- वातावरणीय अस्वच्छता,
- अस्वच्छ बर्तन,
- अस्वच्छ रसोई के कपड़े,
- अपर्याप्त प्रसंस्करण,
- सुरक्षित रूप से पकाये भोजन का कच्चे उत्पादों, मांस रस या दूषित उत्पादों से संपर्क।

मुख्य रोगजनक जीवाणु

अस्वच्छ खाद्य पदार्थों में अनेक किस्म के जीवाणु मौजूद होते हैं जो छोटी बीमारियों का कारण बनते हैं और गंभीर बीमारियों के जनक होते हैं। इनमें से नौ मुख्य रोगजनक जीवाणु निम्नलिखित हैं।

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2]मुख्य तकनीकी अधिकारी

1. कैम्पाइलोबैक्टर जेजुनी

संदूषण का कारण/स्रोत-दूषित पानी, कच्चा दूध, कच्चा या पकाया मांस, अंडा या समुद्री भोजन।

2. क्लोस्ट्रीडियम बोटुलिनम

संदूषण का कारण/स्रोत–अनुचित ढंग से डिब्बाबंद खाद्य, तेल में लहसुन, वैक्यूम पैक्ड और कस कर लपेटा गया खाना। यह बोटुलिन नामक घातक विष उत्पन्न करता है जो जानलेवा भी हो सकता है।

3. क्लोस्ट्रीडियम परफ्रिजेन्स

संदूषण का कारण/स्रोत–इसे कैफेटेरिया जीवाणु भी कहते हैं। यह अनुचित ढंग से भाप दिये गये और कमरे के तापमान पर लंबे समय तक छोड़े गये भोजन में पाया जा सकता है।

4. एस्चेरिशिया कोलाई 0157 : एच. 7

संदूषण का कारण/स्रोत–यह दूषित पानी, कच्चे दूध, कच्चे गाय का मांस, अपाश्चुरिकृत सेब के जूस या साइडर, कच्चे फल, सब्जियाँ अथवा रोगग्रस्त व्यक्ति से हो सकता है।

5. सालमोनेला (1600 प्रकार)

संदूषण का कारण/स्रोत-कच्चे अथवा कम पकाये अंडे, कच्चा दूध या कम पकाया मांस, समुद्री भोजन, डेयरी उत्पाद आदि।

6. स्ट्रेपटोकोकस (एक प्रकार)

संदूषण का कारण/स्रोत-अस्वच्छ वातावरण, बीमार रसोईया, अनुचित प्रकार से भोजन का रखरखाव, कच्चा दूध, अंडे, आइसक्रीम, झींगा मछली, सलाद, कस्टर्ड, कमरे के तापमान पर कई घंटे रखी पुडिंग आदि।

7. लिस्टीरिया मोनोसाइजीन्स

संदूषण का कारण/स्रोत-मुलायम पनीर, कच्चा दूध, अनुचित ढंग से प्रसंस्कृत आइसक्रीम, कच्ची पत्तेदार सब्जी, मांस, पोल्ट्री।

8. शाइजेला (30 से अधिक प्रकार)

संदूषण का कारण/स्रोत-भोजन अथवा पानी का मल से संदूषण, भोजन पकाने वाले की व्यक्तिगत अस्वच्छता, सलाद इत्यादि।

9. स्टेफाइलोकोकस ऑरियस

संदूषण का कारण/स्रोत-भोजन का अनुचित प्रकार से रखरखाव, भोजन को कमरे के तापमान पर देर तक छोड़ना।

खाद्य जनित बीमारियों के लक्षण

खाद्य जनित बीमारियों के सबसे सामान्य लक्षण पेट में ऐंठन, मिचली, उल्टी, दस्त, सरदर्द तथा बुखार हैं। ये लक्षण दूषित खाद्य के सेवन के कुछ घंटे या कुछ दिनों के बाद प्रकट होते हैं। अधिकांश लोग खाद्य जनित बीमारियों से ठीक हो जाते हैं लेकिन कभी-कभी इनके प्रतिकूल परिणाम भी होते हैं।

खाद्य जनित रोग नियंत्रण के लिये सटीक स्रोत निर्धारण का महत्व

संदूषित खाद्य जनित रोग को नियंत्रित करने के लिये स्रोत की सटीक जानकारी प्राप्त करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन्हीं जानकारियों के आधार पर यह निर्धारित किया जा सकता है कि जनित रोग के स्रोत की क्या विशेषताएँ हैं तथा उनको कैसे नियंत्रित किया जा सकता है। इस प्रकार उचित रणनीति बनाकर भविष्य में रोग प्रकोप के जोखिम को कम किया जा सकता है।

खाद्य सुरक्षा कैसे करें?

खाद्य पदार्थो के उत्पादन, तुड़ाई, भंडारण एवं विपणन के दौरान निम्नलिखित स्वास्थ्य सुरक्षा संबंधी युक्तियों को अपनाकर खाद्य जनित बीमारियों से बचा जा सकता है।

1. फल और सब्जी खरीदते समय दागयुक्त, चोटिल अथवा क्षतिग्रस्त फल नहीं खरीदें।
2. यदि आप कटे हुए फल अथवा सब्जी खरीद रहे हैं तो सुनिश्चित करें कि उन्हें ठीक प्रकार से प्रशीतलित किया गया है।
3. अपने खरीदने की टोकरी में ताजे फल और सब्जियों को मांस, अंडा, समुद्री भोजन और अन्य कच्चे खाद्य पदार्थों से अलग रखें।

4. घर पहुँच कर फलों एवं सब्जियों को उनकी आवश्यकतानुसार प्रशीतलित वातावरण में रखें।
5. फ्रिज में ताजे फलों एवं सब्जियों को मांस, अंडा, समुद्री भोजन तथा उनके रस से दूर अलग रखें।
6. अपने फ्रिज का तापमान सदैव 40 डिग्री सेंटीग्रेड अथवा उससे कम पर नियंत्रित करें।
7. प्रसंस्करण से पूर्व हाथों को कम से कम 20 सेकेंड के लिये गर्म पानी तथा साबुन से धोयें।
8. काटने का चाकू, बर्तन, बोर्ड इत्यादि भी साबुन तथा गर्म पानी से साफ करें। इन वस्तुओं को सुखाने के लिये किसी स्पंज अथवा कपड़े का प्रयोग नहीं करें क्योंकि ऐसा करने पर कपड़े पर उपस्थित जीवाणु इन वस्तुओं के द्वारा भोजन में आ सकता है।
9. सड़े-गले भाग को चाकू के द्वारा अलग कर दें क्योंकि इन भागों में हानिकारक जीवाणु हो सकते हैं।
10. फलों और सब्जियों को ताजे, बहते हुए पानी में अच्छी तरह से धोयें।
11. खरबूजा, तरबूज, आलू, गाजर इत्यादि फल एवं सब्जियों की सतह को साफ ब्रश से रगड़ कर मिट्टी उतार दें।
12. पत्तीदार सब्जियों को अनेक बार पानी में धोयें। धोते समय पानी में नमक मिलाना भी उपयोगी सिद्ध होता है। बरसात के दिनों में पत्तेदार सब्जियों का सेवन नहीं करें।
13. सब्जियों को काटने से पहले धो लें।
14. छिली हुई सब्जियाँ एवं फलों को अलग से साफ प्लेट में रखें। उन्हें बिना छिली सब्जी, फलों से नहीं मिलायें।
15. छीलने और काटने के दो घंटे के अन्दर फल एवं सब्जियों को खा लें/पका लें अथवा फ्रिज में रख दें।
16. जीवाणु 40° से 60° डिग्री सेंटीग्रेड के बीच तेजी से पनपते हैं। अतः खाने को 40 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक ठंडा या 60° डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक गर्म रखें।
17. भोजन को पकाने के तीन घंटे के अंदर उसे ठंडा कर फ्रिज में रख दें।
18. फ्रिज में भी सूक्ष्मजीव पनपते हैं। अतः नियमित रूप से फ्रिज की सफाई करें। फ्रिज में क्षमता से अधिक सामान नहीं भरें वरना प्रशीतलन प्रभावी नहीं होगा।
19. फ्रिज से खाद्य पदार्थों को बाहर निकाल कर ज्यादा देर तक कमरे के तापमान पर नहीं रखें। इन्हें या तो गर्म कर दें अथवा वापस फ्रिज में रख दें।
20. जमीन पर रखे सब्जियों के ढ़ेर में से एक भी आलू या प्याज यदि खराब हो जाये तो उसे तुरन्त निकाल दें नहीं तो इससे निकलने वाले रस में असंख्य सूक्ष्मजीव होते हैं जो दूसरे आलू या प्याज को खराब कर सकते हैं।
21. बाजार से लाये गये फलों तथा सब्जियों को पॉलिथीन में कस कर बंद नहीं करें। पॉलिथीन का मुँह खुला रखें जिससे हवा आती-जाती रहे अथवा पॉलिथीन में छिद्र कर दें नहीं तो फल-सब्जियों का पानी जब वाष्प बन कर उड़ता है तो वह थैली के अंदर की सतह पर बूंद बन जाता है। इस पानी पर सूक्ष्मजीव पनपने लगते हैं तथा फल-सब्जियों को खराब कर देते हैं।

सूक्ष्मजीवों से बचाव के लिये यह आवश्यक है कि अच्छी उत्पादन प्रक्रियाओं के लिये नियंत्रण नियमों का कठोरतापूर्वक पालन किया जाये तथा सूक्ष्मजीवों के संक्रमण को रोकने के लिये संवेदनशील प्रक्रियाओं को चिन्हित कर उन पर विशेष ध्यान दिया जाये। अतः आवश्यक है कि फल स्वस्थ हों। सड़े-गले चोटग्रस्त फल, बाकी फलों से शीघ्रता से अलग कर दिये जायें। फलों की रोगाणुनाशकों से धुलाई करने से सूक्ष्मजीवों की संख्या में भारी कमी आ जाती है। गूदा बनाने, फाँके काटने आदि प्रक्रियाओं में सूक्ष्मजीवों की संख्या में वृद्धि होती है। अतः जहाँ तक सम्भव हो स्टेनलेस स्टील के चाकू, बर्तन, गूदा निकालने वाली मशीनें, फल छीलने वाले मनुष्यों के हाथ सूक्ष्मजीव रहित होने चाहिये। प्रत्येक प्रसंस्करण की फैक्टरी में दस्ताने, बालों की जाली तथा गम बूट अनिवार्य होने चाहिये। पूरी मशीन की हर प्रसंस्करण के उपरान्त नियमित सफाई करनी चाहिये। जहाँ तक संभव हो मशीनों इत्यादि में दरारें, छेद इत्यादि (जिनमें फल पदार्थ के फंसने की सम्भावना हो) नहीं होनी चाहिये। डिब्बाबंदी के समय ढक्कन ठीक से सील किया गया हो तथा डिब्बा कहीं से दबा नहीं होना चाहिये। गर्म-गर्म भरे गये

डिब्बों को तुरंत ठंडे पानी में रखना चाहिये जिससे ताप रोधी सूक्ष्मजीवों को पनपने का उपयुक्त वातावरण नहीं मिल सके। प्रसंस्करण में उपयोग होने वाला पानी तथा प्रशीतलन जल उच्च कोटि का एवं जीवाणु रहित होना चाहिये। भंडारण के दौरान डिब्बों को ठंडे सूखे एवं साफ स्थान पर रखना चाहिये। डिब्बाबंदी अथवा पैकेटबंदी के लिये प्रयोग होने वाले पदार्थ भी सूक्ष्मजीव रहित होने चाहिये। प्रसंस्करण प्रक्षेत्र साफ एवं धूल रहित होना चाहिये। प्रसंस्करण के समय निकलने वाले फलों के अवशेष तथा सड़े-गले फलों का निस्तारण कर देना चाहिये जिससे प्रसंस्कृत पदार्थ में संक्रमण नहीं फैल पाये। सबसे आवश्यक है कि प्रसंस्करण करने वाले कर्मचारी सफाई के नियमों से भलीभाँति परिचित हों तथा वे सूक्ष्मजीवों के लिये संवेदनशील प्रक्रियाओं में विशेष सावधानी रखें ताकि अन्तर्राष्ट्रीय गुणवत्तायुक्त फल उत्पाद तैयार हो सकें।

हाथ धोना : एक स्वस्थ आदत

यदि आप खाना बनाने या खाने जा रहे हैं, तो क्या आपने हाथ धोये? अपने हाथों को साबुन से भली प्रकार धोने से आप खुद को कई प्रकार के संक्रामक रोगों से बचा सकते हैं। आपके हाथ ऊपर से साफ दिखायी देने पर भी रोगाणुयुक्त हो सकते हैं। हाथ कई प्रकार से सूक्ष्मजीवों (रोगाणु) को अपनी सतह पर लेते हैं। जब बीमार लोगों छीकतें या खांसते हैं, उन्हें रोगी करने वाले रोगाणु हवा में छोटे बूंदों में फैल जाते हैं। यदि ये बूदें किसी प्रकार से आपके हाथ पर आ जायें और आप अपने हाथों पर उपस्थित कीटाणुओं को धुले बिना अपने मुँह, आँख या नाक को छूते हैं तो आप भी संक्रमित हो सकते हैं। यदि आप अपने हाथों से भोजन तैयार करने के पहले या बाद में, कच्चे मांस के छूने के बाद या शौचालय का उपयोग करने के बाद ठीक से साफ नहीं कर रहे हैं तो आप बीमार हो सकते हैं। आपका हाथ धोना न केवल आपको बीमार होने से रोकता है, बल्कि दूसरों से संक्रमण के जोखिम को भी कम कर देता हैं। यदि आप अन्य लोगों के साथ संपर्क में आने से पहले अपने हाथ ठीक से नहीं धोते हैं तो आप उन्हें अपने हाथों के कीटाणुओं से संक्रमित कर सकते हैं। दरवाजे पर घंटी, कीबोर्ड और घर या कार्यस्थल में अन्य उपकरणों पर भी आपके या किसी अन्य बीमार व्यक्ति के रोगाणुओं से बाकी लोग बीमार हो सकते हैं।

हाथ धोने का समुचित तरीका

गर्म पानी के साथ अपने हाथों को गीला करें। हाथ के आभूषण उतार कर साबुन लगा कर आपस में रगड़े। यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि कम से कम 20 सेकेंड तक साबुन हाथ की सतहों पर लगा रहे। फिर पानी से हाथ धो लें। जब साबुन और पानी उपलब्ध नहीं हैं तो अल्कोहल आधारित हाथ क्लीनर उपयोगी होते हैं, परंतु साबुन ज्यादा सुरक्षित होते हैं। उपरोक्त युक्तियों को अपनी दिनचर्या में अपनाकर हम अपने स्वास्थ्य को हानिकारक खाद्य जनित बीमारियों से बचा सकते हैं।

मुश्किलें

मुश्किलें समय का आईना दिखाती हैं,
रिश्तों को बिखरने का एहसास कराती हैं।।
टूटकर कहीं मत बिखरना ओं मुसाफिर,
ठोकरे इन्सान को फिर से चलना सिखाती हैं।।
कदम-कदम पर फूल ही नही कांटे भी होगें,
मुश्किलें हर दौर में जीना सिखाती हैं।।
मुश्किलें समय का आईना दिखाती हैं,
रिश्तो को बिखरने का एहसास कराती हैं।।

गिरना, संभलना, संभलना कर फिर गिरना,
फिर संभलना जिंदगी में विश्वास दिलाती हें।।
मजबूत इरादे बुलन्द हौसले और आत्म विश्वास,
इन्सान को फिर से जीना सिखाती है।।
मुश्किलें दिल के इरादें आजमाती हैं,
ख्वाबों के इरादे को और मजबूत बनाती हैं।।
मुश्किलें समय का आईना दिखाती हैं,
रिश्तो को बिखरने का एहसास कराती हैं ।।

-रेखा चौरसिया

आम अदरक की अद्भुत पादप रासायनिक एवं जैविक गतिविधियाँ

ज्योतिर्मयी लेंका[1], भारती किल्लाड़ी[2], रेखा चौरसिया[3] एवं डी.के. शुक्ला[4]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

अदरक का मानव जीवन के दैनिक आहार एवं स्वास्थ्य से गहरा संबंध है। इसे खाद्य पदार्थों को पाचक, सुगंधित एवं स्वादिष्ट बनाने में उपयोग किया जाता है। पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण इसका उपयोग मसाले, दवाइयों, चटनी, अचार, मुरब्बा, छाछ, जलजीरा आदि के बनाने में होता है। अदरक को सुखाकर सोंठ के रूप में भी प्रयोग में किया जाता हैं। अदरक में तीखा गंधयुक्त पदार्थ होता है जिसे जिंजरोल एवं पैराडाल कहते हैं। यह पाचक, क्षुधावर्धक, कृमिनाशक एवं कैंसर रोधी होता है। अदरक भारतीय किसानों के लिये आय का एक स्रोत भी है।

अदरक की तरह ही आम अदरक भारतीय मूल का कन्द है। इसे आम अदरक, सफेद हल्दी या आम हल्दी भी कहते हैं जो अपने जैविक, रासायनिक एवं औषधीय गुणों के कारण मानव स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त लाभदायक है। आम अदरक भारत, थाइलैंड, चीन, मलेशिया, इंडोनेशिया और नार्थ आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। भारत में यह उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, गुजरात कर्नाटक, तमिलनाडु में पाया जाता हैं। आम अदरक की खेती आम के वृक्षों के बीच अंत: फसल के रूप में की जाती है। आम अदरक या आम हल्दी एक अद्वितीय मसाला है जिससे कच्चे आम का स्वाद आता है। आम अदरक, अदरक का ही एक अच्छा विकल्प है क्योंकि इसका स्वाद एकदम अलग होता है।

आम अदरक का उपयोग अचार, कैंडी, जूस, मुरब्बा आदि बनाने में किया जाता है। औषधीय गुणों के विद्यमान होने के कारण आम अदरक का उपयोग अधिकतर आयुर्वेद और यूनानी पद्धति में किया जाता है। आम अमरूद के जैविक गुणों में रोग प्रतिरोधक, जीवरोधक अवसादरोधक, प्लेटलेट एकीकरण, निरोधात्मक अजीवर्धक आदि गतिविधियाँ पायी जाती हैं।

ताजे आम अदरक में नमी (86%), शर्करा (0.8%), स्टार्च (6.9%), रेशा (1.4%), एमाइलेज (43%), वाष्पशील तेल (0.1%) जैसे हाइड्रोओसिमिन, ओसिमिन फिनालिथ अम्ल एवं मार्सिन पाये जाते हैं। इसका अधिक उपयोग आयुर्वेद एवं फार्माश्यूटिकल उद्योग में किया जाता है।

[1,2]वैज्ञानिक एवं [3,4]सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

आम अदरक

प्रसंस्करण उद्योग में आम अदरक का उपयोग

आम अदरक में कच्चे अपरिपक्व आम का एक विशिष्ट स्वाद आता है जो अचार, सांस, कैंडी, सलाद, जूस, मुरब्बा आदि में बुनियादी घटक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

औषधीय रूप में आम अदरक का प्रयोग : आम अदरक का सेवन शरीर को शीतलता प्रदान करने के साथ-साथ वात, पित्त, कफ एवं त्वचा रोगों को नष्ट करने में सहायता करता है। इसके लिये संस्कृत में भी श्लोक है।

'आम गन्धि हरिद्रा या सा शीत वातला मता।

पित्रह् मधुरा तिक्ता सर्व कण्डू विनाशिनी।'

त्वचा रोग : आम अदरक एक शक्तिशाली जीवाणु/रोगाणु नाशक एवं पाचक है। इसीलिये इसे त्वचा रोगों की बीमारियों में प्रयोग किया जाता है। यह शरीर से विषैले तत्वों को निकालने, खुजली, मुहासे, त्वचा के दाग धब्बों को नष्ट करने में सहायता करता है जिससे त्वचा मुलायम एवं चिकनी हो जाती है। आम अदरक का प्रयोग सौन्दर्य एवं त्वचा की देखभाल करने वाले उत्पादों में भी किया जाता है।

कोल्ड एवं कफ : आम अदरक कफ एवं पीड़ा नाशक होता है। इसीलिये इसे कफ एवं कोल्ड में प्रयोग किया जाता है। यह तपेदिक एवं अस्थमा को भी कम करने में सहायता करता है।

पाचन : आम हल्दी या आम अदरक में इन्ट्रोबाइनेस नामक एन्जाइम पाया जाता है जो मनुष्य एवं जानवरों दोनों की पाचन क्रिया में सहायक होता है। यह एन्जाइम प्रोटीन को जैविक कम्पाउन्ड में बदल देता है जो भोजन की पाचन

क्रिया में सहायक होता है। इसके अलावा यह कब्ज, गैस एवं पाचन तंत्र की क्रियाशीलता को शक्तिशाली बनाने में सहायक होता है।

सूजन : आम अदरक में ऐंटीज्वलन गुण होते हैं जो लीवर तथा जोड़ों की सूजन आदि का रोकने में सहायक होता है।

उपापचयी गतिविधियाँ : आयुर्वेद में उपापचयी गतिविधियों को ठीक करने में इसका उपयोग किया जाता है। यह शरीर के तीनों प्रकार के दोष-वात, पित्त एवं कफ को नष्ट करने में सहायता करता है। मधुमेह में आम अदरक का उपयोग करने से मधुमेह के कारण जो दूसरी समस्या या जटिलता उत्पन्न हो जाती है यह उन्हें रोकता है।

टैन्ड्रफ : आम अदरक में वाष्पशील तेल मिर्सिन और पिनिन पाया जाता है जिसमें फफूँद रोधी गुण पाये जाते है। यह सर के जुयें एवं रूसी का खात्मा करने में सहायता करता है।

बेल पर दोहे

बेल बिल्व या बेलुआ, भिन्न-भिन्न हैं नाम।
पर्ण चढ़ें शिवलिंग पर, अद्भुत इसके काम ।।1।।
बेल त्रिपर्णी पर्ण हों, अर्पित शिव के नाम।
तीन जन्म के पाप हर, पहुंचाता शिव धाम।।2।।
बेल वृक्ष के भाग सब, छाल पत्र अरु मूल।
औषधीय गुणयुत सभी बीज तेल फल फूल।।3।।
सावन में रहती सदा, बेल पत्र की आस।
लगा लीजिए वृक्ष इक, अपने घर के पास।।4।।
दुर्लभ है फल वृक्ष में, मिलना ऐसा योग।
शरबत इसका पीजिये, मिटें पेट के रोग।।5।।
खेतों में रोपण करें, उन्नत बेल प्रजाति।
साधन होगा आय का, और मिलेगी ख्याति।।6।।
ऊसर बंजर हो जमीं, पैदा होता बेल।
माँग सदा बाजार में, चाहे जिधर ठपेल।।7।।
बेल मुरब्बा कैंडी, का अच्छा बाजार।
पतंजली ने कर दिया, इसका खूब प्रचार।।8।।
जाड़े में कच्चे फलों, की भी खूब डिमांड।
गर्मी में होंगे नहीं, फल चोरी के कांड।।9।।
बी वन बी टू आदि हैं, उन्नत बेल प्रजाति।
फल मध्यम आकार के, अल्प बीज युत ख्याति।।10।।
एन बी फाइव श्रंखला, नाइन एन बी सात।
सोलह सत्रह आदि भी, खूब हुई विख्यात।।11।।
ऊसर बंजर आदि संग, शुष्क क्षेत्र उपक्षेत्र।
बेल हेतु वरदान हैं, खोलो अपने नेत्र ।।12।।
बेल लगाने के लिए, सावन उत्तम मान।
गड्ढा खोदें जून में, तीन फीट गहरान।।13।।
गड्ढों को छोड़ें खुला, पंद्रह दिन तक भाय।
मिश्रण से उनको भरें, ज्यूं बतलाया जाय।।14।।
डलिया गोबर खाद में, पाव भर सुपर फास।
दीमक रोधी धूल हो, क्लोर पाइरीफास।।15।।
स्वस्थ पौध रोपण करें, गड्ढा बीचोबीच।
मिट्टी पैरों से दबा, पानी से दें सींच।।16।।
एक वर्ष के वृक्ष को, मिले दस किलो खाद।
क्रम से बढ़ दस वर्ष तक, हो स्थिर आबाद।।17।।
मई जून में फूल फल, से आच्छादित वृक्ष।
बरसाती जल से हमें, मिलता इच्छित लक्ष्य।।18।।
कमी दिखे बोरान की, तो करिए छिड़काव।
चार किलो बोरान हो, टैंकर भर जल प्लाव।।19।।
गर जैविक पलवार हो, मानसून के बाद।
संरक्षित होती नमी, वृक्ष रहे आबाद।।20।।
फल पकते हैं बेल में, चैत और बैसाख।
बिना चोट तोड़ें सदा, बन जाएगी साख।।21।।

-डा सुशील कुमार शुक्ल

ग्रामीण परिवेश में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा

आभा सिंह[1], भारती किल्लाड़ी[2], पवन सिंह गुर्जर[3], रेखा चौरसिया[4] एवं डी. के. शुक्ला[5]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

विश्व के अनेक विकासशील देशों में ग्रामीण परिवार प्रायः खाद्य एवं पोषण असुरक्षा एवं कुपोषण से ग्रस्त रहते हैं। देश में ऐसे क्षेत्रों की पहचान वैज्ञानिक विधि द्वारा आँकड़े एकत्रित कर की जा सकती है एवं उचित उपायों एवं तकनीकी अपनाकर उनका उन्मूलन भी किया जा सकता है।

खाद्य एवं कुपोषण की समस्या के कारण

खाद्य पदार्थ तक पहुँच : प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में यह स्थिति देखी गयी है कि भोजन खरीदने की क्षमता होने के बावजूद खाद्य उपलब्ध नहीं होने के कारण परिवार उससे वंचित रह जाते हैं। भोजन की उपलब्धता कृषि उत्पादन में वृद्धि कर बढ़ायी जा सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न नयी तकनीकी अपनाकर उत्पादन बढाया जाये एवं विभिन्न प्रकार की फसलों को समन्वित किया जाये। पारिवारिक क्रय शक्ति बढ़ाना, विकट परिस्थितियों में खाद्य पदार्थो को स्थान विशेष पर पहुँचना, सस्ते दर पर खाद्य उपलब्ध कराना, कार्य के बदले अनाज प्रणाली, फसलों का विविधीकरण एवं छोटे स्तर पर रोजगार अवसर पैदा करने आदि प्रयास से ग्रामीण स्तर पर जनमानस की पहुँच खाद्य पदार्थों तक बढ़ायी जा सकती है।

पारिवारिक क्रय शक्ति : यदि परिवार के पास खाद्य पदार्थों को क्रय करने की शक्ति नहीं है तो उसके लिये खाद्य पदार्थो की उपलब्धता का कोई औचित्य नहीं है। हरित क्रांति के बाद खाद्य पदार्थों का अत्यधिक उत्पादन होने के बावजूद कुपोषण की स्थिति में बहुत ज्यादा सुधार नहीं होने का मुख्य कारण गरीबी, कम क्रय क्षमता, बढ़ती बरोजगारी, बढ़ती जनसंख्या एवं खाद्य एवं पोषण के विषय में लोगों में अनभिज्ञयता है। खाद्य सुरक्षा के लिये आर्थिक स्वतंत्रता जरूरी है। खाद्य एवं पोषण की नीतियाँ इस तरह निर्धारित की जायें कि उत्पादकता में वृद्धि के साथ-साथ लोगों की क्रय क्षमता भी बढ़े जिससे सभी लोग जीवन की अति आवश्यक वस्तुओं को खरीद सकें। विविधतापूर्ण कृषि, परिवार की खाद्य एवं सुरक्षा की दिशा में एक बहुत ही महत्वपूर्ण कदम है।

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2,3]वैज्ञानिक एवं [4,5]सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

प्रभावित समूह वर्ग : महिलाएं, आदिवासी, छोटे एवं लघु किसान, भूमिहीन श्रमिक एवं उनका परिवार खाद्य एवं पोषण असुरक्षा के मामले में सबसे प्रभावित समूह वर्ग है। महिलाएँ एवं लड़कियाँ कुपोषण से अधिक प्रभावित हैं जिसका मुख्य कारण ग्रामीण परिवेश में महिलाओं की सामाजिक स्थिति एवं भोजन का असंतुलित वितरण है। अतः कुपोषण उन्मूलन कार्यक्रम को इस विशेष समूह वर्ग को ध्यान में रखकर बनाना चाहिये।

शरीर में पोषक तत्वों की उपलब्धता : अच्छा पोषण स्तर केवल परिवार की क्रय क्षमता एवं खाद्य सुरक्षा पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि उसे अच्छे शारीरिक एवं मानसिक वातावरण के साथ अच्छे स्वास्थ्य स्तर की भी आावश्यकता होती है। पाचन शक्ति, खाये हुए भोजन की शरीर में उपलब्धता को सुनिश्चित करती है। उचित देखभाल एवं व्यवस्था घर में एक स्वस्थ वातावरण तैयार करती है जिससे खाये हुए पोषक तत्वों का शरीर में उचित अवशोषण एवं उपयोग होता है। पानी से होने वाली बीमारियाँ, संक्रमण एवं वातावरण से होने वाले संक्रमण शरीर पर बुरा प्रभाव डालते है जिससे गरीब एवं कुपोषित ज्यादा प्रभावित होते है।

पोषण स्तर एवं पोषण ज्ञान का आँकलन : व्यक्ति का स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर मुख्य रूप से क्षेत्र, फसल चक्र, खाद्य उपलब्धता, आर्थिक स्तर, शारीरिक क्षमता, पोषण ज्ञान आदि पर निर्भर करता है। पोषण स्तर का आँकलन समय-समय पर राष्ट्रीय, क्षेत्रानुसार एवं भौगोलिक स्थिति के अनुसार उपलब्ध होना चाहिये, जिससे पोषण कार्यक्रम आवश्यकतानुसार बनाये जा सकें। ग्रामीण परिवारों के खाद्य एवं पोषण सुरक्षा बढ़ाने में पोषण शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि परिवारों को स्थानीय स्तर पर उपलब्ध खाद्य पदार्थो में उपलब्ध पोषक तत्वों, उनका उचित उपयोग एवं स्वस्थ्यवर्धक गुणों की जानकारी नहीं होती है। पोषण शिक्षा के माध्यम से ग्रामीण परिवारों को आहार के माध्यम से कुपोषण बीमारियों को दूर करना, विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थो का आहार में उपयोग, भोजन की गुणवत्ता एवं सुरक्षा,

फल-सब्जी परिरक्षण, भंडारण एवं रखरखाव आदि की जानकारी प्रदान कर उनके पोषण स्तर को बढ़या जा सकता है। पोषण ज्ञान महिलाओं के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि खाद्य चयन, उत्पादन एवं खाद्य उपयोग पकाना उन्हीं की जिम्मेदारी है।

खाद्य एवं पोषण विषमता तथा उनका निदान

खाद्य एवं पोषण विषमता तथा कुपोषण विकासशील देशों के ग्रामीण क्षेत्रों की मुख्य समस्या है जिनका उचित आँकलन कर दूर करने के उपाय बताना भी बहुत जरूरी है। पोषण स्तर के अन्तर को दूर करने के लिये पोषण वाटिका लगाना, फसल उत्पादन बढ़ाना, घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन करना, पूरक आहार इत्यादि अनेक उपाय किये जा सकते हैं।

पोषण वाटिका : सभी विकासशील देशों में लोग मुख्यतः एक या दो खाद्य पदार्थों जैसे-धान, गेहूँ, मक्का या मोटे अनाज पर निर्भर रहते हैं और इसी से उनके शरीर को 80 प्रतिशत ऊर्जा की प्राप्ति होती है। पोषण वाटिका द्वारा घर के आसपास उपलब्ध जमीन का उपयोग कर फलों एवं सब्जियों का उत्पादन कर सकते हैं जिससे मुख्य रूप से सूक्ष्म पोषक तत्व एवं विटामिन प्राप्त होते हैं। पोषण वाटिका का सफल संचालन कर हम पूरे वर्ष ताजे फल एवं सब्जी प्राप्त कर सकते हैं तथा अतिरिक्त फल-सब्जी को भी परिरक्षित कर पूरे वर्ष उनका उपयोग भी कर सकते हैं। बहुत ज्यादा फल-सब्जी होने पर उसे बेचकर अतिरिक्त आय भी प्राप्त कर सकते हैं। पोषण वाटिका का संचालन बहुत कम पैसे में परिवार के सदस्यों द्वारा आसानी से किया जा सकता है।

उपयुक्त काश्त प्रणाली का निर्धारण : संसाधन विहीन, लघु एवं छोटे किसानों को ध्यान में रखते हुए ऐसी कृषि प्रणाली विकसित की जानी चाहिये जिसमें विभिन्न प्रकार की किस्मों की फसलें हों जिससे पूरे परिवार की ऊर्जा, प्रोटीन, विटामिन, खनिज लवण एवं अन्य पोषक तत्वों की आवश्यकता की पूर्ति हो सके। इस दिशा में फसल विविधीकरण, समन्वित खेती आदि को प्रेरित करने की आवश्कता है।

खाद्य परिक्षण : खाद्य परिरक्षण खाद्य सुरक्षा का एक अभिन्न अंग है जो आहार में विविधता लाने के साथ- साथ खाद्य पदार्थो के नुकसान को कम कर उनकी विपणन की क्षमता बढ़ाता है तथा महिलाओं की खाद्य उत्पादन एवं रोजगार में भागीदारी प्रदान करता है।

खाद्य भंडारण : खाद्य का उचित भंडारण खाद्य एवं पोषण सुरक्षा का अभिन्न अंग है। भंडारण की सुविधा उपलब्ध कराने में पुरुषों का योगदान होता है, परन्तु उसके बाद खाद्य को भंडारण के लिये तैयार करना, कितना भंडारण करना है एवं उसका उपयोग यह सभी महिलाओं का कार्य है। उचित भंडारण व्यवस्था द्वारा उत्पादन के बाद होने वाले फसल के नुकसान को कम कर खाद्य सुरक्षा को बढ़ाया जा सकता है।

पोषक सूचक का विकास एवं विवरण : विभिन्न बीमारियों जैसे विटामिन 'ए' की कमी, एनीमिया, प्रोटीन, ऊर्जा की कमी, आयोडिन की कमी, खाद्य एवं पानी से होने वाली बीमारियों के आसान एवं सहज संकेतक विकसित एवं वितरण किये जाने चाहिये जिससे इन बीमारियों की पहचान हो सके और लोग समय रहते इन्हें दूर करने के लिये प्रयत्नशील हो सकें।

स्थानीय स्तर के पौष्टिक खाद्य पदार्थों की पहचान : यह बहुत ही जरूरी है कि स्थानीय स्तर पर प्राप्त प्रोटीन, ऊर्जा, वसायुक्त पौष्टिक खाद्य पदार्थों की पहचान की जाये एवं ग्रामीण स्तर पर उसका प्रचार-प्रसार किया जाये जिससे ग्रामीण परिवारों को सस्ते दर पर उचित मात्रा में उत्तम किस्म के पौष्टिक तत्व उपलब्ध हो सकें।

शिशुओं, छोटे बच्चों, गर्भवती महिलाओं के लिये पूरक आहार : पोषक तत्वों की आवश्यकता, उम्र, लिंग, स्वास्थ्य स्तर, काम करने के स्तर आदि पर निर्भर करती है तथा अलग-अलग होती है। शिशुओं, छोटे बच्चों, गर्भवती एवं धातृ महिलाओं को प्रोटीन, ऊर्जा, कैल्सियम, लौह तत्व आदि की अतिरिक्त आवश्यकता होती है जिसे पूरक आहार के माध्यम से पूरा किया जा सकता है और इसके लिये ग्रामीण महिलाओं को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये।

पोषण आधारित समस्याओं का आकलन एवं उनका निदान : पोषण आधारित समस्याओं जैसे लौह तत्व की कमी, आयोडिन की कमी, विटामिन ए की कमी, प्रोटीन एवं ऊर्जा की कमी आदि समस्याओं का क्षेत्रानुसार आकलन कर, लोगों में इनके प्रति जागरूकता पैदा करनी चाहिये।

इस तरह ग्रामीण क्षेत्रों में हम इन उपायों को अपनाकर ग्रामीण क्षेत्रों को बहुत हद तक खाद्य एवं सुरक्षा की दृष्टि से सक्षम बना सकते हैं।

बागवानी क्षेत्र में भौगोलिक उपदर्शन (जीआई) की उपयोगिता

जितेन्द्र कुमार[1], सुशील कुमार यादव[2], प्रीति शर्मा[3] एवं शैलेन्द्र राजन[4]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

प्रत्येक क्षेत्र की अपनी एक विशिष्टता होती है। उस विशेष प्रकृति और क्षेत्रीय विशेषज्ञता के कारण वहाँ के उत्पाद अपनी एक अलग पहचान रखते हैं। आज के प्रतिस्पर्धी युग में इस पहचान को सुरक्षित रखने के लिये हमें मूल क्षेत्र के नाम या भौगोलिक उपदर्शन (जीआई) की आवश्यकता पड़ी। जीआई, बौद्धिक संपदा अधिकार का एक प्रकार है जिसका इस्तेमाल संबंधित भौगोलिक क्षेत्र में कृषि, प्राकृतिक या विनिर्मित वस्तुओं के संरक्षण के लिये किया जाता है। इन वस्तुओं के गुण, विशेषताएँ या प्रतिष्ठा मूल रूप से उस स्थान की भौगोलिक परिस्थिति, मिट्टी, जलवायु, मानव कौशल के कारण होती है। जीआई वस्तुओं के निर्यात को बढ़ावा देता है एवं अन्य व्यक्तियों द्वारा उस वस्तु के अनाधिकृत उपयोग को प्रतिबंधित करता है। जीआई शब्द को विश्व व्यापार सगंठन के तहत 1994 के समझौते में पेश किया गया था। यह विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) सदस्य देशों को कानूनी सुरक्षा प्राप्त करने में समर्थ बनाता है। महानियंत्रक पेटेंट, डिजाइन और ट्रेडमार्क कार्यालय के अंतर्गत, एक जीआई कार्यालय की स्थापना चेन्नई में की गयी है ताकि जीआई (रजिस्ट्री और संरक्षण) अधिनियम, 1999 को प्रशासित किया जा सके, यह 15 सितंबर 2003 से प्रभावी हुआ है।

जीआई के पंजीकरण के लिये किसी भी संगठन, उत्पादक या समिति द्वारा आवेदन किया जा सकता है। आवेदन निर्धारित प्रपत्र में लिखित रूप में शुल्क सहित जीआई के रजिस्ट्रार कार्यालय में जमा करना होता है। किसी भी प्राधिकारी को पंजीकृत प्रोपराइटर के नाम से जीआई रजिस्टर में नामित किया जा सकता है और वस्तुओं का उत्पादक किसी पंजीकृत जीआई के संबंध में अधिकृत प्रयोक्ता के रूप में निर्धारित शुल्क सहित पंजीकरण के लिये आवेदन कर सकता है। जीआई के पंजीकरण के लिए आवेदक या उसके एजेंट द्वारा हस्ताक्षरित आवेदन पत्र (जीआई -1ए से 1डी) की तीन प्रतियों सहित निर्धारित शुल्क (रु 5000) के साथ जमा करना होता है और शुल्क का भुगतान नकद, मनी आर्डर या बैंक ड्राफ्ट के रूप में किया जा सकता है। आवेदन पत्र 33× 20 सेंटीमीटर के पेपर पर, बायें तरफ से 4 सेंटीमीटर का अंतराल के साथ, गहरी स्याही से बड़े और सुस्पष्ट अक्षरों में हिंदी या अंग्रेजी में मुद्रित होना चाहिये। आलेखों पर, व्यक्तियों या उत्पादकों के संगठन के संदर्भ में अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता द्वारा और साझेदारो के संदर्भ में इसे कम से कम व्यक्ति एक द्वारा हिंदी या अंग्रेजी में हस्ताक्षरित होना चाहिये।

भारत में व्यापार के लिये पत्र व्यवहार का पता और निकाय के निदेशक के पूरे नाम, राष्ट्रीयता सहित वर्णित होना चाहिये। क्षेत्र का भौगोलिक मानचित्र, संबंधित वस्तु के उत्पादकों के समूह का विवरण और आवेदक के हितो का प्रतिनिधित्व करने का दावा करने के लिये एक शपथ पत्र संलग्न करना होता है। जीआई रजिस्टर को दो भागों में विभाजित किया गया है। भाग 'क' में पंजीकृत जीआई से संबंधित विवरण शामिल होते हैं और भाग 'ख' में पंजीकृत अधिकृत प्रयोक्ताओं के विवरण शामिल हैं। जीआई के उल्लंघन पर पंजीकृत प्रोपराइटर और अधिकृत प्रयोक्ता कार्रवाई प्रारंभ कर सकते हैं। केवल अधिकृत प्रयोक्ता को ही उस जीआई के प्रयोग का विशिष्ट अधिकार होता है जिसके लिये यह पंजीकृत है। जीआई का पंजीकरण दस वर्ष की अवधि के लिये होता है और इसका नवीनीकरण प्रत्येक दस वर्ष के लिये किया जा सकता है एवं नवीनीकरण नहीं किये जाने की स्थिति में इसे रजिस्टर से हटाया जा सकता है। जीआई पंजीकरण की प्रकिया को सचित्र दर्शाया गया है।

भारत के अलग-अलग राज्यों द्वारा आम की प्रजातियाँ जीआई कार्यालय में पंजीकृत करायी गयी हैं। कई राज्यों ने अपने परंपरागत रूप से उगाये जाने वाले आम के भौगोलिक संकेत पंजीकरण के लिये आवेदन प्रस्तुत किये हैं जिनमें से अधिकतर आवेदकों को जीआई कार्यालय द्वारा पंजीकरण क्रमांक प्रदान किया गया है जबकि कुछ आवेदनों को निरस्त कर दिया गया।

[1]शोध सहयोगी, [2]संविदाकर्मी, [3]वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी एवं [4]निदेशक

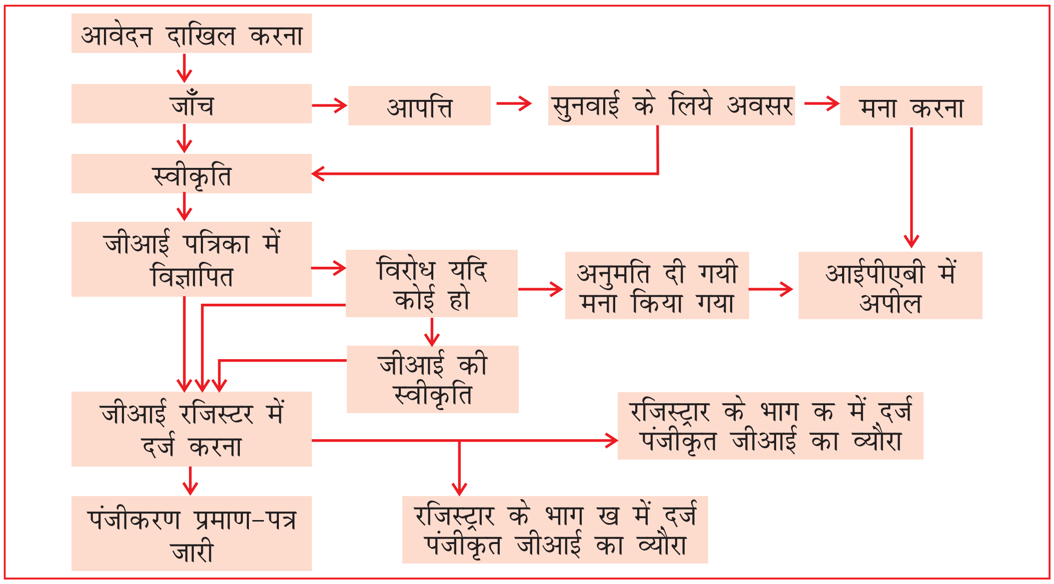

जीआई पंजीकरण की प्रकिया

वर्तमान में जीआई कार्यालय द्वारा पंजीकृत/निरस्त आम के आवेदित पत्रों की सूची निम्नलिखित है।

पंजीकृत आवेदित पत्रों की सूची

क्रम सं.	पंजीकरण क्रमांक	भौगोलिक संकेत	राज्य	आवेदन की तिथि
1.	111	लक्ष्मण भोग आम	पश्चिम बंगाल	19/09/2007
2.	112	खिरसापति (हिमासगर) आम	पश्चिम बंगाल	19/09/2007
3.	113	मालदा जिले में उगाई गई फजली आम	पश्चिम बंगाल	01/10/2007
4.	125	आम मालिहाबादी दशहरी	उत्तर प्रदेश	15/05/2008
5.	132	अप्पीमिडी आम	कर्नाटक	04/09/2008
6.	185	गिर केसर आम	गुजरात	17/08/2009
7.	206	रतौल आम	उत्तर प्रदेश	05/04/2010
8.	241	बगनापल्ली आम	आंध्र प्रदेश	07/09/2011
9.	406	सलेम आम	तमिलनाडु	03/05/2013
10.	499	मराठवाड़ा केसर	महाराष्ट्र	30/09/2014
11.	551	जरदालू	बिहार	20/06/2016

निरस्त आवेदित पत्रों की सूची

क्रम सं.	पंजीकरण क्रमांक	भौगोलिक संकेत	राज्य	आवेदन दिनांक
1.	379	देवगढ़ अल्फांसो	महाराष्ट्र	12/03/2012
2.	497	रत्नागिरी अल्फांसो आम	महाराष्ट्र	26/08/2014
3.	139	अल्फांसो आम	महाराष्ट्र	22/09/2008

स्रोत: http://ipindia.nic.in

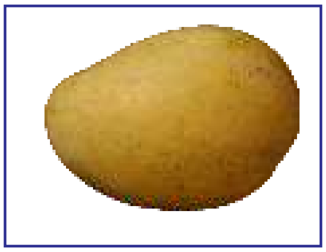

बैगनपल्ली आम

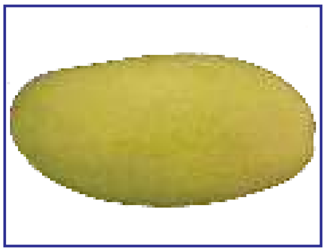

मलिहाबाद दशहरी आम

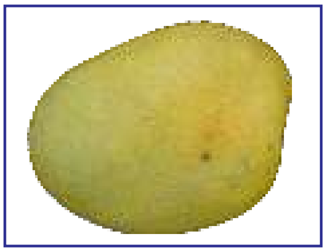

रतौल आम

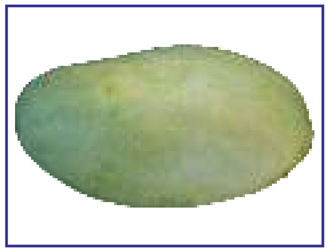

फजली आम

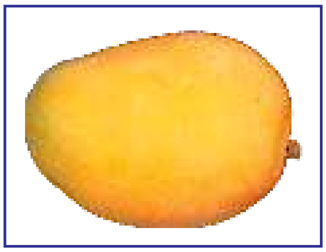

हिमसागर आम

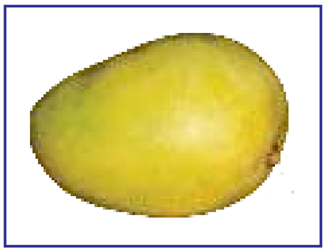

जरदालू आम

रत्नागिरी अल्फांसो आम

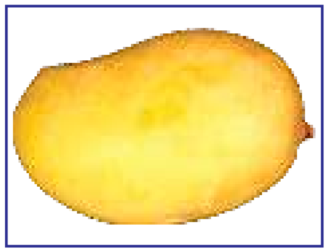

केसर आम

हाल ही में, महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र में उत्पादित आम हापुस (अल्फांसो) के संदर्भ में दिनांक 19 अप्रैल, 2018 को जीआई कार्यालय द्वारा एक महत्वपूर्ण निर्णय दिया गया। हापुस आम के लिये डॉ. बालासाहेब सावंत कोंकण कृषि विद्यापीठ, दापोली, रत्नागिरी, महाराष्ट्र द्वारा दिनांक 22 सितंबर, 2008 को जीआई पंजीकरण के लिये आवेदन किया था। इसके बाद अन्य याचिकाकर्ताओं, कोकण हापुस उत्पादक संघ ने दिनांक 12 मार्च, 2012 को देवगण अल्फांसो नाम से, केलशी परिसर आम उत्पादक सहकारी संघ, दापोली ने दिनांक 26 अगस्त, 2014 को रत्नागिरी हापुस नाम से पंजीकृत हेतु आवेदन किया। सभी व्यक्तिगत आवेदनों को निरस्त करते हुए पेटेंट, डिजायन और ट्रेड मार्क के महानियंत्रक ने सुझाव दिया कि जीआई के अलग-अलग नामों को टैग करने के बजाय ये कोंकण क्षेत्र के जिसमें सिंधुदुर्ग, रत्नागिरी और रायगढ़ के सभी आमों को हापुस टैग दिया जायेगा। इसके लिये नया आवेदन पत्र प्रस्तुत करना होगा। इसके बाद यह औपचारिक रूप से प्रदान किया जायेगा।

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
अगुणीय	अगुणी	नैपुण्यता	नैपुण्य
पूज्यनीय	पूज्य/पूजनीय	उत्कर्षता	उत्कर्ष
ग्रामीणवासी	ग्रामीण/ग्रामवासी	निरपराधी	निरपराध
मान्यनीय	माननीय	अनाथिनी	अनाथा
लब्धप्रतिष्ठित	लब्धप्रतिष्ठ	श्वेतांगिनी	श्वेतांगी
सौजन्यता	सौजन्य	गोपिनी	गोपी
धैर्यत	धैर्य	कवियत्रिणी	कवयित्री
उद्ण्डी	उदण्ड	भुजंगनी	भुजंगी
साम्यता	साम्य	चतुरिणी	चतुरा
सार्वभौमिक	सार्वभौम	विहंगिनी	विहंगी
गोप्यनीय	गोपनीय	कोमललांगिनी	कोमलांगी

जनपद लखनऊ के आम के बागों में पूरे वर्ष के दौरानं होने वाली कर्षण क्रियाओं का कैलेण्डर

शैलेन्द्र राजन[1], ए.के. सिंह[2], पी.के. शुक्ला[3], गुंडप्पा[4] एवं धीरज शर्मा[5]

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

जनवरी

- सामान्य समय से पूर्व निकली हुई पुष्प कलिकाओं (बौर) को यथासम्भव तोड़ देना चाहिये। इससे गुम्मा रोग का प्रकोप कम हो जाता है।
- यदि किसी कारण से गुजिया की रोकथाम के लिये एल्काथीन पट्टी नहीं लगायी जा सकी हो या क्लोरपायरीफॉस 1.5 डी. धूल का बुरकाव नहीं किया और गुजिया पेड़ पर चढ़ गयी हो, तो क्विनालफॉस 25 ई.सी. (1 मि.ली./ली.) या डाएमेथोएट 30 ई.सी. प्रतिशत (1.5 मि.ली./ली.) को पानी में घोल कर छिड़काव किया जाना चाहिये।
- गुजिया कीट के नियंत्रण के लिये लगायी गयी पॉलिथीन पट्टी को कपड़े से साफ कर देना चाहिये तथा यदि पॉलिथीन पट्टी खिसक गयी हो तो इसे ठीक कर देना चाहिये।
- पाला के प्रकोप से पौधों को बचाने के लिये नये पौधों को ढक कर बाग की सिंचाई करनी चाहिये।

फरवरी

- मधुमक्खियों की कॉलोनी बक्से सहित फूल आने पर बागों में रखना चाहिये। इससे परागण अच्छा होता है तथा फल अधिक मात्रा में लगते हैं।
- बौर निकलने के समय मिज कीट का प्रकोप दिखते ही क्विनालफॉस 25 ई.सी. (1 मि.ली./ली.) या डाएमेथोएट 30 ई.सी. प्रतिशत (1.5 मि.ली./ली.) को पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिये।
- बौर निकलने पर यदि भुनगा कीट का प्रकोप 5-10 भुनगा प्रति बौर हो तो नियंत्रण के लिये इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. (3-4 मि.ली. प्रति 10 ली.) पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिये।
- खर्रा रोग के संक्रमण की शुरूआत यदि दिखायी पड़े तो निदान हेतु प्रथम छिड़काव घुलनशील गंधक का 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से करना चाहिये।
- गुजिया के लिये लगायी गयी पॉलिथीन पट्टी को कपड़े से साफ करें।

मार्च

- भुनगा एवं खर्रा रोग की रोकथाम के लिये प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. (2 मिली/ली.) या थायामेथोक्जाम 25 डब्ल्यू पी (3 ग्राम/ली.) तथा घुलनशील गंधक 80 डब्ल्यू.पी. (2 ग्रा./ली.) या हेक्साकोनाजोल 4 डब्ल्यू. पी.+ जिनेब 68 डब्ल्यू.पी. या हेक्साकोनाजोल 5 एस. एल. (0.1%) पानी में मिला कर छिड़काव करना चाहिये। ध्यान रखें कि परागण के समय कीटनाशक का छिड़काव नहीं करना है।
- बौर को झुलसा एवं छोटे फलों को एन्थ्रेक्नोज के प्रकोप से बचाने हेतु कार्बेन्डाजिम + मेंकोजेब 63 +12 डब्ल्यू.पी. (2 ग्राम/ली.) या थायोफेनेट मिथाइल 70 डब्ल्यू. पी. (1 ग्रा./ली.) का छिड़काव करना चाहिये।

अप्रैल

- फलों को गिरने से रोकने लिए एन.ए.ए. 20 पी.पी.एम. (प्लेनोफिक्स 90 मि.ली./200 ली.) का छिड़काव करना चाहिये।
- गुम्मा रोग ग्रस्त बौर को हटा देना चाहिये।
- जब फल मटर के दाने के बराबर हो जाये तो सिंचाई शुरू कर देनी चाहिये। थाले बना कर 10-15 दिनों के अन्तराल पर 2-3 सिंचाई करनी चाहिये।
- आम बाग में फल मक्खी के नियंत्रण के लिये मिथाइल यूजीनाल यौन गंध ट्रैप (10 प्रति हे.) लगाना चाहिये।
- यदि ईंट के भट्टे बाग के पास हों या आम के बाग की भूमि बलुई हो तो कोयलिया तथा आंतरिक ऊतक

[1]निदेशक, [2,3]प्रधान वैज्ञानिक, [4]वैज्ञानिक एवं [5]सहायक निदेशक

सड़न के निदान हेतु बोरेक्स 1 प्रतिशत (10 ग्रा./ली.) का छिड़काव अन्तिम सप्ताह में करना चाहिये।

- प्रोह भेदक कीट से प्रभावित नये प्रोहों को काटकर कीट सहित नष्ट कर देना चाहिये। प्रोह भेदक कीट और पत्ती काटने वाले घुन (विविल) के नियंत्रण के लिए क्विनालफॉस 25 ई.सी. (2 मि.ली. दवा/ली.) का छिड़काव करना चाहिये।

मई

- फल मक्खी कीट के नियंत्रण के लिये यौनगंध ट्रैप लगाये रखना चाहिये।
- कोयलिया और आंतरिक विगलन के नियंत्रण के लिये 01 प्रतिशत बोरेक्स का छिड़काव करना चाहिये।
- फलों की पैकिंग के लिये आकर्षक तथा मजबूत गत्ते के डिब्बों की व्यवस्था करनी चाहिये।
- तुड़ाई उपरान्त होने वाले रोग तथा फल मक्खी के नियंत्रण के लिये फलों की थैलाबंदी करनी चाहिये।
- तुड़ाई से तीन सप्ताह पूर्व थायोफेनेट मिथाइल 70 डब्ल्यू. पी. (1.0 ग्राम प्रति लीटर) का पहला छिड़काव तुड़ाई उपरान्त होने वाले रोगों की रोकथाम के लिये करना चाहिये।
- जीवाणु कैंकर की संभावना होने पर स्ट्रैप्टोसाकलिन 200 पी.पी.एम.(0.2 मिली/ली.) का छिड़काव करना चाहिये।

जून

- यौनगंध ट्रैप के लिये नये प्लाईवुड गुटके लगाना चाहिये।
- परिपक्वता आने पर प्रात: अथवा सायंकाल में फलों की 8-10 मि.मी. डंठल सहित तुड़ाई की जानी चाहिये जिससे उन्हें दोपहर की गर्मी से बचा कर भंडारण अवधि को बढ़ाया जा सके।
- छोटे पौधों में फल की तुड़ाई सिकेटियर की सहायता से तथा ऊँचे वृक्षों में फल तोड़क यंत्र (हारवेस्टर) की सहायता से की जानी चाहिये।
- तुड़ाई किये गये फलों को सीधे मिट्टी के सम्पर्क में नहीं आने देना चाहिये।
- चेंप से फल को बचाने के लिए चेंप निकालना जरूरी है। फलों को रैक पर उल्टा रख कर इसे करें।
- तुड़ाई के बाद फल को सावधानीपूर्वक प्लास्टिक टोकरी में रखकर बाग से पैकेजिंग शेड तक परिवहन किया जाना चाहिये।
- पैकेजिंग शेड में फलों की ग्रेडिंग करना चाहिये। छोटे, विकृत तथा दागी या किसी प्रकार की चोट लगे फलों को अलग करना चाहिये।
- भंडारण के पूर्व फलों को साफ पानी से धोकर छाया में पुरी तरह सुखा लेना चाहिये।
- आम को एकसार पकाने के लिए 750 पी.पी.एम. इथरल (1.8 मि.ली./ली.) गुनगुने पानी ($52\pm2°$ सें) के घोल में 5 मिनट तक डुबाकर तदनुपरान्त साये में सुखाने के बाद भंडारण करना चाहिये।
- फलों को मंडियों तक ले जाने के लिए उचित व्यवस्था सुनिश्चित करनी चाहिये।
- उपचारित आम को कार्ड बोर्ड के आकर्षक तथा अन्दर से लाइनिंग किये 5 कि.ग्रा. की क्षमता वाले डिब्बों में स्वच्छ अवस्था में पैक कर निर्यात हेतु भेजना चाहिये।

जुलाई

- देर से पकने वाली किस्मों के बाग में यौनगंध ट्रैप के गुटके पुन: एक बार बदलना चाहिये।
- फल तुड़ाई एवं उसके उपरांत की जानी वाली कार्रवाई जून माह अनुसार इस माह भी की जानी चाहिये।
- प्रोह भेदक कीट से प्रभावित प्रोहों को काटकर कीड़े सहित नष्ट कर दें। प्रोह भेदक कीट और पत्ते काटने वाले घुन (विविल) के नियंत्रण के लिये क्विनालफॉस 25 ई.सी. (2 मि.ली./ली.) का छिड़काव करना चाहिये।
- 40 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट के साथ 250 ग्रा. एजोस्पाइरिलम मिला कर दो मीटर के व्यास वाले थाले में अच्छी तरह मिलाने की सिफारिश की गयी है। रासायनिक खादों की मात्रा (नाइट्रोजन 1000 ग्रा., फॉस्फोरस 500 ग्राम एवं पोटैश 1000 ग्राम) को तने से 1.50 मीटर की दूरी पर 10-20 सेंटीमीटर गहरी नाली में प्रयोग करना चाहिये तथा नाली को उर्वरक मिश्रण के बाद बंद कर देना चाहिये।

अगस्त

- तराई वाले इलाकों में शूट गाल सिला आम का मुख्य कीट है। इसका अगस्त में प्रकोप हो सकता है। इससे बचने के लिए 15 अगस्त के आसपास पहला छिड़काव थायामेथोक्साम 25 डब्ल्यू.जी. (0.30 ग्राम/ली.) या डाइमेथोएट 30 ई.सी. (2 मि.ली./ली.) का छिड़काव करना चाहिये।
- इसी माह में जाला बनाने वाला कीट (टेन्टकैटरपिलर कीट) का भी प्रकोप होता है। इसलिए जाला छुड़ाने वाले यंत्र से जाले को साफ करें एवं प्रभावित प्ररोहों को काट कर कीड़ों सहित जला दें। अगर प्रकोप अधिक हो तो कीटनाशकों जैसे लैम्डा साईलोथ्रिन 5 ई.सी. (1 मिली./ली.) का छिड़काव करना चाहिये।

सितंबर

- यदि संक्रमण हो और शूट गाल सिला का प्रकोप बना रहे तो एक और छिड़काव पुनः करना चाहिये। ध्यान रखें कि कीटनाशक बदल दें।
- रेड रस्ट या एन्थ्रेक्नोज के अधिक प्रकोप होने पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या कॉपर हॉइड्राक्साइड 50 डब्ल्यू.पी. (0.3%) का छिड़काव करना चाहिये।
- पैक्लोब्यूट्राजॉल का एक अन्तः प्रवाही वानस्पतिक पादप वृद्धि विनायक है इसे प्रति वृक्ष 3.2 मि.ली. प्रति लीटर छाया क्षेत्र की दर से तने से 1.5–2.0 मीटर दूरी पर बनायी गयी नाली में प्रयोग करना चाहिये।

अक्टूबर

- गुम्मा रोग का संक्रमण होने पर अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में 200 पी.पी.एम., एन.ए.ए. (40 मि.ली./100 ली.) का छिड़काव व्याधि नियंत्रण हेतु करना चाहिये।
- पैक्लोब्यूट्राजॉल का प्रयोग यदि सितंबर में नहीं किया हो तो प्रथम सप्ताह में करें।
- जाला कीट (टेन्टकैटरपिलर कीट) कीड़ों का अधिक प्रकोप हो तो उपर्युक्त बतायी गयी किसी एक दवा का प्रयोग करना चाहिये।
- उल्टा सूखा रोग (डाई बैक) से ग्रस्त टहनियों की कटाई–छँटाई करनी चाहिये। टहनियों को हरे हिस्से से 5–8 सेंटीमीटर नीचे से काटने के बाद कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या कॉपर हॉइड्राक्साइड 50 डब्ल्यू. पी. (0.3%) 3 ग्राम प्रति लीटर की दर से दो छिड़काव 15 दिनों के अन्तर पर करना चाहिये। इससे फोमा ब्लाइट को भी रोका जा सकेगा।

नवंबर

- बागों में उथली जुतायी करनी चाहिये जिससे मिज कीट, फल मक्खी, गुजिया कीट एवं जाले वाले कीट की वो अवस्थाएँ जो जमीन में दूसरे वर्ष आने तक पड़ी रहती हैं, नष्ट हो जायें। कुछ तो गुड़ाई करते समय मर जाती हैं, कुछ परजीवी एवं परभक्षी कीड़ों या दूसरे जीवों का शिकार हो जाती हैं और कुछ जमीन से ऊपर आने पर अधिक सर्दी या ताप की वजह से मर जाती हैं।
- यदि बाग में उकठा रोग की समस्या हो तो पौधों की जड़ों के पास उर्वरक के साथ 50–100 ग्राम थायोफेनेट मिथाइल 50 डब्ल्यू.पी. प्रति वृक्ष का प्रयोग करना चाहिए और सिंचाई करना चाहिये।
- शूट गाल सिला एवं जाला बनाने वाले कीड़ों से प्रभावित शाखाओं की छँटाई कर उन्हें नष्ट कर देना चाहिये।

दिसंबर

- गुजिया कीट को पेड़ों पर चढ़ने से रोकने के लिये इस माह के अन्तिम सप्ताह में पेड़ के तने पर चारों ओर भूमि से लगभग 40 सेंटीमीटर ऊपर मिट्टी की पतली परत चढ़ा कर 400 गेज की मोटी सफेद पॉलिथीन की 25 सेंटीमीटर चौथी पट्टी लपेट कर उसके दोनों तरफ सुतली से बाँधना चाहिये। तना के आसपास क्लोरपायरीकास 1.5 डी. 50 से 100 ग्राम प्रति पेड़ का छिड़काव करें।
- तना भेदक कीट के नियंत्रण के लिये पहले छेदों को साफ कर देते हैं, फिर छिद्रों में 0.05 प्रतिशत डाइक्लोरोवास 76 ई.सी. का घोल छेदों में डाल कर इसे बंद कर दें। इनका प्रकोप साल में एक ही बार होता है और जीवन चक्र लगभग एक साल का होता है। यदि प्रकोप होने पर तुरन्त रोकथाम कर ली जाय तो हानि की संभावना कम होती है।
- पाले के प्रकोप से पौधों को बचाने के लिए नये पौधों को ढ़क कर बाग की सिंचाई करनी चाहिये।

वैदिक वाङ्मय में आम तथा इसके भेषज्य उपयोग

अशोक कुमार श्रीवास्तव[1]
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

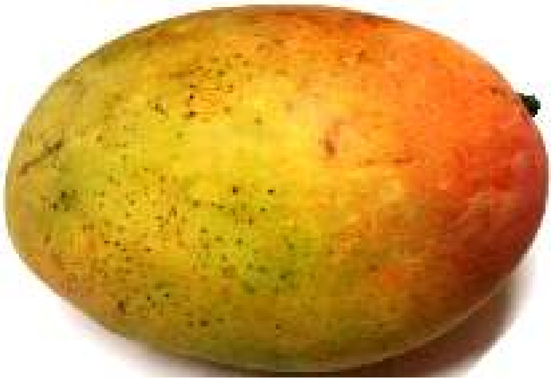

आम एक रसीला, स्वादिष्ट फल है तथा इसे हमारे देश में 'फलों के राजा' की संज्ञा दी गयी है। वनस्पति विज्ञान में आम को मेंजीफेरा इंडिका कहते है जो एनाकार्डिएसी कुल में वर्गीकृत किया गया है। इसके पुष्प में सामान्यतया केवल एक ही प्रजनन-क्षम पुंकेशर होता है। आम का हमारे वैदिक वाङ्मय तथा आयुर्वेदिक ग्रंथों में उल्लेख मिलता है। भारत के एक प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रंथ 'हारीत संहिता'[1] (लगभग 600 वर्ष ईसा पूर्व) में आम के गुण-दोष 17 वें अध्याय, 'फलवर्ग' में निमन्वत वर्णित है।

अपक्वामाम्रं फलमेव शा स्तं संग्राही पित्तासृजि कोपनञ्च।
तथा विपक्वं मधुरन्तु चाम्लं भेद्यं सपित्तामयनाशनञ्च॥

(हारीत संहिता, प्रथम स्थान 17.3)

अर्थात आम का कच्चा फल रक्त एवं पित्त दोष का कारक तथा संग्राही (मलोत्सर्ग को रोकनेवाला) है तथा परिपक्व फल मधुर अम्लीय, मल भेदक तथा पित्त-जन्य रोगों का शमन करते हैं।

हारीत संहिता में आम के कुछ अन्य उपयोग भी वर्णित हैं। इसी ग्रंथ के द्वितीय स्थान के 7 वें अध्याय, 'होमविधिर्नाम' में श्लोक संख्या 1-3 में उल्लेख है कि आम की लकड़ी (कुछ अन्य वृक्षों की लकड़ियों के साथ) 'समिद्वर्ग' में आती है अर्थात हवन में समिधा के रूप में प्रयुक्त होती है। विशेषकर अश्लेषा नक्षत्र के पूजन के बाद आम की लकड़ी से 'सप्तत्यग्नि' मंत्रोच्चार से हवन किया जाता है। (श्लोक संख्या 4)।

वर्ष 1600 में लिखित, आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ 'भावप्रकाश निघंटु'[2] के आम्रादिफलवर्गः के अनुसार संस्कृत भाषा में आम को रसाल, सहकार, अतिसौरभ, कामाङ्ग, मधुदूत, माकन्द तथा पिकवल्लभ नामों से जाना जाता है।

आम की उत्पत्ति

नारदपुराण में आम की उत्पत्ति के बारे में उल्लेख मिलता है। इस पुराण के पूर्वभाग के द्वितीयपाद के विषय संख्या 52, 'त्रिस्कंध ज्योतिष का संहिता' प्रकरण (विविध उपयोगी विषयों का वर्णन)' के अनुसार आम की उत्पत्ति 'पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र' से हुई है। इसी पुराण के उत्तरभाग के विषय संख्या 139, 'गया में तीसरे और चौथे दिनका कृत्य, ब्रामहतीर्थ तथा विष्णुपाद आदि की महिमा' के अनुसार-

आम्रं ब्रम्हसरोद्भूतं सर्वदेवमयं विभूम्।
विष्णुरूपं प्रसिञ्चामि पितृणाम् मुक्तये॥

(ना.पु. उत्तर भाग 136.6)

अर्थात ब्रह्मसरोवर में प्रकट हुआ आम्र का वृक्ष सर्वदेवमय है (या समस्त देवता इसमें निवास करते हैं), यह सर्वव्यापक लक्ष्मीपति भगवान विष्णु का भी स्वरूप है। मैं (अपने) पितरों की (मृत्यु-पर्यत) तृप्तिलाभ के निमित्त इस (आम्र वृक्ष) का अभिषेक करता हूँ।

त्रिकुट पर्वत की तराई में स्थित 'ऋतुमान' उद्यान में नाना प्रकार के आम के वृक्षों का उल्लेख

श्रीमद्भागवत-सुधा-सागर [शुक-सागर] के अष्टम स्कन्ध के अध्याय 2, 'ग्राहके द्वारा गजेंद्र का पकड़ा जाना' में जिस सुरम्य सरोवर में ग्राह के द्वारा गजेंद्र का पैर पकड़ा गया था तथा भगवान श्रीहरि ने उसका उद्धार किया था वह सरोवर त्रिकुट पर्वत की तराई में स्थित महात्मा वरुण के उद्यान 'ऋतुमान' में स्थित था जिसमें में फूलों एवं फलों से आच्छादित वृक्षों में तरह-तरह के आमों के वृक्ष भी थे।

[1]सेवानिवृत्त प्रभागाध्यक्ष

आम का वृक्षारोपण तथा सिंचन

अग्निपुराण के अध्याय 282, 'आयुर्वेदोक्त वृक्ष विज्ञान' के अनुसार घर के दक्षिण में आम का वृक्ष लगाना अच्छा होता है। इसी पुराण के अध्याय 247, गृह के योग्य भूमि, चतु:षष्टिपद वास्तुमंडल और वृक्षारोपण' के अनुसार आम्र वृक्ष का शीतल जल से सिंचन उत्तम होता है। भविष्यपुराण के मध्यमपर्व के अध्याय 10/11 के अनुसार आम का वृक्षारोपण अभीष्ट कामनाप्रद होता है तथा आम के वृक्ष की वृद्धि एवं विकास के लिये नारियल का पानी (डाभ) एवं शहद को जल में मिलाकर सींचना प्रशस्त है। 'पञ्च-पल्लव' में आम, पीपल, बरगद, प्लक्ष (पाकड़) तथा उदुम्बर (गूलर) की पत्तियाँ आती है।

एकाम्रकक्षेत्र तीर्थ

ब्रह्मपुराण के विषय 25, 'एकाम्रकक्षेत्र तथा पुरुषोत्तमक्षेत्र की महिमा' के अनुसार आठ तीर्थों से युक्त एकाम्रक नाम से विख्यात क्षेत्र वाराणसी के समान असंख्यों शिव लिंगों से युक्त और शुभ है। वहाँ विद्वानों, धन-धान्यों, सुंदर नगर, उद्यानों, पुष्पित वृक्षों सरोवरों, आदि की अधिकता है। पूर्वकाल में वहाँ एक आम का वृक्ष होने के कारण यह 'एकाम्रकक्षेत्र' नाम से विख्यात हुआ।

वाराहमिहिर की बृहत्संहिता में आम

वाराहमिहिर रचित बृहत्संहिता[3] (505-587 वर्ष ईसा के बाद) के अध्याय 77, 'गंधयुक्ति' के श्लोक 27 में उल्लेख है कि मुख हेतु सुगंध-द्रव्य पारिजात पुष्प कि सुगंध से बनाये जाते थे तथा इसे अधिक समय तक प्रभावी रखने के लिये इसमें जायफल, कर्पूर, कस्तुरी मिलकर इस्नपर आम का रस तथा शहद छिड़का जाता था (ससहकार मधुसिक्ते)। इसी ग्रंथ के अध्याय 59, 'वनसम्प्रेवेशाध्याय' के श्लोक 6 के अनुसार अलग-अलग वर्ण के व्यक्तियों द्वारा देव मूर्ति निर्माण के निमित्त अलग-अलग प्रकार वृक्षों की लकड़ियाँ प्रयुक्त होती थी। शूद्रों द्वारा देव मूर्ति निर्माण के लिए तिन्दुक, केशर, सरजा, अर्जुन, आम एवं साल की लकड़ियाँ प्रशस्त थीं। अध्याय 29, 'कुसुमलताध्याय' के श्लोक 11 के अनुसार 'आम्रै क्षेमं' अर्थात लोगों की प्रसन्नता /कुशल-क्षेम का अनुमान आम के वृक्ष के फूलने-फलने से लगाया जाता था। अध्याय 51, 'अंगविद्या' के अनुसार, यदि प्रश्नकर्त्ता के हाथ में क्रमश: बरगद, महुआ, तिन्दुक, जामुन, पाकड़, आम, जुजूबे का फल होता तो उन्हें क्रमश: धन, स्वर्ण, भृत्य (नौकर), लौह (का समान), रेशमी वस्त्र, चांदी एवं तांबे की प्राप्ति होगी।

आम के भेषज्य गुण

हारीत संहिता[1] के ही तृतीय स्थान के अध्याय 51, 'गर्भोपर्द्वचिकित्सा' के श्लोक संख्या 7-9 में उल्लेख है कि कुड़ा की छाल, अनारदाना, पाठा, सेम (निष्पाव) की फली, बिल्व का गूदा, खरेटी, जामुन, आम एवं इनके पत्ते (जो भी इनमें से मिल सके) उनको खाण्ड और दही के साथ सेवन करने से स्त्रियों में गर्भावस्था के दौरान होनेवाला वात-दोष-जन्य अतिसार (दस्त) का शमन हो जाता है।

भावप्रकाशनिघंटु[2] के अध्याय आम्रादिफलवर्ग: में आम के वृक्ष के फूलों, पत्तियों, कच्चे फल (अमिया), वृक्ष पर पके फल, कृत्रिम रूप से पके फल (पाल लगाना), अमचूर, अमावट, आम की गुठलियों की मज्जा (मींगीं) के भेषज्य गुणों का वर्णन किया गया है।

आम का कच्चा फल (अमिया)(आमं बालं) काषाय तथा अम्लीय रस-युक्त, रुचिकर परंतु वात एवं पित्त दोषों को उत्पन्न करता है। पकने से पूर्व आम का कच्चा फल अत्यंत अम्लीय तथा रुक्ष होने के साथ-साथ वात, पित्त एवं कफ तीनों दोषों के अतिरिक्त रक्त विकार को भी उत्पन्न करता है। (श्लोक 3)।

अमचूर (शुष्काम्रफलम्) अम्लीय तथा काषाय रस युक्त, स्वादिष्ट, कफ तथा वात दोषों को दूर करने के साथ साथ मल का भेदन भी करता है। (श्लोक 4)।

पके आम का फल (पक्वाम्रफलम्) पहले मधुर तथा अंत में काषाय रसयुक्त, वृष्य (पुरुषों में वीर्य वर्धक), स्निग्ध, बल्य (शक्ति प्रद), सुखद अनुभूति दायक, गुरु (भारी), हृदय हेतु लाभकर, वर्ण्य (वर्ण को उत्तम करने वाला), शीतल, वात दोष निवारक, किंचित पित्तदोष एवं कफ कारी, भूख (जठराग्नि) तथा शुक्र वर्धक होता है। (श्लोक 5)। पेड़ पर ही पका फल (वृक्षपक्वाम्रफलम्) मधुर और अम्लीय रस युक्त, गुरु (भारी), वात नाशक तथा कुछ पित्त दोष कारक है। (श्लोक 6)।

कृत्रिम रूप से पकाया गया आम (पाल का आम) का अम्लीय रस निकाल जाने से मधुर तथा पित्त नाशक हो जाता है। इसे चूसना अत्यंत हल्का (लघु), रुचिकर, बल्य,

वृष्य, शीतल, शीघ्र पचनेवाला तथा वात-पित्त दोष निवारक है। (श्लोक 7-8)।

पके आम से निचोड़ा गया रस बलकारक, गुरु, वातनाशक, हृदय हेतु अहितकर, अत्यंत संतर्पण (पुनःपूर्ति) करनेवाला, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक) एवं कफ दोष की वृद्धि करता है। (श्लोक 9)।

परिपक्व आम के टुकड़े (आम्रखण्ड) भारी (गुरु), अत्यंत रोचक, देर से हजम होने वाले, मधुर रस युक्त, बृंहण, बल्य (शक्तिवर्धक), शीतल एवं वातनाशक होते हैं। (श्लोक 10)।

दुग्ध के साथ पका आम खाना (दुग्धाम्र) रोचक, स्वादिष्ट, गुरु, शीतल, वात-पित्त नाशक, बृंहण, बल्य, वृष्य (वीर्य वर्धक), वर्ण्य (रूप-रंग को उत्तम करने में सहायक) होता है। (श्लोक 11)।

अमावट (आम्रावर्त्तः) रोचक, स्वादु, लघु (हल्का), वात-पित्त दोष नाशक, प्यास लगने तथा उल्टी (वमन) को कम करता है। (श्लोक 15-16)।

आम की गुठली की मींगीं या 'कोईलिया' (आम्रबीजम्) स्वाद में काषाय, कुछ मधुर एवं अम्लीय होती है। यह उल्टी, दस्त (अतिसार) तथा हृदय की जलन (दाह) का निवारण करती है। (श्लोक 17)।

आम के नये-नये पत्तों (पल्लव) का भी भेजष्य प्रयोग के बारे में उल्लेख है कि इसका सेवन रुचिकर होने के साथ-साथ कफ तथा पित्त दोषों का भी शमन करता है। (श्लोक 18)।

आम अधिक खाना (आम्रातियोगः) स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से हितकर नहीं है। इससे मंदाग्नि (भूख कम लगना), विष-ज्वर, रक्त विकार, मलावरोध (कांस्टीपेशन) तथा नेत्र संबंधी रोग उत्पन्न करता है। खट्टा आम अधिक खाना तो बिलकुल भी हितकर नहीं है। (श्लोक 12-13)। इस दोष के विवरण हेतु सोंठ के साथ जल पीना या सोंचल नमक (काला नमक) के साथ जीरे का सेवन हितकर है। (श्लोक 14)।

श्री प्रियव्रत शर्मा की पुस्तक 'द्रव्यगुण विज्ञान' भाग 2 (वेजिटेबिल ड्रग्स) में आम के गुणो-दोषों तथा विभिन्न शारीरिक संस्थानों से संबंधित कर्म एवं इनके प्रयोगों का उल्लेख किया गया है। सामान्यतया आम की छाल, पत्र, पुष्प एवं गुठली की मींगीं (मज्जा) पित्त एवं कफ शामक, परिपक्व आम वात, पित्त शामक एवं कच्चा आम त्रिदोषकारक हैं। इस ग्रंथ में आम के विभिन्न प्रयोज्य अवयवों का भेषज्य उपयोग निम्नवत उल्लिखित है।

प्रयोज्य अवयव	रोग निवारण में प्रयोग
छाल	रक्त-पित्त*
पत्ती	पल्लव का रस-पूयमेह [पंकिल (टरबिड) मूत्र का अधिक उत्सर्जन]
पुष्प	रक्त-पित्त
परिपक्व फल	बिबन्ध, कोष्ठगत रौक्ष्य, हृदय रोग, खून की कमी, रक्त पित्त, शुक्र दौर्बल्य बल्य, बृंहण, वृष्य, वर्ण्य
कच्चा फल	चटनी-भोजन में अरुचि तथा अग्निमांद्य आग में भुना फल का पानक-अंशुघात (लू लगना) तथा दाह
गुठली की मींगीं (मज्जा)	प्रदर (रक्त व श्वेत, दोनों ही में), कृमि, अतिसार, रक्त-पित्त, प्रमेह, पूयमेह

*रक्त पित्त में छाल, पत्ती एवं गुठली की मज्जा (मींगीं) का प्रयोग करते है।

#रक्त-स्राव, क्षत तथा व्रण में छाल, पत्र, पुष्प एवं गुठली की मज्जा का चूर्ण लगाते हैं।

(*स्रोतः* प्रियव्रत शर्मा, 'द्रव्यगुण विज्ञान' भाग 2)

गरुड़ पुराण के 'आयुर्वेद प्रकरण' में वर्णित आम के औषधीय उपयोग

गरुड़ पुराण के 'आचारखंड' के 'आयुर्वेद प्रकरण' के अध्याय 169, पदार्थों के गुण-दोष और औषधि सेवन में अनुपान का महत्व' में उल्लेख है कि परिपक्व आम वातकारक हैं तथा वृष्य, बल्य तथा वर्ण्य होने के साथ-साथ शरीर में मांस को बढ़ाता है। इसी पुराण के अध्याय 170, 'ज्वर, अतिसार आदि रोगों का उपचार' में वर्णित है कि बेल का गूदा तथा आम की गुठलियों की मज्जा का काढ़ा मिश्री तथा शहद के साथ सेवन अतिसार (दस्त) से मुक्ति दिलाता है। शल्लकी (सलाई), बेर, जामुन, प्रियांक, आम, अर्जुन और धाव वृक्षों की छाल का काढ़ा दुग्ध और शहद के साथ पीने से रक्त-संबंधी विकार दूर होते हैं। अध्याय 176, 'पलित केश तथा कर्णशूल के उपचार' के अनुसार आम की

गुठलियों की मज्जा के चूर्ण का सिर में लेप करने से बाल महीन हो जाते हैं। इसमें आंवला का चूर्ण मिलाकर सिर में लेप करने से बालों की जड़ मजबूत होती है, बाल घने, लंबे तथा चिकने हो जाते हैं तथा उनका टूट-टूट कर झड़ना रुक जाता है।

गीताप्रेस गोरखपुर के **आरोग्य-अङ्क** (पुनर्मुद्रण विक्रम संवत 2071, वर्ष 2015) में आम के विभिन्न रोगों में निमन्वत भेषज्य उपयोग उल्लिखित है।

- आम की बौर (मंजरी) शीतल, रुचिकर, ग्राही, वातजन्य, अतिसार, कफ, पित्त, प्रदर-दुष्टि और रुधिर नाशक है (पृ. 464)।
- पके आम के रस में शहद मिश्रित कर पीने से पीलिया रोग दूर हो जाता है (पृ. 428)।
- जिस स्त्री को गर्भ न टिकता हो तब उसे आम के वृक्ष की अंतर-छाल, गाय के घृत में पुराने गुड़ तथा एक लौंग उसके गर्भवती होने की उपरांत खिलाने से गर्भ बना रहेगा (पृ.566)।
- गले के रोग में आम के पत्तों का धुआँ देने से आराम हो जाता है (पृ.629)।
- हैजे में कच्चे आम के गूदे को शक्कर मिलाकर खिलाना लाभकर है (पृ. 629)।
- पेट में कृमि को मारने के लिये आम की गुठली चार माशे खाना लाभकर है (पृ.629)।
- महिलाओं में होने वाले प्रदर रोग (अनियमित मासिक स्राव एवं कम या अधिक होना)। आम, पीपल, बरगद, जामुन एवं बबूल की छाल तीन-तीन तोले को मोटा कूट (जौकुट) कर 250 तोले पानी में पकाएँ। जब 25 तोले पानी रह जाए तो उसे छान कर 60 तोले मिश्री मिलाकर पुनः पकाएँ। एक तार की चाशनी बन जाने पर इसे ठंढा कर इसमें 7 तोला मुलहठी मिलाकर सुबह शाम 25-25 ग्राम देने से स्त्रियों के हर प्रकार का प्रदर रोग दूर हो जाता है (पृ.777)।

आम से निर्मित कुछ औषधियाँ

आम की गुठलियों की मज्जा एक प्रमुख अवयव के रूप में प्रयोग कर एक आयुर्वेदिक औषधि, पुष्याङ्ग चूर्ण बनाया जाता है जो स्त्रियों में अनियमित मासिक स्राव तथा योनि मार्ग में संक्रमण से होने वाले स्रावों के उपचार के लिये प्रयुक्त होता है।

आम से एक होमियोपैथिक औषधि, मेंजीफेरा इंडिका बनायी गयी है जो निष्क्रिय रक्तस्राव (हिमोरेज), गर्भाशय, गुर्दे, गैस्ट्रिक, फुफ्फुसीय और आंतों के रोगों के सामान्य उपचार में प्रयुक्त होती है। नासिका शोथ, छींकना, ग्रसनी शोथ (फेरींजाईटिस) और गले की अन्य परेशानियों के उपचार के लिये, आंतों की बहुत समय से हो रही जलन, फूली हुई (वैरिकोज) रक्त वाहिकाएँ, रुधिर परिसंचरण तथा मांसपेशियों को आराम प्रदान करने हेतु भी इसे प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे प्रिय रसीले फल आम का पौराणिक तथा आयुर्वेदिक ग्रन्थों में प्रचुर उल्लेख मिलता है तथा मानव कल्याण के लिये इसके अवयवों को अनेक रोगों के उपचार में प्रयोग किया गया है। परंतु इन्हें औषधि के रूप में प्रयोग किसी अधिकृत/ जानकार वैद्य की देखरेख में ही करना हमारे स्वास्थ्य के हित में होगा।

---

1 हारीत संहिता, वैद्य जयमीनी पाण्डेय (संपादक व अनुवादक) (2010), चौखम्बा विश्वभारती, वाराणसी, पृ. 544।

2 भावप्रकाश निघंटु (अथ आम्रादिफलवर्ग, चुनेकर के. सी. तथा जी. एस. पाण्डेय (2002), चौखम्बा विश्वभारती, वाराणसी, पृ. 551-555)।

3 वाराहमिहिर बृहत्संहिता (अनूदित, संपादित व टिप्पणी पंडितभूषण वी. सुब्रमन्य शास्त्री तथा एम.आर. भट), वी. बी. सुब्बैया एंड संस, बंगलोर, पृ. 1105।

नोट: ऊपर दिये गए विभिन्न पौधों के वानस्पतिक नाम इंटरनेट से लिये गये हैं।

प्राथमिकता निर्धारण, अनुवीक्षण एवं मूल्यांकन इकाई (पी.एम.ई.) - एक परिचय

प्रीति शर्मा[1], जितेन्द्र कुमार[2], सुशील कुमार यादव[3] एवं आर. एम.खान[4]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

उपोष्ण फलों के विभिन्न पहलुओं पर अनुसंधान करने के उद्देश्य से भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरू के तत्वावधान में 4 सितंबर, 1972 को केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान की स्थापना केन्द्रीय आम अनुसंधान केन्द्र के नाम से की गयी जिसे 1 जून, 1984 को केन्द्रीय उत्तर मैदानी उद्यान संस्थान के रूप में पूर्ण संस्थान का दर्जा प्रदान कर 14 जून, 1995 को भा.कृ.अनु.प. -केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान के रूप में पुनः नामित किया गया। संस्थान का एक क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र 28 फरवरी, 2016 एवं एक कृषि विज्ञान केन्द्र 21 जनवरी, 2017 को मालदा (प.बंगाल) में स्थापित किया गया। संस्थान चार प्रभागों, फसल सुधार एवं जैव प्रौद्योगिकी, फसल उत्पादन, फसल सुरक्षा एवं तुड़ाई उपरांत प्रबंधन एवं पाँच सहायक इकाईयों नामतः प्राथमिकता निर्धारण, अनुवीक्षण एवं मूल्यांकन (पी.एम.ई.) इकाई, पुस्तकालय, प्रक्षेत्र प्रबंधन, संपदा एवं कृषि ज्ञान प्रबंधन इकाई द्वारा कार्य करते हुए निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर है। संस्थान उपोष्ण फलों के सुधार, उत्पादन, संरक्षण एवं तुड़ाई उपरांत प्रबंधन आदि आयामों पर कार्य कर रहा है एवं शोध उपरांत इसने उपोष्ण फलों की उन्नत किस्में विकसित करने के साथ-साथ नवीनतम प्रौद्यागिकियाँ विकसित की हैं। संस्थान के इन शोधों एवं अन्य गतिविधियों को परिषद, सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों तक पहुँचाने में पी.एम.ई. एक प्रमुख कड़ी का कार्य करती है। यह इकाई जिससे संस्थान का विकास प्रतिबिंबित होता है, संस्थान के आंतरिक एवं बाहर की गतिविधियों का समन्वय करती है। पी.एम.ई. इकाई संस्थान के शोध कार्यक्रमों एवं शोध प्रस्तावों की जाँच एवं समीक्षा कर उसकी प्राथमिकता का निर्धारण एवं नियत कालीन बैठकों के माध्यम से आन्तरिक शोध लेखा परीक्षा भी करती है। साथ ही पी.एम.ई. इकाई एक एकीकृत दृष्टिकोण के रूप में कार्य करता है जिसमें ग्राहकों, नीति निर्माताओं एवं शोधकर्ताओं के विचारों का समायोजन एवं समन्वय किया जाता है। पूर्व में तकनीकी इकाई के रूप में पी.एम.ई. के कार्यों को सम्पादित किया जाता था जिसका कार्यक्षेत्र सीमित था। राष्ट्रीय कृषि प्रौद्योगिकी परियोजना (एन.ए.टी.पी.) के माध्यम से 1999 में पी.एम.ई. (योजना, निगरानी एवं समन्वय इकाई) की स्थापना की गयी जिसे दिनांक 27 जून, 2007 में योजना, निगरानी एवं मूल्यांकन इकाई के रूप में पुनः नामित किया गया। तत्पश्चात दिनांक 1 दिसंबर, 2010 को इस इकाई को प्राथमिकता निर्धारण, अनुवीक्षण एवं मूल्यांकन इकाई (पी.एम.ई) का नाम दिया गया। पी.एम.ई इकाई द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा वित्तपोषित योजना "राष्ट्रीय कृषि नवाचार निधि" पूर्व नाम "बौद्धिक संपदा प्रबंधन एवं प्रौद्योगिकी हस्तांतरण/व्यावसायीकरण" के तहत स्थापित प्रौद्यागिकी प्रबंधन इकाई (आई.टी.एम.यू.) के कार्यों का समन्वयन भी किया जाता है। आई.टी.एम.यू. का मुख्य उद्देश्य संस्थान की उभरती प्रौद्योगिकियों की पहचान कर एवं बौद्धिक संपदा का संरक्षण/प्रबंधन और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण/व्यावसायीकरण करना है जिसके अन्तर्गत संस्थान द्वारा विकसित 11 प्रौद्योगिकियों का व्यावसायीकरण किया गया है एवं मलिहाबाद, लखनऊ के किसानों द्वारा संरक्षित आम किस्मों (37), अमरूद की किस्मों (2) एवं मालदा की लगभग 48 किस्मों का "पौध किस्म कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण (पीपीवीएफआरए)" में पंजीकृत किया गया है।

पी.एम.ई. की प्रमुख गतिविधियाँ

निदेशक के निदेशानुसार पी.एम.ई. द्वारा निम्नलिखित गतिविधियों का निष्पादन किया जाता है।

1. अनुसंधान प्रस्तावों एवं कार्यक्रमों की प्राथमिकता का निर्धारण, नियोजन एवं मूल्यांकन करना।
2. आर.पी.एफ. का रखरखाव, परियोजना रिपोर्ट का मूल्यांकन एवं विभिन्न दस्तावेजों को तैयार करना।
3. पंचवर्षीय समीक्षा दल, शोध सलाहकार समिति, संस्थान शोध समिति आदि महत्वपूर्ण बैठकों का

[1]वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी, [2]शोध सहयोगी, [3]संविदाकर्मी एवं [4]प्रधान वैज्ञानिक

आयोजन कर उनकी सिफारिशों/सलाहों आदि का संश्लेषण एवं कार्यवृत्त तैयार करना।

4. परिषद एवं संस्थान के मध्य कड़ी की भूमिका निभाने के अतिरिक्त विभिन्न सरकारी, सार्वजनिक एवं निजी संगठनों और सरकारी/अर्द्ध-सरकारी एजेंसियों की संस्थान की विभिन्न अनुसंधान, प्रशिक्षण एवं विस्तार से संबंधित गतिविधियों द्वारा समन्वय स्थापित करना।
5. अन्त: एवं बाह्य वैज्ञानिक विशेषज्ञों द्वारा वैज्ञानिकों के शोध उपरान्त विकसित किये गये तकनीकों का सत्यापन एवं प्रभाव के मूल्यांकन हेतु समन्वयन करना।

नियमित गतिविधियाँ

पी.एम.ई. इकाई द्वारा निदेशक को निम्नलिखित क्रियाकलापों में सहयोग प्रदान किया जाता है।

1. अनुसंधान लक्ष्य एवं उपलब्धियों की मासिक, तिमाही एवं छमाही रिपोर्ट तैयार करना एवं परिषद को प्रेषित करना।
2. संस्थान की वार्षिक योजना और बजट संबंधी दस्तावेज की तैयारी में भागीदारी करना।
3. विभिन्न दस्तावेजों (क्यू.आर.टी., आर.ए.सी., आई. आर.सी., आर.एफ.डी., सिटीजन चार्टर, विजन, आई. एस.ओ., शोध उपलब्धियाँ आदि) को तैयार करना।
4. मुख्यत: इन-हाउस परियोजनाओं, बाह्य वित-पोषित परियोजनाओं, परामर्श एवं अनुबंध और संविदा सेवा परियोजनाओं की प्रगति का मूल्यांकन करना।
5. वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत व्यवसाय उन्नति योजना (सी.ए. एस.) के अन्तर्गत प्रस्तुत प्रार्थना-पत्र, पुरस्कार एवं अन्य संस्थानों/संगठनों में विभिन्न पदों हेतु आवेदित दस्तावेजों का मूल्यांकन एवं सत्यापन करना।
6. प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से संस्थान के वैज्ञानिक/तकनीकी/प्रशासनिक एवं अन्य वर्गों के कर्मचारियों की क्षमता निर्माण करना।
7. विभिन्न संसदीय प्रश्नों के उत्तर, आर.टी.आई., ऑडिट पैरा, अति महत्वपूर्ण व्यक्तियों, किसानों एवं बागवानी द्वारा वांछित जानकारियाँ प्रदान करना।
8. शोध पत्र/शोध सारांश, लोकप्रिय लेख एवं अन्य प्रकाशनों का निरीक्षण एवं प्रेषण।
9. नव-नियुक्त वैज्ञानिकों की ओरिएन्टेशन एवं प्रोफेशनल अटैचमेंट ट्रेनिंग (पी.ए.टी.) संबंधी व्यवस्था।
10. डेयर रिपोर्ट, आई.सी.ए.आर. रिपोर्टर, आई.सी.ए.आर. न्यूज हेतु संस्थान की सूचनाओं का संकलन करना।
11. क्षेत्रीय समिति, निदेशक सम्मेलन, एस.ओ.सी. इत्यादि बैठकों हेतु संस्थान से संबंधित सूचना परिषद को उपलब्ध कराना।
12. राज्य कृषि विश्वविद्यालय, शिक्षण संस्थानों एवं अन्य संगठनों से समझौता ज्ञापन करना।
13. आई.टी.एम.यू. द्वारा समय-समय पर किसानों के लिये भौगोलिक संकेत (जी.आई.), पादप किस्मों के पंजीकरण, स्टार्टअप, उद्यमिता विकास से संबंधित जागरूकता कार्यक्रम का आयोजन करना।
14. भारतीय कृषि कौशल परिषद् (एएससीआई) के माध्यम से बेरोजगार युवाओं, खेती एवं मजदूर श्रमिकों के कौशल विकास एवं उद्यमिता विकास हेतु प्रशिक्षण कराना।

पी.एम.ई. द्वारा संकलित/उपलब्ध प्रमुख दस्तावेज

- विजन 2020, 2025, 2030 एवं 2050।
- विकसित किस्में, प्रौद्योगिकियाँ एवं मूल्य संवर्धित उत्पाद।
- फसल प्रोफाईल डेटाबेस।
- फल किस्मों का प्रभाव मूल्यांकन।
- इन-हाउस एवं बाह्य वित-पोषित परियोजनाओं का रिकार्ड
- आई.एस.ओ. 9001:2008 एवं 9001:2015।
- आर.एफ.डी.।
- संस्थान का नागरिक/ग्राहक चार्टर।
- ई.एफ.सी./वार्षिक योजनाएँ।
- क्यू.आर.टी., आर.ए.सी., आई.आर.सी.।
- कैबिनेट रिपोर्ट, एच.पी.आर.,एच.वाई.पी.एम., ई-समीक्षा एवं स्वच्छ भारत अभियान।
- संसदीय प्रश्न।
- संस्थान के प्रकाशन।
- वार्षिक प्रतिवेदन।
- ई-कृषि मंच।

पूर्वी भारत में द्वितीय हरित क्रांति की आवश्यकता

संजय कुमार सिंह[1] एवं राजीव रंजन राय[2]
भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर, बिहार

भारत में पहली हरित क्रांति की शुरुआत सन 1966-67 में हुई जो पारंपरिक कृषि को आधुनिक तकनीकी द्वारा प्रतिस्थापित किये जाने के रूप में सामने आयी। कृषि क्षेत्र में ये तकनीकियाँ अचानक आयीं, तेजी से इनका प्रसार हुआ और थोड़े ही समय में इनसे इतने आश्चर्यजनक परिणाम निकले कि देश के योजनाकारों, कृषि विशेषज्ञों तथा राजनीतिज्ञों ने इस अप्रत्याशित प्रगति को 'हरित क्रान्ति' की संज्ञा प्रदान कर दी।

पहली हरित क्रांति का प्रभाव गेहूँ, ज्वार, बाजरा आदि कुछेक विशेष फसलों तक ही सीमित रहा। अन्य फसलों पर इसका कोई प्रभाव नहीं देखा गया। यहाँ तक कि चावल भी इससे बहुत कम ही प्रभावित रहा। व्यापारिक फसलें भी इससे अप्रभावित ही रहीं। परिणामस्वरूप, केन्द्र सरकार ने नयी राष्ट्रीय कृषि नीति की घोषणा 28 जुलाई, 2000 को की। इस नीति में सरकार ने 2020 तक कृषि के क्षेत्र में प्रति वर्ष 4 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य भी रखा। नयी कृषि नीति का वर्णन 'इन्द्रधनुष क्रान्ति' के रूप में किया गया है जिसमें सभी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देश के कृषि क्षेत्र में विभिन्न क्रांतियों 'हरित क्रांति' (खाद्यान्न उत्पादन), 'श्वेत क्रांति' (दुग्ध उत्पादन), 'पीली क्रांति' (तिलहन उत्पादन), 'नीली क्रांति' (मत्स्य उत्पादन), 'लाल क्रांति' (मांस/टमाटर उत्पादन), 'सुनहरी क्रांति' (सेब उत्पादन), 'भूरी क्रांति' (उर्वरक उत्पादन), 'ब्राउन क्रांति' (गैर-परम्परागत ऊर्जा स्रोत), 'रजत क्रांति' (अण्डे/मुर्गी) एवं 'खाद्यान्न श्रृंखला क्रांति' (खाद्यान्न/सब्जी/फलों को सड़ने से बचाना) को एक साथ लेकर चलना होगा। इसी को 'इन्द्रधनुषी क्रान्ति' कहा गया।

आज के जमाने मे 'हर बूंद, अधिक फसल' पर जोर देते हुए कृषि के क्षेत्र में मृदा को स्वस्थ बनाये रखने के साथ साथ इस पर और अनुसंधान की जरूरत है और बीजों, जल की गुणवत्ता, उर्वरक की मात्रा को मिट्टी के स्वास्थ्य के अनुसार देना जरूरी है।

[1]वैज्ञानिक एवं [2]वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

पहली हरित क्रांति कहाँ तक असफल रही

जैसे-जैसे समय बीतता गया, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अँधाधुँध प्रयोग ने यद्यपि फसलों का उत्पादन बढ़ा दिया, लेकिन जमीन की उत्पादकता को करीब- करीब ख़त्म कर दिया।

पंजाब ही नहीं देश के उन हिस्सों में भी जहाँ पानी की कमी थी, हरित क्रांति असफल साबित हुई। ग्रीन पर इतना जोर हो गया कि यह ग्रीन के बजाये ग्रेन क्रांति में तब्दील हो गया।

वह इसलिए क्योंकि सिर्फ ग्रेन के बाजार को समर्थन दिया गया और किसी के लिये विपणन की व्यवस्था नहीं की गयी।

उस वक्त की कृषि नीति में रासायनिक उर्वरक जमीन के स्वाभाविक पौष्टिक तत्वों से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गये और उन्हें प्राथमिकता मिलने लगी। विद्यमान उत्पादन क्षमता को कायम रखने के लिये अधिक-से-अधिक रासायनिक उर्वरक डाले गये। साथ ही कीटनाशकों का प्रयोग भी बढ़ गया।

न सिर्फ मिट्टी की पौष्टिकता पर ही इसके दुष्प्रभाव दिखे, बल्कि सामाजिक स्तर पर इसके परिणाम छोटे किसानों के लिये घातक सिद्ध हुए।

द्वितीय हरित क्रांति की जरूरत क्यों?

पूर्वी भारत में हरित क्रांति को लाने (बी.जी.आर.ई. आई.) का कार्यक्रम 2010-11 में शुरु किया गया था जिसका प्रारंभिक उद्देश्य 'चावल आधारित फसल प्रणाली' की उत्पादकता सीमित करने वाली बाधाओं को दूर करना था। इसमें पूर्वी भारत के सात (7) राज्य असम, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा, पूर्वी उत्तर प्रदेश (पूर्वांचल) और पश्चिम बंगाल शामिल किये गये। यह कार्यक्रम अब राष्ट्रीय कृषि विकास योजना की एक उप-योजना है। उस वक्त तत्कालीन सरकारों ने 1000 करोड़ रुपये खर्च करने का लक्ष्य रखा। वर्तमान सरकार ने करीब 400 करोड़ रुपये आवंटित भी कर दिये हैं।

प्रथम हरित क्रांति के समय चावल और गेहूँ के उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने के लिये नवीनतम फसल उत्पादन तकनीक का प्रयोग करना, परती क्षेत्र में खेती को बढ़ावा देकर किसानों की आय बढ़ाना, जल संचयन संरचना बनाना और पानी की क्षमता का कुशल उपयोग करना तथा कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी और विपणन को बढ़ावा देना था। दूसरी हरित क्रांति न केवल अनाज, दलहन, तिलहन तक सीमित रही बल्कि इससे श्वेत क्रांति, नीली क्रांति भी पूर्वी राज्यों में आयी। जहाँ पर कृषि विकास और उत्पादन की अपार संभावनाओं का प्रश्न है, यह कार्यक्रम पूर्वी राज्यों के 105 जिलों जिसमें चावल के 96 तथा गेहूँ के 29 जिले शामिल किये गये। इसी संदर्भ में झारखंड में पूर्वी भारत का भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, बरही, हजारीबाग, झारखंड का शिलान्यास किया गया। एकीकृत फसल उत्पादन के लिये मोतीहारी (पूर्वी चम्पारण), बिहार में राष्ट्रीय एकीकृत कृषि प्रणाली शोध केंद्र की स्थापना भी की गयी।

बढ़ती हुई जनसंख्या और भूमि संसाधनों के अत्यधिक दोहन के साथ, खाद्य सुरक्षा पर दबाव के चलते भी इसकी आवश्यकता है। खाद्यान्न उत्पादन का लगभग 60 प्रतिशत योगदान करने वाले वर्षा सिंचित क्षेत्रों पर पहली हरित क्रांति असफल रही और भूजल समाप्त एवं प्रदूषित भी हो गया। कृषि क्षेत्र में विकास लगभग स्थिर हो गया है। जीएम फसलें, बौद्धिक संपदा, पर्यावरण परिणाम, स्वास्थ्य परिणाम आदि विभिन्न विवादों मे घिर गये हैं। इसके लिए निम्नलिखित हस्तक्षेप किये जा सकते हैं।

- सुधरित उत्पादन प्रौद्योगिकी का ब्लॉक/क्लस्टर स्तर पर प्रदर्शन।
- प्रक्षेत्र सुधार के लिये एसेट निर्माण गतिविधियों को बढ़ावा देना।
- प्रक्षेत्र नवीनीकरण के लिये साइट विशिष्ट गतिविधियों का बढ़ावा देना।
- बीज उत्पादन एवं वितरण की व्यवस्था।
- अत्यंत आवश्यकता आधारित उत्पादन घटकों का ही प्रयोग।
- विपणन की जानकारी और फसल कटाई के बाद का प्रबंधन
- पारिस्थितिकी विशिष्ट चावल आधारित फसल।

द्वितीय हरित क्रान्ति पूर्वी भारत में ही क्यों?

पूर्वी भारत में देश का कुल 21 प्रतिशत भूभाग है, जबकि इस भू-भाग में 34 प्रतिशत आबादी निवास करती है। पशुओं की आबादी भी अधिक है। इस दबाव को ध्यान में रखते हुए दूसरी हरित क्रांति के लिये इसी क्षेत्र मे काम करना होगा। अच्छी बात यह है कि पूर्वी भारत में जमीन उपजाऊ होने के साथ ही सिंचाई के लिये पानी तथा अन्य संसाधन (प्रचुर मात्रा में सूर्य का प्रकाश) उपलब्ध हैं। देश का कुल सकल फसल क्षेत्र से देश का 40 प्रतिशत खाद्यान्न उत्पादन करता है। चावल इस क्षेत्र की मुख्य फसल है और इस क्षेत्र के किसानों को सिंचाई और पानी के लिये मानसून की बारिश पर ही निर्भर रहना पड़ता है। विभिन्न फसलों की उत्पादकता राष्ट्रीय औसत से पीछे है। यह कार्यक्रम उन्हीं 121 जिलों में कार्यान्वित किया जा रहा है जहाँ पर राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के अंतर्गत चावल और गेहूँ के क्षेत्र कवर नहीं हुए हैं। खेती में पंजाब का किसान लगभग दोगुना पानी इस्तेमाल करता है। यदि पश्चिम बंगाल के किसानों से तुलना की जाये तो इस क्षेत्र में चावल का उत्पादन 2010-11 में 56.2 लाख टन पर पहुँच गया था जो देश के कुल चावल उत्पादन (96 मिलियन टन) के आधे से अधिक था। कुल मिलाकर अखिल भारतीय स्तर पर खाद्यान्न उत्पादन वृद्धि की दर 2.2 प्रतिशत के खिलाफ पूर्वी भारत में लगभग 12 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी।

पूर्वी भारत में सामर्थ्यता

- भूमि की उर्वराशक्ति अधिक है और यहाँ प्रचुर मात्रा में जल के स्रोत भी हैं।
- पूर्वी राज्यों में देश के कुल उपलब्ध भूजल का 61 प्रतिशत है।
- भूमि की पूर्ण उत्पादन क्षमता का अभी तक दोहन नहीं हुआ है।
- सतही जल और भूजल द्वारा सिंचाई क्षमता का बिहार, झारखंड और ओडीशा जैसे राज्यों में अच्छा विस्तार हुआ है।

पूर्वी क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न है जिसका समुचित उपयोग कर राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है। भारत सरकार 'लुक इस्ट नीति' के तहत पूर्वी क्षेत्र

में दूसरी हरित क्रांति लाने के लिये कटिबद्ध है। पूर्वी क्षेत्र जिसमें बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश, झारखंड, छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल और ओडिशा शामिल हैं, 730 लाख टन अनाज, 32 लाख टन दलहन और 18.4 लाख टन तिलहन का उत्पादन किया जा रहा है। पूर्वी क्षेत्र में दूसरी हरित क्रांति लाने के लिये भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थानों द्वारा उन्नत किस्म के बीज विकसित किये जा रहे हैं। इसके साथ ही जल एवं मृदा प्रबंधन, समेकित कृषि, मत्स्य एवं फसल प्रणाली भी विकसित की गयी है जिसकी सहायता से किसानों को उत्पादन बढ़ाने में सफलता प्राप्त हो रही है। यदि कृषि यांत्रिकीकरण एवं कृषि के क्षेत्र में ऊर्जा की आपूर्ति राज्य सरकारों द्वारा सुनिश्चित कर दी जाती है तो पूर्वी क्षेत्र में उत्पादन दोगुना बढ़ाया जा सकता है। आज भी मक्का, सब्जी, दलहन एवं तिलहन की उत्पादता में औसतन आठ से दस प्रतिशत की वृद्धि प्राप्त की जा सकती है।

पूर्वी क्षेत्र दूध, मत्स्य, मीट में भी उत्पादन बढ़ाने की क्षमता रखता है। समेकित मत्स्य प्रणाली द्वारा मछली का उत्पादन एक टन प्रति हेक्टेयर से बढ़कर 2.5 से 3.0 टन संभव हुआ है। इसी प्रकार विभिन्न तकनीकों के माध्यम से दूध उत्पादन में भी 10 से 15 प्रतिशत की वृद्धि प्राप्त की गयी है। पूर्वी क्षेत्र में देश की एक तिहाई अनुसूचित जनजाति निवास करती है जिनकी आजीविका समेकित कृषि प्रणाली के अनुसरण द्वारा सुनिश्चित की जा सकती है। पूर्वी क्षेत्र का भौगोलिक क्षेत्रफल मात्र 22 प्रतिशत है। इस पर 33 प्रतिशत पशु जनसंख्या निर्भर करती है। वर्ष 2050 तक पूर्व क्षेत्र की कुल आबादी 4070 लाख से बढ़ कर 5560 लाख होने का अनुमान है, जिसके लिये 844 लाख टन अनाज आपूर्ति की आवश्यकता होगी।

पूर्वी क्षेत्र विभिन्न तकनीकों के इस्तेमाल से वर्ष 2050 तक 1460 लाख टन अनाज के उत्पादन में सक्षम होगा। इससे 616 लाख टन अतिरिक्त उत्पादन द्वारा राष्ट्र की खाद्य सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दिया जायेगा। इसी प्रकार मत्स्य पालन में पूर्वी क्षेत्र वर्ष 2050 तक स्वावलंबी हो जायेगा। पूर्वी क्षेत्र में द्वितीय हरित क्रांति के प्रचार-प्रसार के लिये भारत सरकार द्वारा अब तक 2828 करोड़ रुपये की संस्तुति की गयी है जिसमें से वर्ष 2013-14 के लिये 1000 करोड़ रुपये की धनराशि की स्वीकृति शामिल है। जलवायु परिवर्तन के खेती पर हो रहे दुष्प्रभाव को ध्यान में रखते हुए विशेष शोध एवं कार्य योजनाओं का क्रियान्वयन की आवश्यकता है क्योंकि जलवायु परिवर्तन का पूर्वी भारत की कृषि पर अत्यधिक दुष्प्रभाव होगा। ऐसे परिवेश में जलवायु स्मार्ट तकनीकों जैसे कम अवधि वाली प्रजातियों, संसाधन संरक्षण तकनीकी-शून्य कृषि गेहूँ, धान की सीधी बोआई, उथली क्यारियों पर पौधारोपण, पॉलीहाउस तथा नेटहाउस में संरक्षित खेती, लेजर समतलक, हरी एवं भूरी खाद जैविक खाद प्रक्षेत्र पर जल संग्रहण को अधिक बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

द्वितीय हरित क्रांति कैसे लायी जा सकती है?

1) अनाज उत्पादन के साथ-साथ पशु संसाधनों के विकास तथा मुर्गी एवं मत्स्य पालन पर बल, कछुआ पालन एवं घोघा पालन से हम पोषण सुरक्षा प्रदान कर सकेंगे।

2) कृषि के औद्योगिकीकरण एवं वैज्ञानिक प्रबंधन पर भी विशेष जोर देना होगा।

3) पशु संरक्षण की नीति को नये नजरिये से देखने की आवश्कता है।

4) जल प्रबंध पर भी समुचित ध्यान देना होगा। जल जमाव वाले क्षेत्रों के पुनरुत्थान पर विशेष ध्यान देने की जरुरत है क्योंकि इस क्षेत्र में लगभग 41 लाख हेक्टेयर भूमि जलमग्न अथवा अत्यधिक नमी वाली है जहाँ पर खेती की पैदावार लगभग नगण्य है।

अभी तक पूर्वी क्षेत्र में कृषि उत्पादन में बिहार ने 30 प्रतिशत से ज्यादा वृद्धि दर्ज की है जबकि इस मामले में पूर्वी उत्तर प्रदेश दूसरे तथा छत्तीसगढ़ तीसरे स्थान पर है।

कृषि में विकास को गति देने के लिये वर्तमान केंद्र सरकार के 'न्यूनतम सरकार और अधिकतम शासन' के मार्ग पर अग्रसर है। पूर्वी राज्य अभी भी चावल, सब्जी एवं मीठे जल की मछलियों के उत्पादन में राष्ट्रीय स्तर पर क्रमश: 50 प्रतिशत, 45 प्रतिशत एवं 38 प्रतिशत की भागीदारी सुनिश्चित कर रहे हैं, तभी कृषि के समग्र विकास माध्यम से पूर्वी क्षेत्र दूध, मांस, दलहन, तिलहन इत्यादि के उत्पादन में भी विशिष्ट भूमिका निभा सकते हैं।

इसी वर्ष पूर्वी क्षेत्र के लिये भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के पटना स्थित अनुसंधान परिसर के निदेशक, डॉ. बी. पी. भट्ट को परिषद द्वारा पूर्वी राज्यों में द्वितीय हरित क्रांति की दिशा में हो रहे महत्वपूर्ण कार्यकलापों की देख-रेख के लिये नोडल अधिकारी के रूप में नामित किया है। नोडल एजेंसी का मुख्य उत्तरदायित्व भारत सरकार द्वारा द्वितीय हरित क्रांति के लिये बनाये गये कार्यक्रमों को सुचारू रूप से संचालित कर राज्य सरकार के साथ समन्वय स्थापित करना है। इसके लिए विभिन्न प्रकार की समितियाँ गठित की गयी हैं। इस बैठक में पूर्वी क्षेत्र के सभी भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थानों एवं क्षेत्रीय केन्द्रों तथा राज्य कृषि विश्वविद्यालयों की भागीदारी होगी।

मानव शरीर

शिव संहिता के अनुसार मनुष्य शरीर में 3,50,000 नाड़ियाँ हैं। इसके बिना प्राणायाम का कार्य नहीं हो सकता है। इनमें से 10 नाड़ियाँ प्रमुख हैं जो शरीर के अलग-अलग हिस्सों में विद्यमान हैं।

1. इड़ा - शरीर की बायीं ओर
2. पिंगला - शरीर की दाहिनी ओर
3. सुषुम्ना - शरीर के मध्य में
4. गांधारी - बायीं आँख में
5. हस्तिजिव्हा - दाहिनी आँख में
6. पुष्प - दाहिने कान में
7. यशस्विनी - बाएं कान में
8. अम्लाबुश - मुख में
9. कुहू - लिंग स्थान में
10. शंखिनी - मूल स्थान में

इन दस नाड़ियों में तीन नाड़ी मुख्य है - इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। इड़ा मेरुदंड की बायीं ओर है जो सुषुम्ना से लिपटती हुई नाक की दाहिनी ओर जाती है। पिंगला मेरुदंड की दाहिनी ओर है जो सुषुम्ना से लिपटती हुई नाक की बायीं ओर जाती है। दोनों नाड़ियाँ समाप्त होने से पहले एक दूसरे को पार करती हैं। ये दोनों नाड़ियाँ मूलाधार चक्र से आरंभ होती हैं और नाक में जाकर समाप्त होती हैं। ये दोनों नाड़ियाँ आधुनिक शरीर विज्ञान में *गांगलिएटेड कॉर्ड्स* के नाम से पुकारी जाती हैं।

मानव शरीर में दस वायु होते हैं - प्राण, अपान, सामान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय। इनमें से प्राण, अपान, सामान, उदान और व्यान वायु प्रमुख हैं। प्राण वायु हृदय प्रदेश में बहती है, जबकि अपान वायु नाभि के नीचे के क्षेत्रों में बहती है। उदान वायु कंठ में जबकि सामान वायु नाभि प्रदेश में। व्यान वायु मूलाधार चक्र से सहस्रार तक व्याप्त होती है।

-संकलन

साइबर सुरक्षा : महत्त्व एवं आवश्यकता

हरिश्चंद्र वर्मा[1]

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

साइबर का मतलब इंटरनेट होता है। कृषि, चिकित्सा, रक्षा आदि अनुसंधान के क्षेत्रों में इंटरनेट की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। यह विचारों और ज्ञान के तीव्र और भरोसेमंद आदान-प्रदान का सर्वोत्तम माध्यम है। हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन इसका महत्व बढ़ रहा है। आज भारत इंटरनेट इस्तेमाल करने वाला विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है। हम सभी लोग अपने कंप्यूटर, मोबाइल आदि से इंटरनेट से जुड़ें हैं, इसलिये साइबर सुरक्षा, साइबर क्राइम, साइबर अपराध, साइबर-आतंकवाद के बारे में हमें जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है।

साइबर सुरक्षा कंप्यूटर, नेटवर्क, प्रोग्राम और डेटा को अनधिकृत क्षति पहुँचाने के लिये किये गये हमलों से बचाने के लिये डिजाइन की गयी तकनीकों और प्रक्रियाओं की एक प्रणाली है।

साइबर सुरक्षा की आवश्यकता

सरकार के डिजिटल इंडिया कार्यक्रम ने बड़ी संख्या में नागरिकों, कंपनियों और सरकारी एजेंसियों को ऑनलाइन लेनदेन करने के लिये प्रेरित किया है। सरकार के राष्ट्रव्यापी डिजिटलीकरण प्रयास के चलते भारत में साइबर सुरक्षा की जरूरत बढ़ रही है। उपभोक्ता आज साइबर स्पेस में अपने डेटा का एक बड़ा निशान छोड़ देते हैं जिससे हैकर्स और अपराधियों को विनाश करने का वे एक बड़ा मौका देते हैं। भारत में साइबर हमलों के कारण अनुमानित क्षति चार बिलियन डॉलर की है।

साइबर अपराध

साइबर सुरक्षा की आवश्यकता साइबर अपराध को नियंत्रित करना है। साइबर अपराध को नियंत्रित कर साइबर सुरक्षा को बनाये रखा जा सकता है। साइबर अपराधों से संबंधित कुछ गतिविधियों की सूची निम्नानुसार है।

साइबर अपराध के प्रकार : साइबर क्राइम अनेक प्रकार के होते हैं जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं।

[1]वैज्ञानिक (च.श्रे.)

1. **साइबर बुलिंग :** फेसबुक, टुइटर आदि सोशल नेटवर्किंग साइट पर अशोभनीय कमेंट करना, इंटरनेट पर धमकियाँ देना, किसी का इस स्तर तक मजाक बनाना कि वह तंग हो जाये, इंटरनेट पर दूसरों के सामने शर्मिंदा करना, इसे साइबर बुलिंग कहते हैं। प्राय: बच्चे इसका शिकार होते हैं।
2. **सोशल नेटवर्किंग साइटों पर अफवाह फैलाना :** बहुत से लोग सोशल नेटवर्किंग साइटों पर सामाजिक, वैचारिक, धार्मिक और राजनैतिक अफवाह फैलाने का कार्य करते हैं। यूजर्स उनके इरादें समझ नहीं पाते हैं और जाने-अनजाने ऐसे लिंकों को शेयर करते रहते हैं। लेकिन यह भी साइबर अपराध और साइबर-आतंकवाद की ही श्रेणी में आता है।
3. **फर्जी बैंक कॉल :** यदि आपको जाली ईमेल, मैसेज या फोनकॉल प्राप्त हो जो इंगित करें कि कोई आपके आपके बैंक से बोल रहा है, जिसमें आपसे पूछा जाये कि आपके एटीएम नंबर और पासवर्ड की आवश्यकता है और यदि आपके द्वारा यह जानकारी नहीं दी गयी तो आपका खाता बंद कर दिया जायेगा । याद रखें किसी भी बैंक द्वारा ऐसी जानकारी कभी भी नहीं माँगी जाती है। अत: भूलकर भी अपनी इस प्रकार की जानकारी किसी को भी इंटरनेट या फोनकॉल या मैसेज के माध्यम से नहीं बतायें।
4. **निजी जानकारी चुराना :** साधारण भाषा में इसे हैकिंग कहते हैं, इससे साइबर अपराधी आपके कंप्यूटर नेटवर्क में प्रवेश कर आपका नेटबैंकिग पासवर्ड, आपके क्रेडिट कार्ड आदि निजी जानकारियों को चुरा लेते हैं और इसका दुरूपयोग भी करते हैं। इसी का दूसरा रूप होता है फिशिंग, जिसमें आपको फर्जी ईमेल भेजकर ठगा जा सकता है।
5. **वायरस/ ट्रोजन फैलाना :** साइबर अपराधी कुछ ऐसे सॉफ्टवेयर आपके कंप्यूटर पर भेजते हैं जिसमें वायरस छिपे हो सकते हैं। इनमें वायरस, वोर्म, ट्रोजन

हॉर्स, लॉजिक हॉर्स आदि वायरस शामिल हैं। ये आपके कंप्यूटर को काफी हानि पहुँचा सकते हैं।

6. **सॉफ्टवेयर पाइरेसी :** सॉफ्टवेयर की नकली कॉपी तैयार कर सस्ते दामों में बेचना भी साइबर क्राइम के अन्तर्गत आता है। इससे साफ्टवेयर कंपनियों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। साथ ही साथ, इनके प्रयोग से आपके कीमती उपकरण भी ठीक से काम नहीं करते और बाधित होते हैं।

7. **ईमेल स्पैम :** ईमेल स्पैम जिसे जंक ईमेल भी कहा जाता है। यह एक प्रकार का इलेक्ट्रॉनिक स्पैम है जिसमें अनचाहे संदेश ईमेल द्वारा भेजे जाते हैं।

8. **फिशिंग :** इंटरनेट उपयोगकर्ताओं से व्यक्तिगत जानकारी प्राप्त करने के लिये नकली ईमेल संदेशों का उपयोग करना।

9. **ऑनलाइन घोटाला या धोखाधड़ी :** सबसे आम प्रकार के ऑनलाइन धोखाधड़ी को फिशिंग और स्पूफिंग कहा जाता है। स्पूफिंग एक प्रकार का घोटाला है, जहाँ घुसपैठ करने वाला उपयोगकर्ता के सिस्टम या सूचना के लिये अनधिकृत प्रवेश प्राप्त करने का प्रयास करता है।

10. **प्रतिबंधित आपत्तिजनक और अवैध सामग्री :** मोबाइल और सामाजिक साइट पर अशोभनीय टिप्पणियाँ और आपत्तिजनक पोस्ट करना।

11. **हैकिंग :** हैकिंग आम तौर पर कंप्यूटर या नेटवर्क में अनधिकृत घुसपैठ को दर्शाता है। अनधिकृत हैकिंग अवैध है।

12. **क्रैकिंग :** यह आज तक ज्ञात सबसे गंभीर साइबर अपराधों में से एक है। यह एक डरावना अनुभव है कि एक अजनबी आपके कंप्यूटर सिस्टम में आपके जानकारी और सहमति के बिना ही प्रवेश कर अनमोल गोपनीय डेटा और जानकारी के साथ छेड़छाड़ करता है।

13. **सत्त्वाधिकार उल्लंघन :** ऐसा तब होता है जब एक कॉपीराइट किये गये कार्य को पुनः उत्पन्न, वितरित किया जाता है।

14. **ई-कॉमर्स धोखाधड़ी :** ई-कॉमर्स तेजी से पांव पसार रहा है। ऐसे में ठगों ने भी ऑनलाइन शॉपिंग, बैंक ट्रांजेक्शन से लेकर सोशल मीडिया तक पर अपना अड्डा जमा लिया है। थोड़ी सी सूझ-बूझ और ऊपर लिखी सावधानियाँ दिखाकर हम ऐसी किसी भी धोखाधड़ी से बच सकते हैं।

15. **प्रोफाइल हैकिंग** इत्यादि।

साइबर हमले रोकने के लिये नई सुरक्षा नीति

भारत सरकार ने राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति-2013 जारी कर दी है। इसका उद्देश्य देश में अनुकूल साइबर सिक्योरिटी सिस्टम तैयार करना है जो वैश्विक माहौल के अनुरूप हो ताकि साइबर हमलों को रोका जा सके।

देश में सुरक्षित साइबर सिस्टम तैयार करने के लिये इस नीति के तहत एक राष्ट्रीय नोडल एजेंसी बनाने की योजना है ताकि देश में साइबर सुरक्षा से जुड़े सारे मामलों को लेकर समन्वय बनाया जा सके।

कंप्यूटर सुरक्षा घटनाओं के होने पर उनके जवाब देने के लिये सर्ट-इन (भारतीय कंप्यूटर आपातकालीन प्रतिक्रिया टीम) राष्ट्रीय नोडल एजेंसी बनायी गयी है।

भारतीय साइबर सुरक्षा टोल फ्री सहायता लाइन नंबर

इंटरनेट उपयोगकर्ताओं के भारी वृद्धि के कारण, ऑनलाइन साइबर धोखाधड़ी भी बढ़ी है।

अब आप टोल फ्री सहायता लाइन नंबर: 1800 209 6789 पर ऐसे मामलों की रिपोर्ट कर सकते हैं, यह ऑनलाइन धोखाधड़ी की रिपोर्ट करने के लिये भारतीय साइबर अपराध टोल फ्री नंबर भी है।

इसके अलावा प्रत्येक राज्य में साइबर अपराध सेल है जहाँ ऐसे मामलों की रिपोर्ट कर सकते हैं।

साइबर अपराध के लिये सजा/जुर्माना

1. **कंप्यूटर स्रोत कोड के साथ छेड़छाड़ :** जो व्यक्ति जानबूझकर कंप्यूटर स्रोत कोड को नष्ट करता है या बदलता है या जानबूझकर किसी कंप्यूटर प्रोग्राम, कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क के लिये उपयोग किये जाने वाले किसी भी कंप्यूटर स्रोत कोड को छिपाने, नष्ट करने या बदलने का कार्य करता है, उसे तीन साल तक का कारावास या दो लाख रुपए तक का जुर्माना या दोनों द्वारा एक साथ किया जा सकता।
2. **संचार सेवा आदि के माध्यम से आक्रामक संदेश भेजना :** एक अवधि के लिये कारावास का दंड जो जुर्माना के साथ तीन साल तक बढ़ाया जा सकता है।
3. **पहचान की चोरी :** धोखाधड़ी से इलेक्ट्रॉनिक हस्ताक्षर, पासवर्ड या किसी व्यक्ति की अनूठी पहचान का उपयोग करना, कुछ समय के लिये या तीन साल तक की अवधि की कारावास के साथ एक लाख रुपये तक जुर्माना हो सकता है।
4. **गोपनीयता के उल्लंघन :** इस मामले में दंड या कारावास तीन साल तक बढ़ाया जा सकता है या अर्थदंड दो लाख रुपये तक हो सकता है या दोनों के साथ-साथ हो सकता है।
5. **साइबर आतंकवाद :** जो व्यक्ति भारत की एकता, अखंडता, सुरक्षा या संप्रभुता को धमकी देने या लोगों के किसी भी वर्ग या लोगों में दहशत पर फैलाने के इरादे से - (1) कंप्यूटर संसाधन अनधिकृत एक्सेस करने का प्रयास कर रहा है या एक्सेस किया हो (2) कंप्यूटर संसाधन तक पहुँचने के लिये अधिकृत किसी भी व्यक्ति को पहुँच से रोकना या अस्वीकार करना या (3) किसी भी कंप्यूटर प्रदूषक को पेश करना या पेश करने का कारण बनना इत्यादि। जो व्यक्ति साइबर आतंकवाद करने के लिये षडयंत्र करेगा, वह आजीवन कारावास तक के दंड का भागी हो सकता है।
6. **इलेक्ट्रॉनिक रूप में अश्लील सामग्री को प्रकाशित या प्रसारित करना :** जो कोई भी इस अपराध को करता है, उसे पहली सजा दो साल तक का कारावास और पाँच लाख रुपये तक का जुर्माना और दूसरी सजा के मामले में पाँच साल तक की कारावास के साथ जुर्माना भी बढ़ाया जा सकता है।
7. इसके अलावा, इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से किये गये अन्य सभी अपराध भी दंडनीय हैं।

साइबर सुरक्षा के लिये कुछेक उपाय

निवारण हमेशा इलाज से बेहतर है। इंटरनेट का संचालन करते समय नेटिजनों को कुछ सावधानी बरतनी चाहिये और नीचे लिखी साइबर सुरक्षा के लिये कुछ उपायों का पालन करना चाहिये।

1. यदि आपके पास कोई एंटी-वायरस नहीं है, तो विंडोज इनबिल्ट फायरवॉल को सक्रिय करना बेहतर होगा।
2. हमें हमेशा विंडोज स्वचालित बैकअप चालू रखना होगा ताकि ऑपरेटिंग सिस्टम को किसी भी नुकसान के मामले में इसे किसी भी पिछले बिंदु पर लाया जा सकता है।
3. हमें किसी भी अज्ञात ईमेल, अनुलग्नक को कभी डाउनलोड नहीं करना चाहिये। इसमें मैलवेयर (दूषक) हो सकता है।
4. हमें असुरक्षित वेबसाइट के माध्यम से कभी भी संवेदनशील जानकारी नहीं भेजना चाहिये।
5. किसी व्यक्ति को धोखाधड़ी से बचने के लिये किसी भी असुरक्षित साइट पर अपना क्रेडिट कार्ड नंबर कभी नहीं भेजना चाहिये।
6. किसी को ई-मेल या चैट करते समय अजनबियों को किसी व्यक्तिगत जानकारी का खुलासा नहीं करनी चाहिये।
7. हमें अजनबियों को ऑनलाइन कोई फोटो नहीं भेजना चाहिये।
8. वायरस हमलों से बचाने के लिये एक एंटी-वायरस सॉफ्टवेयर का उपयोग सभी नेटिजन द्वारा किया जाना

चाहिये और डिस्क वॉल्यूम का बैकअप भी रखना चाहिये जिससे कि वायरस दूषित होने के मामले में डेटा की हानि नहीं हो।

9. हमें हमेशा मजबूत पासवर्ड का उपयोग करना चाहिये जिसमें वर्णमाला, संख्याएँ और विशेष वर्ण शामिल हैं।

निष्कर्ष : इस लेख का उद्देश्य पाठकों को साइबर सुरक्षा संबंधी कुछ उपाय, साइबर अपराधों और इसके सजा / जुर्माना प्रावधानों आदि के बारे में शिक्षित करना है ताकि वे अपने कंप्यूटर और डेटा को सुरक्षित रख सकें और उनके साथ हुए साइबर अपराध के मामले में उचित कार्रवाई कर सकें। इंटरनेट का उपयोग करते समय उपयोगकर्ताओं द्वारा उपर्युक्त वर्णित सावधानियाँ बरतनी चाहिये जो इस बड़े खतरे साइबर अपराध को चुनौती देने में सहायता करेंगे। साइबर सुरक्षा ज्ञान सभी क्षेत्रों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है।

वह सुबह कब आयेगी

वह सुबह कब आयेगी।।
जब अंधियारे को दूर कर, फैले चारों ओर उजाला
जग के अधियारे संग, मन का अंधियारा हो दूर
वह सुबह कब आयेगी।।
जब हर बेटी महफूज हो, निर्भया जैसे काण्ड न हो
फुलझड़ियों सी खिलखिलाये वो, अपनों के बीच मुस्कराये वो
वह सुबह कब आयेगी।।
जब बेटे-बेटी में फर्क न हो, दोनों को मिले समान अधिकार
बेटी को भी जीने का हक है, समझे यह सारा संसार
वह सुबह कब आयेगी।।
जब कोई गरीब न रहे गरीब, सबर जाये सबका नसीब
जब कोई भूख न सोये, हर सर को छत मिल जायें
वह सुबह कब आयेगी।।
हर बच्चा करे बड़ों का आदर, बुजुर्गों का न हो कहीं अनादर
जब आयें वह सुबह सुहानी, किसी आँख से वहे न पानी
वह सुबह कब आयेगी।।
जब नई रोशनी सबमें भर जायें, कुछ करने का हो प्रबल इरादा
सबके मन में हो उज्ज्जल आशा, नहीं रहे कोई निराशा
वह सुबह कब आयेगी।।

–रेखा चौरसिया

हिंदवी घोष

वह रक्त आखिर बह गया पानी सदृश
जो बहा था परतंत्रता के नाश वश
तन छुट गए जंजीर से निज हिन्द के
मन बँध गया निज मातृभाषा नाश पर

गद्दार मुझे मिल जाये वह
मैं गला काट उसका लूँगा
जलती आगों की लपटों मे
जिंदा मैं उसको भूनुंगा
कर सुर्ख लाल अंगारों पर
नंगे पैरों चलवाऊँगा
भारत को हिंदी देकर ही
इस जीवन में अब दम लूँगा!

वह क्या जाने हिंदी पीड़ा
जिनका निवास मधुशाला में
वह क्या जाने भारत की लाज
जो जाते हों रतिशाला में
जो वैभव भारत ने खोजा
वह और नहीं लुटने दूंगा
भारत को हिंदी देकर ही
इस जीवन में अब दम लूंगा!

भीख मंगाते हाथों पर
आगे बढ़कर हिंदी लिख दो
ललचायी भूखी जिह्वा पर
हिंदी का अविरल रस भर दो
हैं रक्त अश्रु खोकर भाषा
अब और नहीं बहने दूंगा
भारत को हिंदी देकर ही
इस जीवन में अब दम लूंगा!

क्लाइव हो या फिर डलहौजी
वारेन हेस्टिंग की मनमौजी
जो दमन किये हैं हिंदी का
लेकर आये हैं पश्चिमी
मानवता का पशुरूप
नहीं पूरब में मैं आने दूंगा
भारत को हिंदी देकर ही
इस जीवन में अब दम लूंगा!

आबरू लूट कर भारत की
जो मर्यादा विध्वंश किये
अपनी रणनीति पुनर्जीवित
करने को भारत आंग्ल दिए
निज भाषा का अपमान
हिन्द की धरती पर ना अब होगा
भारत को हिंदी देकर ही
इस जीवन में अब दम लूंगा!

शैतान लार्ड मैकाले को
भारतवासी निष्फल कर दें
आओ मिलकर अभियान-ए-हिंदी
को जग में जाहिर कर दें
श्री भारतेन्दु मैथिली को निष्प्राण नहीं होने दूंगा
भारत को हिंदी देकर ही
इस जीवन में अब दम लूंगा!

–प्रदीप कुमार शुक्ल

विविध गतिविधियों की झलकियाँ

संस्थान की विविध गतिविधियाँ